हमारे सुरुचि पूर्ण प्रकाशन

[प्राकृत ग्रन्थ]

महाबन्ध (महाधवल सिद्धान्त)	१२)
कर लक्खण (सामुद्रिक शास्त्र)	१)

[संस्कृत ग्रन्थ]

मदन पराजय	८)
कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रथसूची	१३)
न्यायविनिश्चय विवरण (प्रथम भाग)	१५)
तत्वार्थवृत्ति (हिन्दीसार सहित)	१६)
सभाष्य रत्नमञ्जूषा	२)
नाममाला सभाष्य	३॥)
केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि	४)

[हिन्दी ग्रन्थ]

मुक्तिदूत (पौराणिक रोमास)	४॥)
पथचिन्ह (स्मृति रेखाएं)	२)
दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां	३)
पाश्चात्य तर्कशास्त्र (प्रथम भाग)	६)
शेर-ओ-शायरी	८)
आधुनिक जैन कवि	३॥)
जैन शासन	४।-)
हिन्दी जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास	२॥=)
कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न	२)

ज्ञानपीठ का उद्देश्य प्राचीन साहित्य का उद्धार तथा नवीन लोकोदयकारी साहित्य का निर्माण और प्रचार है। पुस्तकों का मूल्य अत्यल्प और कितने ही ग्रथों का लागत से भी कम रखा जाता है।

ज्ञानपीठ के ग्रन्थों के प्रचार में निम्न प्रकार सहयोग दिया जा सकता है :—

१—दस रुपया शुल्क भेजकर स्थायी ग्राहक स्वयं बनकर और अपने इष्ट मित्रों को बनाकर।

२—शास्त्रभण्डारों, मन्दिरों और सार्वजनिक पुस्तकालयों आदि में ग्रन्थ खरीद कर।

३—तीर्थों, मंदिरों, संस्थाओं, त्यागियों और विद्वानों को सामर्थ्यानुसार अपनी ओर से ग्रन्थ भेंट भिजवाकर।

४—अपने यहाँ के पुस्तकविक्रेताओं को ज्ञानपीठ के ग्रन्थों की बिक्री के लिये प्रेरणा करके।

श्रीमान् साहु शान्ति प्रसाद जी
की ओर से
सादर भेंट

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [संस्कृत ग्रन्थाङ्क ७]

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि

[भाषानुवाद-विस्तृत विवेचन सहित]
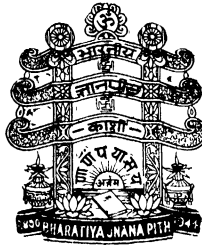
सम्पादक-

पं० नेमिचन्द्र जैन, ज्योतिषाचार्य, न्यायतीर्थ
पुस्तकालयाध्यक्ष, जैन सिद्धान्तभवन, आरा

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्रथम आवृत्ति
एक सहस्र प्रति

माघ, वीरनि० स० २४७६
वि० सं० २००६
जनवरी १९५०

मूल्य ४)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

स्व० पुण्यश्लोका माता **मूर्तिदेवी** की पवित्र स्मृति में

तत्सुपुत्र **सेठ शान्तिप्रसाद जी** द्वारा

संस्थापित

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी कन्नड तामिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक दार्शनिक पौराणिक साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासंभव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानों के अध्ययनग्रन्थ और लोकहितकारी जैन साहित्यग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमालासम्पादक और नियामक (संस्कृत विभाग)

प्रो० महेन्द्रकुमार जैन, न्यायाचार्य, जैन-प्राचीनन्यायतीर्थ आदि

बौद्धदर्शनाध्यापक, संस्कृत महाविद्यालय–हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

संस्कृत ग्रन्थाङ्क ७

प्रकाशक

अयोध्याप्रसाद गोयलीय,

मन्त्री, **भारतीय ज्ञानपीठ काशी**

दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी

मुद्रक—रामकृष्ण दास, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, काशी

स्थापनाब्द
फाल्गुन कृष्ण ९
वीरनि० २४७०

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी १९४४

स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNA-PĪṬHA MŪRTIDEVI JAINA GRANTHAMĀLĀ

SANSKRIT GRANTHA No. 7

KEVALA JÑĀNA PRAŚNA CŪḌĀMAṆI

WITH

HINDI TRANSLATION

EDITED WITH

INTRODUCTION, APPENDICES, VARIANT READINGS
COMPERATIVE NOTES ETC.

BY

PANDIT NEMI CHANDRA JAIN

JYOTIṢĀCĀRYA, NYĀYATĪRTHA,

LIBRARIAN, JAIN SIDDHANTA BHAVANA, ARRAH.

Published by

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA, KASHI

First Edition
1000 Copies.

MAGHA, VIRA SAMVAT 2476
VIKRAMA SAMVAT 2006
JANUARY, 1950.

Price Rs. 4/-

BHĀRATĪYA JÑĀNA-PĪṬHA, KASHI

FOUNDED BY

SETH SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRI MURTI DEVI

JÑĀNA-PĪṬHA MŪRTI DEVI JAINA GRANTHAMĀLĀ

IN THIS GRANTHAMÂLÂ CRITICALLY EDITED JAINA ÂGAMIC PHILOSOPHICAL PAURANIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRANSHA, HINDI, KANNADA AND TAMIL Etc. WILL BE PUBLISHED IN THIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES BY COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAINA LITERATURE ALSO WILL BE PUBLISHED.

GENERAL EDITOR OF THE SANSKRIT SECTION

MAHENDRA KUMAR JAIN

NYĀYĀCĀRYA; JAINA & PRĀCĪNA NYĀYATĪRTHA ETC.

Professor of Bauddha Philosophy, Sanskrit Mahavidyalaya

BANARAS HINDU UNIVERSITY.

SANSKRIT GRANTHA No. 7

PUBLISHER

AYODHYA PRASAD GOYALIYA,

SECY., **BHĀRATĪYA JÑĀNA-PĪṬHA,**

DURGAKUND ROAD, BANARAS CITY.

Founded in Falguna Krishna 9, Vira Sam., 2470.

Vikrama Samvat 2000 *18th Feb., 1944.*

जिनसे आत्मोत्थान की प्रेरणा प्राप्त हुई, उन तपोनिधि

चारित्रमूर्ति, विद्वच्छिरोमणि पूज्य गुरुदेव

श्री १०८ देशभूषण महाराज के

कर कमलों में सविनय समर्पित।

श्रद्धावनत

नेमिचन्द्र जैन शास्त्री

आदिवचन

अनन्त आकाश मण्डल मे अपने प्रोज्ज्वल प्रकाश का प्रसार करते हुए असख्य नक्षत्र दीपो ने अपने किरण करो के संकेत तथा अपनी आलोकमयी मूकभाषा से मानव मानस मे अपने इतिवृत्त की जिज्ञासा जब जागरूक की थी तब अनेक तपोधन महर्षियों ने उनके समस्त इतिवेद्यो को करामलक करने की तीव्रतपोमय दीर्घतम साधनायें की थी और वे अपने योगप्रभावप्राप्त दिव्य दृष्टियो मे उनके रहस्यो का साक्षात्कार करने मे समर्थ हुए थे, उन महामहिम महर्षियो के हृत्पटल मे अपार करुणा थी अतः वे किसी भी वस्तु के ज्ञानगोपन को पातक समझते थे, अतः उन्होने अपनी नक्षत्र सम्बन्धी ज्ञानराशि का जनहित की भावना से बहुत ही सुन्दर संकलन और सग्रथन कर दिया था। उनके इस सग्रथित ज्ञान कोष की ही ज्योतिषशास्त्र के नाम से प्रसिद्धि हुई थी जो अब तक भी उसी रूप मे है।

इस विषय में किसी को किञ्चित् भी विप्रतिपत्ति नही होनी चाहिए कि सर्वप्रथम ज्योतिष विद्या का ही प्रादुर्भाव हुआ था और वह भी भारतवर्ष मे ही। बाद मे ही इस विद्या के प्रकाशन ने सारे भूमण्डल को आलोकित किया और अन्य अनेक विद्याओ को जन्म दान किया। यह स्पष्ट है कि एक अङ्क का प्रकाश होने के बाद ही "**एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म**" इस अद्वैत सिद्धान्त का अवतरण हुआ था। दो सख्या का परिचय होने के बाद ही द्वैत विचार का उन्मेष हुआ। अद्वैत द्वैत विशिष्टाद्वैत शुद्धाद्वैत द्वैताद्वैत तत्त्वो की सख्या मे न्याय, वैशेषिक, साख्ययोग, पूर्व और उत्तर मीमांसा के विभिन्न मत में इन सबों के जन्म की ज्योतिषविद्या की पश्चाद्भाविता-निर्विवाद रूप से सभी को मान्य है। पञ्चमहाभूत, शब्दशास्त्र के चतुर्दश सूत्र तथा साहित्य के नवरसादि की चर्चा अङ्कभेदादि संबद्ध गुरुलघ्वादि संबद्ध छन्द के रचनादि ने इस ज्योतिष शास्त्र से ही स्वरूप लाभ पाया है।

ऐसे ज्योतिष शास्त्र की प्राचीनता के परीक्षण मे अन्य अनेक बातों को छोड कर केवल ग्रहोच्च के ज्ञान से ही यदि वर्ष की गणना की जाय तो सूर्य के उच्च से

> **"अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः।**
> **दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेस्तनीचा ॥"**

गणना करने पर इस व्यावहारिक ज्योतिष गणना के प्रयत्न की न्यूनतम सत्ता आज से २१, ८० २९६ वर्ष पूर्व सिद्ध होती है, इसी प्रकार मगल के उच्च से विचार करने पर १,१२,२९,३९० वर्ष तथा शनैश्चर के उच्च से विचार करने पर १,१२,०७. ६९० वर्ष पूर्व इस जगत मे ज्यौतिष को विकसित रूप मे रहने की सिद्धि होती है, जो आधुनिक ससार के लोगो के लिए और विशेष कर पाश्चात्य विज्ञानविशारदो के लिए बडे आश्चर्य की सामग्री है।

"**ज्यौतिषशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते**....."आचार्यों के इस प्रकार के वचनों के अनुसार मानव जगत मे विविध आदेश करना ही इस अपूर्व अप्रतिम ज्यौतिषशास्त्र का प्रधान लक्ष्य है।

इसी आदेश के एकाङ्ग का नाम प्रश्नावगम तन्त्र है। इस प्रश्न प्रणाली को जैन सिद्धान्त के प्रवर्तको ने भी आवश्यक समझकर बड़ी तत्परता से अपनाया था और उसकी सारी विचारधारायें "केवलज्ञानप्रश्न-चूडामणि" के रूप मे लेखबद्ध कर सुरक्षित रखी थी, किन्तु वह ग्रन्थ अत्यन्त दुरूह होने के कारण सर्वसाधारण का उपकार करने में पूर्ण रूपेण स्वयं समर्थ नही रहा अत मेरे योग्यतम शिष्य श्री नेमिचन्द्र जैन जी ने बहुत ही विद्वत्तापूर्ण रीति से सरलसुबोध उदाहरणादि से सुसज्जित सपरिशिष्ट कर एक हृद्य-अनवद्य टीका के साथ उस ग्रन्थ को जनता जनार्दन के समक्ष प्रस्तुत किया है, इस टीका को देखकर मेरे मन मे यह दृढ़ धारणा प्रादुर्भूत हुई है कि अब उक्त ग्रंथ इस विशिष्ट टीका का सम्पर्क पाकर समस्त विद्वत्समाज तथा जन साधारण के अत्यन्त समादरणीय और संग्राह्य होगा। टीका की लेखनशैली से लेखक की प्रसंशनीय प्रतिभा और लोकोपकार की भावना स्फुट रूप से प्रकट होती है। हमे पूर्ण विश्वास है कि जनता इस टीका से लाभ उठा कर लेखक को अन्य कठोर ग्रन्थो को भी अपनी ललित लेखनी से कोमल बनाने को उत्साहित करेगी।

संस्कृत महा विद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
१७ जनवरी ५०

श्री रामव्यास ज्यौतिषी
(अध्यक्ष ज्यौतिष विभाग)

दो शब्द

भारतीय साहित्य में ज्योति शास्त्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसने यहाँ गणित और फलित दोनों शाखाओं द्वारा पर्याप्त उन्नति की है। जैन संस्कृति ने भी ज्योतिर्विद्या को मुख्य विद्या माना है। सर्वज्ञता सिद्ध करने के लिए अन्य हेतुओं के साथ ही साथ 'ज्योतिर्ज्ञानोपदेश' भी एक मुख्य हेतु अकलंकदेव[1] ने दिया है। उनने लिखा है कि यदि बुद्धि परोक्ष पदार्थों को विषय करने वाली न हो तो भविष्य बताने वाला ज्योतिर्ज्ञान अविसंवादी कैसे हो सकता है। चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण आदि भावी बातें ज्योतिष के द्वारा ही जानी जाती हैं। क्योंकि भावी पदार्थों का न तो स्वभाव ही गृहीत है और न कार्य ही जिससे उनका अनुमान किया जाय। सर्वज्ञसिद्धि में ज्योतिर्ज्ञानोपदेश का हेतु रूप से प्रयोग जैनो ने ही किया है। उनका विश्वास है कि सर्वज्ञ अपने प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा भूत भविष्यत् वर्तमान त्रिकालवर्ती पदार्थों को साक्षात् जानता है। ग्रहों की गति नक्षत्रों का परिभ्रमण ऋतुपरिवर्तन आदि सभी उसके निर्मल ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं। सर्वज्ञ ने प्रत्यक्ष दर्शन करके ही ज्योतिश्शास्त्र का उपदेश दिया है, तभी तो वह प्रमाणभूत तथा अविसंवादी निकलता है।

प्रश्नशास्त्र भी ज्योतिर्विद्या में ही सम्मिलित है। इसमें अनेक प्रकार से प्रश्नों के द्वारा भविष्यत् और भूत का ज्ञान कराया जाता है। इस शास्त्र का उपदेश भी किसी प्रत्यक्षद्रष्टा व्यक्ति के द्वारा उन कार्य कारणो का प्रत्यक्ष करके ही दिया गया है। केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि में इसी तरह प्रश्नों के उत्तर की पद्धति का निरूपण है।

निमित्त दो प्रकार के होते हैं। एक कारक निमित्त, जैसे घड़े के लिए कुम्हार। दूसरा सूचक निमित्त जैसे सिंगल का झुक जाना रेलगाड़ी के आने की सूचना देता है। ज्योतिष शास्त्र में जो ग्रह नक्षत्रादि की गतिविधि का अमुक भविष्यत् से कार्य कारणभाव बैठाया गया है वह सब सूचक निमित्त है। तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य अमुक ग्रह मे उत्पन्न हुआ है तो कुछ मोटे मोटे भविष्यत् का अनुमान स्थूल कार्य-कारणभाव से लग जाता है। किसी जीव का अच्छा या बुरा ग्रहो ने नही किया है किन्तु उस होनेवाले भविष्य की सूचना ग्रहगति से मिल जाती है।

वस्तुतः ये सब एक प्रकार के अनुमान ज्ञान है जो प्रायः अव्यभिचारी होते है। चिरकाल से अनुभवी पुरुषो द्वारा जो कार्यकारणभाव या सूच्य-सूचकभाव स्थिर किए गए है उनकी निर्विवादता प्राय. सिद्ध है। कुछ भौतिक पदार्थों के स्वाभाविक परिणमन भी होते है। जिनमे यदि किसी विशेष कारण से व्याघात न आवे तो अपनी गति से ठीक उसी रूप मे परिणमन करते रहेंगे। प्रायः मनुष्यों का मानस एक प्रकार से गति करता है। इसीलिए मानस शास्त्री एक मनोभाव के बाद दूसरा कौन सा भाव अवश्यम्भावी है यह बता देते हैं बशर्ते कि उसमे कोई बुद्धि पूर्वक व्याघात न किया गया हो।

इष्ट अनिष्ट फल का मिलना बहुत कुछ संयोगों के आधीन है। एक ही मुहूर्त में जगत् में करोड़ों प्राणी जन्म लेते हैं पर सब की दशा एक सी नहीं होती। जैसी सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाएँ होगी, मनुष्य का अपनी भीतरी योग्यता के अनुसार वैसा विकास हो जायगा।

मनुष्य स्वभावतः आत्मप्रशंसा या आत्मोच्चत्व की बात सुनने में आनन्द और सन्तोष मानता है। इस प्रवृत्ति ने भी प्रश्नादि विद्याओं का पर्याप्त प्रचार किया है। यद्यपि इसका मानसिक असर कम नहीं

---

१ "धीरत्यन्तपरोक्षेऽर्थे न चेत्पुंसां कुतः पुनः। ज्योतिर्ज्ञानाविसंवादः शास्त्राच्चेत् साधनान्तरम्॥ परोक्षज्ञानमनुमानमेवेष्यते। कथमनागतार्थविशेषेषु ग्रहणादिषु भाविषु ज्योतिर्ज्ञानाविसंवादः तत्स्वभाव-कार्यग्रहणाद्यसंभवात्"—सिद्धिवि० परि० ८।

होता। बल्कि कभी कभी तो इससे चित्त का क्रम ही बदल जाता है। कभी कभी ऐसी बाते सत्य घटित हो जाती हैं जिनके संयोगों का कोई पता नहीं था और न संभावना ही की जाती थी। अतः कुछ निश्चित कार्यकारण भाव और मनुष्य की इष्ट प्राप्ति की जिज्ञासा ने इस विद्या का खूब विस्तार किया है।

यह तो निश्चित है कि प्रत्येक प्राणी के मानस पर उस के प्रतिक्षण के विचार और क्रियाएँ अपना संस्कार डालती हैं। संस्कारों की खतौनी बराबर होती रहती है। जब कोई प्रबल सस्कार आता है तो वह पूर्व के निर्बल संस्कार को समाप्त कर देता है। अन्त में कुछ ऐसे सूक्ष्म और स्थिर संस्कार इस शरीर को छोड़ने पर भी परलोक तक जाते हैं जिन के अनुसार भावी जीवन की रचना होती है और भौतिक जगत् का परिणमन भी वैसा ही होने लगता है। इसी रहस्य का बहुत कुछ उद्घाटन ज्योतिविद्या करती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि के प्रत्येक मुद्दे पर ग्रन्थ के सम्पादक ने पूरा पूरा प्रकाश डाला हैं। साथ ही प्रश्नशास्त्र के लिए उपयोगी मुहूर्त्त आदि का विस्तृत विवेचन भी परिशिष्टो में कर दिया है जिससे ग्रन्थ की उपयोगिता काफी बढ़ गई है। ग्रन्थ के सम्पादक प्रिय पं० नेमिचन्द्र जी ज्योतिष्शास्त्र के आचार्य हैं, परिश्रमशील और अध्ययनरत कर्मठ विद्वान् हैं। ज्योतिषशास्त्र की गुत्थियों को इनने समझा है। इनसे आगे और भी अनेक ग्रन्थो के सुन्दर सम्पादन की आशा है। इन्होने 'भारतीय ज्योतिष' नाम का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हिन्दी में लिखा है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

काशी विश्वविद्यालय के ज्योतिषशास्त्र के प्रधान अध्यापक प० रामव्यास जी ज्योतिषाचार्य ने इस ग्रन्थ का 'आदिवचन' लिखकर हमे आभारी बनाया है।

ज्ञानपीठ के संस्थापक सेठ शान्तिप्रसाद जी तथा उन की समशीला पत्नी सौ० रमारानी जी की उदारता, संस्कृति-उद्धार की भावना और भद्रता इस संस्था के प्राण हैं। इनकी स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी के स्मरणार्थ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला प्राचीन ग्रन्थों के उद्धारार्थ चल रही है। उसका यह सातवाँ ग्रन्थ है।

संस्था के मंत्री श्री अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय की कार्यपटुता और सुरुचिसम्पन्नता से संस्था सांस्कृतिक कार्यों को और भी बढ़ायेगी।

मैं इन सब सहयोगियों का आभार मानता हूँ और उनके द्विगुणित सहयोग की आशा रखता हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठ
माघ कृष्ण २.
वीर सं० २४७६.

—महेन्द्रकुमार जैन
ग्रन्थमाला सम्पादक

प्रकाशन—व्यय

४२५) कागज २४ रीम २२×२९ पौण्ड २६	३५२) कार्यालय व्यवस्था प्रूफ संशोधन आदि
९३०) छपाई पृष्ठ १८६ दर ५) प्रति पृष्ठ	५३३।।) सम्पादन
३००) जिल्द बंधाई	९००) कमीशन
६०) कवर छपाई	७०५) भेंट, आलोचना, विज्ञापन आदि
४०) कवर कागज	

कुल लागत ४१४५।।)

१००० प्रति छपी। लागत एक प्रति—४=)

मूल्य ४)

विवेचन और सम्पादन में उपयुक्त ग्रन्थों की सूची

अकलंकसंहिता—अकलंकदेव कृत, हस्तलिखित, श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा
अथर्वज्योतिष—सुधाकर-सोमाकर भाष्य सहित, मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स, काशी
अद्भुततरंगिणी—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
अद्भुतसागर—बल्लाल सेन विरचित, प्रभाकरी यन्त्रालय, काशी
अद्वैतसिद्धि—गवर्नमेन्ट संस्कृत लाइब्रेरी मैसूर
अनन्तफलदर्पण—हस्तलिखित, मुनीश्वरानन्द पुस्तकालय आरा
अर्घकाण्ड—दुर्गदेव, हस्त लिखित,
अर्घप्रकाश—निर्णयसागर प्रेस बम्बई
अर्हच्चूडामणिसार—भद्रबाहु स्वामी कृत, महावीर ग्रन्थमाला धुलियान
आचाराङ्ग सूत्र—आगमोदय समिति
आयज्ञानतिलक संस्कृत टीका—भट्टवोसरि कृत, हस्त लिखित, श्री जैनसिद्धान्तभवन, आरा
आयसद्भावप्रकरण—मल्लिषेण कृत, हस्त लिखित, प० शङ्कर लाल शर्मा, कोसीकला मथुरा
आरम्भसिद्धि—हेमहंसगणि टीका सहित, श्री लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला छाणी (बड़ोदरा)
आर्यभटीय—व्रजभूषण दास एण्ड सन्स, बनारस
आर्यसिद्धान्त— ,, ,, ,,
उत्तरकालामृत—अंग्रेजी अनुवाद—बेंगलोर
ऋग्वेद ज्योतिष—सोमाकर सुधाकर भाष्य,
एवरी डे एस्ट्रोलोजी—बी० ए० के० ऐयर तारापोरेवाला सन्स एन्ड को०, बम्बई
एस्ट्रोनॉमी इन ए नटशेल—गैरट पी० सर्विस विरचित ,, ,, ,,
एस्ट्रोनॉमी—टौमस हीथ एस्ट्रोनॉमर एडिनबरो विरचित ,, ,, ,,
एस्ट्रोनॉमी—टेट्स विरचित ,, ,, ,,
करणकुतूहल—
करणप्रकाश—सुधाकर वासना सहित, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, काशी
कालजातक—हस्तलिखित
केरलप्रश्नरत्न—वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई
केरलप्रश्नसंग्रह— ,, ,, ,,
केवलज्ञानहोरा—चन्द्रसेन मुनि विरचित, हस्त लि०, जैन सिद्धान्त भवन, आरा
खण्डकखाद्य—ब्रह्मगुप्त रचित, कलकत्ता विश्वविद्यालय
खेटकौतुक—सुखसागर ज्ञान प्रचारक सभा, लोहावट (मारवाड़)
गणकतरंगिणी—पद्माकर द्विवेदी, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, काशी
गणितसारसंग्रह—महावीराचार्य रचित,
गर्गमनोरमा—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
गर्गमनोरमा—सीताराम कृत टीका, मास्टर खेलाड़ीलाल एन्ड सन्स काशी,
गोलपरिभाषा—सीताराम कृत, मास्टर खेलाड़ी एण्ड सन्स काशी
गौरीजातक—हस्त लिखित, वराहमिहिर पुस्तकालय पटना
ग्रहकौमुदी—मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स काशी

ग्रहलाघव—सुधामंजरी टीका, मास्टर खेलाड़ीलाल एन्ड सन्स काशी
ग्रहलाघव—सुधाकर टीका सहित
चन्द्रार्क ज्योतिष—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
चन्द्रोन्मीलनप्रश्न—हस्त लिखित, श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा
चन्द्रोन्मीलनप्रश्न—बृहद्ज्योतिषार्णव के अन्तर्गत
चमत्कारचिन्तामणि—भावप्रबोधिनी टीका, चौखम्बा सस्कृत सीरिज, काशी
छान्दोग्योपनिषद्—निर्णय सागर प्रेस बम्बई
जातकतत्व—महादेव शर्मा कृत, चन्द्रकान्त पाठक भुवनेश्वरी यन्त्रालय रतलाम
जातकपद्धति—केशवीय, वामनाचार्य संशोधन सहित, मेडीकल हाल प्रेस काशी
जातकपारिजात—परिमल टीका, चौखम्बा संस्कृत सीरिज काशी
जातकाभरण—ढुंढिराज, किशनलाल द्वारिका प्रसाद, बम्बई भूषण प्रेस मथुरा
जातकक्रोड़पत्र—शशिकान्त झा, मुजफ्फरपुर
ज्योतिर्गणितकौमुदी—रजनीकान्त शास्त्री रचित, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
ज्योतिषतत्त्वविवेकनिबन्ध—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
ज्योतिर्विवेकरत्नाकर—कर्मवीर प्रेस, जबलपुर
ज्योतिषसार—हस्त लिखित, नया मन्दिर, दिल्ली
ज्योतिषसारसंग्रह—भगवानदास टीका सहित, नरसिंह प्रेस २०१ हरिसन रोड कलकत्ता
ज्योतिषश्यामसंग्रह—खेमराज श्री कृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
ज्योतिषसिद्धान्तसारसंग्रह—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
ज्योतिष सागर— ,, ,,
ज्योतिष सिद्धान्तसार— ,, ,,
ज्ञानप्रदीपिका—श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा
तत्त्वार्थसूत्र—पन्नालाल बाकलीवाल टीका
ताजिकनीलकण्ठी—सीताराम टीका-मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स काशी
ताजिकनीलकण्ठी—शक्तिधर टीका, नवल किशोर प्रेस लखनऊ
ताजिकनीलकण्ठी—खेमराज श्री कृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
तिथि चिन्तामणि— ,, ,, ,,
दशाफलदर्पण—महादेव पाठक, भुवनेश्वरी प्रेस रतलाम
दैवज्ञकामधेनु—व्रजभूषणदास एण्ड सन्स काशी
दैवज्ञवल्लभ—चौखम्बा संस्कृत सीरिज काशी
नरपतिजयचर्या—निर्णय सागर प्रेस बम्बई
नारचन्द्रज्योतिष—हस्तलिखित, श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा
नारचन्द्रज्योतिषप्रकाश—रतीलाल-प्राणभुवनदास चूड़ीवाला, हीरापुर, सूरत
निमित्तशास्त्र—ऋषिपुत्र, सोलापुर
पञ्चाङ्गतत्त्व—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
पञ्चसिद्धान्तिका—डा० थीबो तथा सुधाकर टीका
पञ्चाङ्गफल—हस्तलिखित, ताड़पत्रीय श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा
पाशाकेवली—सकलकीर्त्ति विरचित, हस्तलिखित, श्री जैन सिद्धान्त भवन आरा
प्रश्नकुतूहल—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई

प्रश्नकौमुदी—वैंकटेश्वर प्रेस, बंबई
प्रश्नचिन्तामणि—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
प्रश्ननारदीय—बम्बई भूषण प्रेस मथुरा
प्रश्नप्रदीप—हस्तलिखित, वराहमिहिर पुस्तकालय पटना
प्रश्न वैष्णव—वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई
प्रश्न सिद्धान्त— ,,
प्रश्नसिन्धु—नारायण प्रसाद मुकुन्दराम टीका स०, मनोरंजन प्रेस बम्बई
बृहद्ज्योतिषार्णव— ,, ,, ,,
बृहज्जातक—मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स काशी
बृहत्पाराशरी, सीताराम टीका—मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स काशी
बृहत्संहिता भट्टोत्पली—दी० जे० लाजरस् कम्पनी काशी
ब्रह्मसिद्धान्त—व्रजभूषणदास एण्ड सन्स काशी
भविष्यज्ञानज्योतिष—तिलकविजय रचित, कटरा खुशालराय देहली
भावप्रकरण—विमलगणि विरचित, सुखसागरज्ञान प्रचारक सभा लोहावट (मारवाड़)
भावकुतूहल—व्रजवल्लभ हरिप्रसाद कालबादेवी रोड, रामवाड़ी बम्बई
भावनिर्णय—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
भुवनदीपक—पद्मप्रभसूरि कृत, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
मण्डलप्रकरण—मुनि चतुरविजय कृत, आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
मानसागरीपद्धति—निर्णयसागर प्रेस बम्बई
मानसागरी पद्धति—चौखम्बा संस्कृत सीरिज काशी
मुहूर्त्त चिन्तामणि—पीयूषधारा टीका
मुहूर्त्त चिन्तामणि—मिताक्षरा टीका
मुहूर्त्त मार्त्तण्ड—चौखम्बा संस्कृत सीरिज काशी
मुहूर्त्त दर्पण—नेमिचन्द्र शास्त्री, श्री जैन बालाविश्राम आरा
मुहूर्त्त संग्रह—नवल किशोर प्रेस लखनऊ
मुहूर्त्त सिन्धु—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
मुहूर्त्त गणपति—चौखम्बा संस्कृत सीरिज काशी
यन्त्रराज—महेन्द्र गुरु विरचित, निर्णयसागर प्रेस बम्बई
यवनजातक या मीनराज जातक—हस्त लिखित, वराहमिहिर पुस्तकालय पटना
रिष्ट समुच्चय—दुर्ग देव, गोधा ग्रन्थमाला इन्दौर
लघुजातक—मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स काशी
लघुसंग्रह—महाराजदीन टीका, बैजनाथ बुकसेलर काशी
वर्षप्रबोध—मेघविजय गणि कृत,
विद्यामाधवीय—गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी मैसूर
विवाहवृन्दावन—मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स काशी
वैजयन्ती गणित—राधा यन्त्रालय बीजापुर
शिवस्वरोदय—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
समरसार—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
सर्वार्थसिद्धि—रावजी सखाराम दोशी, सोलापुर

सामुद्रिक शास्त्र—श्री जैन सिद्धान्त-भवन, आरा
सामुद्रिकशास्त्र—हस्तलिखित, नया मन्दिर दिल्ली
सारावली—कल्याणवर्मा रचित, निर्णय सागर प्रेस बम्बई
सुगमज्योतिष—देवीदत्त जोशी कृत, मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स बनारस
स्वप्नप्रकाशिका—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
स्वप्नविज्ञान—गिरीन्द्र शंकर कृत, किताबमहल, जीरोरोड प्रयाग
स्वप्नसार—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
स्वप्नफल— " "
स्वप्नफल—हस्तलिखित, मुनीश्वरानन्द पुस्तकालय आरा
स्वप्नज्ञान—हस्त लिखित, वराहमिहिर पुस्तकालय पटना सिटी
हस्तविज्ञान—रतलाम
हस्तसंजीवन—मेघविजयरचित, गणेश दत्त टीका, बनारस
हस्तसंजीवन—सामुद्रिक लहरी टीका, मुनिश्री मोहनलाल जैन ग्रन्थमाला इन्दौर

विषय-सूची

प्रस्तावना

ग्रन्थ

परिशिष्ट नं० १—मुहूर्तप्रकरण

परिशिष्ट नं० २–जन्मपत्री बनाने की विधि

परिशिष्ट नं० ३–विवाह में मेलापक-वर-कन्या की कुण्डली गणना

प्रस्तावना

सूर्य, चन्द्र और तारे प्राचीनकाल से ही मनुष्य के कौतूहल के विषय रहे हैं। मानव सदा इन रहस्य-मयी वस्तुओं के रहस्य को जानने के लिये उत्सुक रहता है। वह यह जानना चाहता है कि ग्रह क्यों भ्रमण करते हैं और उनका प्रभाव प्राणियों पर क्यों पड़ता है? उसकी इसी जिज्ञासा ने उसे ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन के लिये प्रेरित किया है।

भारतीय ऋषियों ने अपने दिव्यज्ञान और सक्रिय साधना द्वारा आधुनिक यन्त्रों के अभाव में भी प्रागैतिहासिक काल में इस शास्त्र की अनेक गुत्थियों को सुलझाया था। यद्यपि आज पाश्चात्य सभ्यता के रङ्ग में रङ्गकर कुछ लोग इस विज्ञान को विदेशीय देन बतलाते हैं, पर प्राचीन शास्त्रों का अवगाहन करने पर उक्त धारणा भ्रान्त सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकती है।

भारतीय विज्ञान की उन्नति में इतर धर्मावलम्बियों के साथ कन्धे से कन्धा लगाकर चलने वाले जैनाचार्यों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी अमर लेखनी से प्रसूत दिव्य रचनाएँ आज भी जैन विज्ञान की यशःपताका को फहरा रही हैं। ज्योतिषशास्त्र के इतिहास का आलोडन करने पर ज्ञात होता है कि जैनाचार्यों द्वारा निर्मित ज्योतिष ग्रन्थों से भारतीय ज्योतिष में अनेक नवीन बातों का समावेश तथा प्राचीन सिद्धान्तों में परिमार्जन हुए हैं। जैन ग्रन्थों की सहायता के बिना भारतीय ज्योतिष के विकास क्रम को समझना कठिन ही नहीं, असंभव है।

भारतीय ज्योतिष का शृङ्खलाबद्ध इतिहास हमें आर्यभट्ट के समय से मिलता है। इसके पूर्ववर्ती ग्रन्थ वेद, अंगसाहित्य, ब्राह्मण, सूर्यप्रज्ञप्ति, गर्गसंहिता, ज्योतिष्करण्डक एवं वेदाङ्गज्योतिष प्रभृति ग्रन्थों में ज्योतिषशास्त्र की अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का वर्णन आया है। वेदाङ्गज्योतिष में पञ्चवर्षीय युग पर से उत्तरायण और दक्षिणायण के तिथि, नक्षत्र एवं दिनमान आदि का साधन किया है। इसके अनुसार युग का आरम्भ माघ शुक्ल प्रतिपदा के दिन सूर्य और चन्द्रमा के धनिष्ठा नक्षत्र सहित क्रान्तिवृत्त में पहुँचने पर होता है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल कई शती ई० पू० माना जाता है। विद्वानों ने इसके रचनाकाल का पता लगाने के लिये जैन ज्योतिष को ही पृष्ठभूमि स्वीकार किया है। वेदाङ्गज्योतिष पर उसके पूर्ववर्ती और समकालीन ज्योतिष्करण्डक, सूर्यप्रज्ञप्ति एवं षट्खण्डागम में फुटकर उपलब्ध ज्योतिष चर्चा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। 'हिन्दुत्व' के लेखक ने जैन ज्योतिष का महत्त्व और प्राचीनता स्वीकार करते हुए लिखा है—"भारतीय ज्योतिष में यूनानियों की शैली का प्रचार विक्रमीय संवत् से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ। पर जैनों के मूलग्रन्थ अंगों में यवन ज्योतिष का कुछ भी आभास नहीं है। जिस प्रकार सनातनियों की वेदसंहिता में पञ्चवर्षात्मक युग है और कृत्तिका से नक्षत्र गणना है उसी प्रकार जैनों के अंग ग्रन्थों में भी।"[1]

डा० श्यामशास्त्री ने वेदाङ्ग-ज्योतिष की भूमिका में बताया है—"वेदाङ्गज्योतिष के विकास में जैन ज्योतिष का बड़ा भारी सहयोग है, बिना जैन ज्योतिष के अध्ययन के वेदाङ्गज्योतिष का अध्ययन अधूरा ही कहा जायगा। भारतीय प्राचीन ज्योतिष में जैनाचार्यों के सिद्धान्त अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं।" पञ्चवर्षात्मक युग का सर्व प्रथम उल्लेख जैन ग्रन्थों में ही आता है। काललोकप्रकाश, ज्योतिष्करण्डक और सूर्यप्रज्ञप्ति में जिस पञ्चवर्षात्मक युग का निरूपण किया है, वह वेदाङ्गज्योतिष के युग से भिन्न और प्राचीन है। सूर्यप्रज्ञप्ति में युग का निरूपण करते हुए लिखा है—

---

१ देखें—हिन्दुत्व पृ० ५८१।

**"सावणबहुलपडिवए बालवकरणे अभीइनक्खत्ते।
सव्वत्थ पढमसमये जुअस्स आइं वियाणाहि॥"**

अर्थात् श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन अभिजित् नक्षत्र में पञ्चवर्षीय युग का आरम्भ होता है।

जैनज्योतिष की प्राचीनता के अनेक सबल प्रमाण मौजूद हैं। प्राचीन जैनागम में ज्योतिषी के लिये 'जोइसगविउ' वाक्य का प्रयोग आया है। प्रश्नव्याकरणाङ्ग में बताया है—**"तिरियवासी पंचविहा जोइसीया देवा, वहस्सती, चन्द, सूर, सुक्क, सणिच्छरा, राहू धूमकेउ, बुद्धा य, अंगारगा य, तत्तवणिज्ज कणगवण्णा जेयगहा जोइसियंमि चारं चरंति. केतुय गतिरतीया। अट्ठावीसतिविहाय णक्खतरेवगणा णाणासंठाणसंठियाओ य तारगाओ ठियलेस्साचारिणो य।"** इससे स्पष्ट है कि नवग्रहों का प्रयोग ग्रहों के रूप में ई० पू० तीसरी शती से भी पहले जैनो में प्रचलित था। ज्योतिष्करण्डक का रचनाकाल ई० पू० तीसरी या चौथी शताब्दी निश्चित है, उसमें लग्न का जो निरूपण किया है, उससे भारतीय ज्योतिष की कई नवीन बातों पर प्रकाश पड़ता है।

**"लग्गं च दक्खिणायविसुवे सुवि अस्स उत्तरं अयणे।
लग्गं साई विसुवेसु पंचसु वि दक्खिणे अयणे॥"**

इस पद्य में 'अस्स' यानी अश्विनी और 'साई' यानी स्वाति ये विषुव के लग्न बताये गये हैं। ज्योतिष्करण्डक में विशिष्ट अवस्था के नक्षत्रों को भी लग्न कहा गया है। यवनों के आगमन के पूर्व भारत में यही जैन लग्नप्रणाली प्रचलित थी। वेदाङ्गज्योतिष में भी इस लग्नप्रणाली का आभास मिलता है—**"श्रविष्ठाभ्यां गुणाभ्यस्तान् प्राविलग्नान विनिर्दिशेत्"** इस पद्यार्थ में वर्तमान लग्न नक्षत्रों का निरूपण किया गया है। प्राचीन भारत में विशिष्ट अवस्था की राशि के समान विशिष्ट अवस्था के नक्षत्रों को भी लग्न कहा जाता था।

जैन ज्योतिष की प्राचीनता का एक प्रमाण पञ्चवर्षात्मक युग में व्यतीपात आनयन की प्रक्रिया है। वेदाङ्गज्योतिष से भी पहले इस प्रक्रिया का प्रचार भारतवर्ष में था। प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

**"अयणाणं सम्बन्धे रविसोमाणं तु वे हि य जुगम्मि।
जं हवइ भागलद्धं वइहया तत्तिया होन्ति॥"
"बावत्तपरीयमाणे फलरासी इच्छिते उ जुगभे ए।
इच्छियवइवायंपि य इच्छं काऊण आणे हि॥*"**

इन गाथाओं की व्याख्या करते हुए टीकाकार मलयगिरि ने **"इह सूर्यचन्द्रमसौ स्वकीयेऽयने वर्तमानौ यत्र परस्परं व्यतिपततः स कालो व्यतिपातः, तत्र रविसोमयोः युगे युगमध्ये यानि अयनानि तेषां परस्परं सम्बन्धे एकत्र मेलने कृते द्वाभ्यां भागो ह्रियते। हृते च भागे यद्भवति भागलब्धं तावन्तः तावत्प्रमाणा; युगे व्यतिपाता भवन्ति।"**

गणितक्रिया—७२ व्यतिपात में १२४ पर्व होते हैं तो एक व्यतिपात में क्या? ऐसा अनुपात करने पर—

$\frac{१२४ \times १}{७२} = १\frac{५२}{७२} \times १५ = १०\frac{६०}{७२}$ तिथि, $\frac{६०}{७२} \times \frac{३०}{१} = २५$ मुहूर्त्त। व्यतिपात ध्रुवराशि की पट्टिका एक युग में निम्न प्रकार आयगी :—

* देखें—ज्योतिष्करण्डक ० २००—२०५

		पर्व	तिथि	मुहूर्त
(१)	$\frac{१२४}{७२} \times १ =$	१	१०	२५
(२)	$\frac{१२४}{७२} \times २ =$	३	६	२०
(३)	$\frac{१२४}{७२} \times ३ =$	५	२	१५
(४)	$\frac{१२४}{७२} \times ४ =$	६	१३	१०
(५)	$\frac{१२४}{७२} \times ५ =$	८	९	५
(६)	$\frac{१२४}{७२} \times ६ =$	१०	५	०
(७)	$\frac{१२४}{७२} \times ७ =$	१२	०	२५
(८)	$\frac{१२४}{७२} \times ८ =$	१३	११	२०
(९)	$\frac{१२४}{७२} \times ९ =$	१५	७	१५
(१०)	$\frac{१२४}{७२} \times १० =$	१७	३	१०

जैन ज्योतिष की प्राचीनता उसकी नक्षत्रगणना से भी सिद्ध होती है। प्राचीनकाल में कृत्तिका से नक्षत्रगणना ली जाती थी, पर मेरा विचार है कि अभिजित्‌वाली नक्षत्रगणना कृत्तिकावाली नक्षत्रगणना से प्राचीन है। जैन ग्रन्थों में अभिजित्‌वाली नक्षत्रगणना वर्तमान है। कृत्तिका से नक्षत्रगणना का प्रयोग भी प्राचीन जैन ज्योतिषग्रन्थों में मिलता है तथा चान्द्र नक्षत्रों की अपेक्षा सावन नक्षत्रों का विधान अधिक है।

जैन संवत्सर प्रणाली को देखने से प्रतीत होता है, कि इसका प्रयोग प्राचीन भारत में ई० पू० दस शताब्दी से भी पहले था। वेदों में जो संवत्सर के नाम आये हैं, जैन ग्रन्थों में उनसे भिन्न नाम हैं। यह संवत्सर की प्रणाली अभिजित् नक्षत्र पर आश्रित है। नाक्षत्र संवत्सर, युगसंवत्सर, प्रमाणसंवत्सर और शनिसंवत्सर। बृहस्पति जब सभी नक्षत्रसमूह को भोग कर पुनः अभिजित् नक्षत्र पर आता है तब महानाक्षत्र संवत्सर होता है।

षट्खण्डागम धवला टीका[1] में रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, दैत्य, वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित्, रोहण, बल, विजय, नैर्ऋत्य, वरुण, अर्यमन् और भाग्य ये पन्द्रह मुहूर्त आये हैं। मुहूर्तों की नामावली टीकाकार की अपनी नहीं है, उन्होंने पूर्व परम्परा से प्राप्त श्लोकों को उद्धृत किया है। अतः मुहूर्तचर्चा पर्याप्त प्राचीन प्रतीत होती है।

जैन ज्योतिष साहित्य के भेद-प्रभेदों का दिग्दर्शन

षट्खण्डागम की धवलाटीका में प्राप्त प्राचीन उद्धरण, तिलोयपण्णत्ती, जम्बूद्वीपपण्णत्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करण्डक तथा आगम ग्रन्थों में प्राप्त ज्योतिषचर्चा के अतिरिक्त इस विषय के सैकड़ों स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। नक्षत्रों के सम्बन्ध में जितना ऊहापोह जैनाचार्यों ने किया है, उतना अन्य लोगों ने नहीं।

---

१ देखें—धवला टीका ४ जिल्द ३१८ पृ०

प्रश्नव्याकरणाङ्ग में नक्षत्र योगों का वर्णन विस्तार के साथ किया है। इसमें नक्षत्रों के कुल, उपकुल और कुलोपकुलों का निरूपण करते हुए बताया है[1]—"धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा; पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल एवं उत्तराषाढ़ा ये नक्षत्र कुलसंज्ञक; श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा एव पूर्वाषाढ़ा ये नक्षत्र उपकुल संज्ञक और अभिजित्, शतभिषा, आर्द्रा एवं अनुराधा कुलोपकुल संज्ञक हैं।" यह कुलोपकुल का विभाजन पूर्णमासी को होने वाले नक्षत्रों के आधार पर किया गया है।

इस वर्गीकरण का स्पष्टीकरण करते हुए बताया है कि श्रावणमास के धनिष्ठा, श्रवण और अभिजित्; भाद्रपद मास के उत्तराभाद्रपद, पूर्वाभाद्रपद और शतभिष, आश्विन मास के अश्विनी और रेवती; कार्त्तिक मास के कृत्तिका और भरणी, अगहन या मार्गशीर्ष मास के मृगशिरा और रोहिणी, पौष मास के पुष्य, पुनर्वसु और आर्द्रा; माघ मास के मघा और आश्लेषा; फाल्गुन मास के उत्तराफाल्गुनी और पूर्वाफाल्गुनी; चैत्र मास के चित्रा और हस्त; वैशाखमास के विशाखा और स्वाती; ज्येष्ठमास के मूल, ज्येष्ठा और अनुराधा एवं आषाढ़ मास के उत्तराषाढ़ा और पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र बताये गये हैं। प्रत्येक मास की पूर्णमासी को उस मास का प्रथम नक्षत्र कुल संज्ञक, दूसरा उपकुल संज्ञक और तीसरा कुलोपकुल संज्ञक होता है। अर्थात् श्रावण मास की पूर्णिमा को धनिष्ठा पड़े तो कुल, श्रवण हो तो उपकुल, और अभिजित् हो तो कुलोपकुल संज्ञावाला होता है। इसी प्रकार आगे आगे के महीनों के नक्षत्र भी बताये गये हैं।

ऋग्वेद संहिता में ज्योतिषविषयक ऋतु, अयन, मास, पक्ष, नक्षत्र, तिथि आदि की जैसी चर्चा है, उसी प्रकार की प्राचीन परम्परा से चली आयी चर्चा इस ग्रन्थ में भी मौजूद है।

समवायाङ्ग में आर्द्रा, चित्रा और स्वाति नक्षत्र की एक-एक तारा; पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपद की दो दो ताराएँ, मृगशिरा, पुष्य, ज्येष्ठा, अभिजित्, श्रवण, अश्विनी और भरणी नक्षत्र की तीन-तीन ताराएँ; अनुराधा, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा की चार-चार ताराएँ; रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा और धनिष्ठा नक्षत्र की पाँच-पाँच ताराएँ, कृत्तिका और आश्लेषा की छह-छह ताराएँ; एव मघा नक्षत्र की सात ताराएँ बतायी गयी हैं[2]। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा ये सात नक्षत्र पूर्वद्वार वाले; मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा ये सात दक्षिणद्वार वाले, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण ये सात पश्चिम द्वार वाले एव धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी ये सात नक्षत्र उत्तर द्वार वाले हैं[3]। इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में नक्षत्रों का विस्तृत विचार किया गया है।

फुटकर ज्योतिषचर्चा के अलावा सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करण्डक, अगविज्जा, गणिविज्जा, मण्डलप्रवेश, गणितसारसंग्रह; गणितसूत्र, व्यवहारगणित, जैन गणितसूत्र, सिद्धान्तशिरोमणि—त्रैवेद्य मुनि, गणितशास्त्र, गणितसार, जोइसार, पञ्चाङ्गानयनविधि, इष्टतिथिसारणी, लोकविजययन्त्र, पञ्चाङ्गतत्त्व, केवलज्ञानहोरा, आयज्ञानतिलक, आयसद्भाव प्रकरण, रिट्ठसमुच्चय, अर्घकाण्ड, ज्योतिषप्रकाश, जातकतिलक, नक्षत्रचूड़ामणि आदि सैकड़ो ग्रन्थ हैं।

---

१ "ता कहंते कुला उवकुला कुलावकुला आहितेति वदेज्जा ? तत्थ खलु इमा बारस कुला बारस उवकुला चत्तारि कुलावकुला पण्णत्ता············।"–प्रश्न० १०।५। २ "अद्दाणक्खत्ते एगतारे। चित्ताणक्खत्ते एकतारे। सातिणक्खत्ते एगतारे। पुव्वाफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे। उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे। पुव्वभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे। उत्तराभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे······"–समवायाङ्ग १।६, २।४, ३।२, ४।३, ५।९, ६।७। ३ "कत्तिआइया सत्तणक्खत्ता पुव्वदारिआ। महाइआ सत्तणक्खत्ता दाहिणदारिआ। अणुराहाइआ सत्त णक्खत्ता अवरदारिआ। धणिट्ठाइआ सत्तणक्खत्ता उत्तरदारिआ।"–समवायाङ्ग ७।५।

विषयविचार की दृष्टि से जैन ज्योतिष को प्रधानतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक गणित और दूसरा फलित। गणितज्योतिष-सैद्धान्तिक दृष्टि से गणित का महत्त्वपूर्ण स्थान है, ग्रहों की गति, स्थिति, वक्री, मार्गी, मध्यफल, मन्दफल, सूक्ष्मफल, कुज्या, त्रिज्या, बाण, चाप, व्यास, परिधिफल एवं केन्द्रफल आदि का प्रतिपादन बिना गणित ज्योतिष के नहीं हो सकता है। आकाशमण्डल में विकीर्णित तारिकाओं का ग्रहों के साथ कब-कैसा सम्बन्ध होता है, इसका ज्ञान भी गणित प्रक्रिया से ही सम्भव है। जैनाचार्यों ने गणित ज्योतिष संबन्धी विषय का प्रतिपादन करने के लिये पाटीगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, गोलीयरेखागणित, चापीय एवं वक्रीय त्रिकोणमिति, प्रतिभागणित, शृंगोन्नतिगणित, पंचांग-निर्माणगणित, जन्मपत्रनिर्माण गणित, ग्रहयुति, उदयास्तसम्बन्धी गणित एवं यन्त्रादि साधन सम्बन्धी गणित का प्रतिपादन किया है।

जैनपाटी गणित के अन्तर्गत परिकर्माष्टकसंबंधी गणित-जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन एवं घनमूल आदि हैं। इसी प्रकार श्रेणीविभागसंबधी गणित के भी अनेक भेद प्रभेद बताए हैं-जैसे युगोत्तरश्रेणी, चितिघन, वर्गचितिघन, घनचितिघन आदि हैं। चितिघन से किसी स्तूप, मन्दिर एवं दीवाल आदि की ईंटों का हिसाब आसानी से किया जा सकता है। गुणोत्तर श्रेणी के सिद्धान्तों को भी महावीराचार्य ने गणितसार नामक ग्रन्थ में विस्तार से बताया है। गणितसारसंग्रह में विलोमगणित या व्यस्तविधि, त्रैराशिक, स्वांश नुबन्ध, स्वांशापवाह, इष्टकर्म, द्वीष्टकर्म, एकादिभेद, क्षेत्रव्यवहार, अकपाश एवं समय-दूरी संबंधी प्रश्नों की क्रियाएँ विस्तारपूर्वक बताया गयी हैं। जैन गणित के विकास का स्वर्णयुग छठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक है, इसके पूर्व स्वतन्त्र रूप से एतद्विषयक रचना प्रायः अनुपलब्ध है। हां, फुटकर रूप में आगम-संबधी ग्रन्थो में गणित के अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त निबद्ध किये गये हैं। षट्खण्डागम के सूत्रों में भी गणित के बीजसूत्र मिलते हैं। चौथी शताब्दी के लगभग की रचना तिलोयपण्णत्ति में बीजगणित, अंकगणित एवं रेखागणित सत्रधी अनेक नियम हैं। संकलित धन निकालने के लिये दिये गए निम्न सिद्धान्त गणित दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है :—

"पदवग्गं चयपहदं दुगुणिदगच्छेण गुणिदमुहजुत्तं।
वड्ढिहदपदविहीणं दलिदं जाणिज्ज संकलिदं ॥ ७६ ॥
प.वग्गं पदरहिदं चयगुणिदं पदहदादिजुगमद्धं।
मुहदलपहदपदेणं संजुत्तं होदि संकलिदं ॥ ८१ ॥"

अर्थात्-पद के वर्ग को चय से गुणा करके उसमें दुगुने पद से गुणित मुख को जोड़ देने पर जो राशि उत्पन्न हो, उसमें से चय से गुणित पद प्रमाण को घटाकर शेष को आधा कर देने पर प्राप्त हुई राशि के प्रमाण संकलित धन होता है ॥ ७६ ॥ पद का वर्गकर उसमें से पद के प्रमाण को कम करके अवशिष्ट राशि को चय के प्रमाण से गुणा करना चाहिये, पश्चात् उसमें से पद से गुणित आदि को मिलाकर और फिर उसका आधा कर प्राप्त राशि में मुख के अर्ध भाग से गुणित पद के मिला देने पर संकलित धन का प्रमाण निकलता है ॥८१॥

उपर्युक्त दोनों ही नियम गणित में महत्त्वपूर्ण और नवीन हैं। तुलनात्मक दृष्टि से आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कर जैसे गणितज्ञों के नियम भी उक्त नियमों की अपेक्षा स्थूल हैं। आर्यभट्टी ग्रन्थ का अवलोकन करने से मालूम होता है कि यह आचार्य भी जैन गणित के वर्गमूल और घनमूल संबधी सिद्धान्तों से अवश्य प्रभावित हुए हैं। डा० कर्ण साहब ने आर्यभट्टी की भूमिका एवं अंग्रेजी नोट्स् में इस बात का कुछ संकेत भी किया है। तथा आर्यभट्ट ने भी जैनयुग की उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी संबंधी कालगणना को स्वीकार किया है। आर्यभट्टी के निम्नश्लोक से यह बात स्पष्ट है:-

"उत्सर्पिणी युगार्द्धं पश्चादवसर्पिणी युगार्द्धं च।
मध्ये युगस्य सुषमा आदावन्ते दुःषमान्यंशात् ॥"

आर्यभट्ट की संख्यागणना भी जैनाचार्यों की संख्यागणना के समान ही है। सूर्यप्रज्ञप्ति में जिस वर्गाक्षर क्रम से संख्या का प्रतिपादन किया है वही क्रम आर्यभट्ट का भी है।

प्राचीन जैन गणित ज्योतिष का एक और ग्रन्थ है जिसका परिचय सिंहसूरि विरचित लोकतत्त्व विभाग में निम्न प्रकार मिलता है:—

"वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पाण (पाण्ड्य) राष्ट्रे शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनिसर्वनन्दी ॥"

इससे स्पष्ट है कि सर्वनन्दी आचार्य का गणितज्योतिष का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रहा होगा, जिसमें लोकवर्णन के साथ-साथ गणित के भी अनेक सिद्धान्त निबद्ध किये गये होंगे। आठवीं शताब्दी में पाटीगणित सबंधी कई महत्त्वपूर्ण जैन ग्रन्थ लिखे गये हैं। इस काल में महावीराचार्य ने गणितसारसंग्रह, गणितशास्त्र एवं गणितसूत्र ये तीन ग्रन्थ प्रधान रूप से लिखे हैं। ये आचार्य गणित के बड़े भारी उद्भट विद्वान् थे। इनकी वर्ग करने की अनेक रीतियों में निम्नलिखित रीति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और भारतीय गणित में उल्लेख योग्य है:—

"कृत्वान्त्यकृतिं हन्याच्छेषपदैर्द्विगुणमन्त्यमुत्सार्य।
शेषानुत्सार्येवं करणीयो विधिरयं वर्गे ॥"

अर्थात्—अन्त्य अंक का वर्ग करके रखना फिर जिसका वर्ग किया है, उसको दूना करके शेष अंकों से गुणाकर एक अंक आगे हटाकर रखना। इसी प्रकार अन्त तक वर्ग करके जोड़ देने से पूर्ण राशि का वर्ग होता है। इस वर्ग करने के नियम में हम उपपत्ति (वासना) अन्तर्निहित पाते हैं। क्योंकि—

$अ^2 = (क+ग)^2 = (क+ग)\ (क+ग) = अ^2$

$= क\ (क+ग) + ग\ (क+ग) = क^2 + क.ग + क.ग + ग^2 = क^2 + 2\ क.ग + ग^2$

इससे स्पष्ट है कि उक्त राशि में अन्त्य अक्षर क का वर्ग करके वर्गित अक्षर क को दूना कर आगे वाले अक्षर ग से गुणा किया है तथा अन्त्य के अक्षर ग का वर्गकर जोड़ दिया है। इस प्रकार उक्त सूत्र में बीजगणितगत वासना भी अन्तर्निहित है।

दशमी शताब्दी में कविराजकुञ्जर ने कन्नड़ भाषा में लीलावती नाम का महत्त्वपूर्ण गणित ग्रन्थ लिखा है। त्रिलोकसार एवं गोम्मटसार में गणित सबंधी कई महत्त्वपूर्ण नियम आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने बताये हैं। वस्तुतः जीवा, चाप, बाण और क्षेत्रफल सबंधी गणित में ये आचार्य पूर्ण निष्णात थे। जैनाचार्यों ने ज्योतिष संबंधी गणित ग्रन्थों की रचना संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, तामिल एवं मलयालम आदि भाषाओं में भी की है। कवि राजकुञ्जर की लीलावती में क्षेत्र-व्यवहार सबंधी अनेक विशेषताएँ बतायी गयी हैं। ग्यारहवीं शताब्दी का एक जैन गणित ग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिखा मिलता है। इसमें मिश्रित प्रश्नों के उत्तर श्रेणी व्यवहार और कुट्टक की रीति से दिये गये हैं। इसी काल में श्रीधराचार्य ने गणितशास्त्र नामक एक ग्रन्थ रचा है, इसमें ग्रहगणितोपयोगी आरम्भिक गणितसिद्धान्तों की चर्चा की गयी है। चौदहवीं शताब्दी के आस पास के जैनाचार्य श्रेष्ठ चन्द्रने गणितशास्त्र नामक ग्रन्थ एवं सिंहतिलक सूरि ने तिलक नामक गणित ग्रन्थ तथा जैनेतर कई गणित ग्रन्थों के ऊपर टीकाएँ लिखी हैं। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी तक मौलिक एवं टीका ग्रन्थ गणित संबंधी लिखे जाते रहे हैं।

रेखागणित—जैनाचार्यों ने गणितशास्त्र के भिन्न-भिन्न अङ्गों पर लिखा है। रेखागणित के द्वारा उन्होंने विशेष-विशेष संस्थान या क्षेत्र के भिन्न-भिन्न अंशों का परस्पर सम्बन्ध बतलाया है; इसमें कोण, रेखा, समकोण, अधिक कोण, न्यूनकोण, समतल और घनपरिमाण आदि के विषय का निरूपण किया गया है। जैन ज्योतिष में समतल और घनरेखागणित, व्यवच्छेदक या बैजिक रेखागणित, चित्ररेखागणित और उच्चतर रेखागणित के रूप में मिलता है। समतल रेखागणित में सरलरेखा, समतलक्षेत्र, घनक्षेत्र और वृत्त के सामान्य विषय का जैन ज्यातिर्विदों ने निरूपण किया है। उच्चतर रेखागणित में—सूर्चीछेद, वक्ररेखा और उसकी क्षेत्रावली का आलोचन किया है। चित्ररेखागणित में—सूर्यपरिलेख, चन्द्रपरिलेख एव भौमादि ग्रहों के परिलेख तथा यन्त्रों द्वारा ग्रहो के वेध के चित्र दिखलाये गये हैं। ज्योतिष शास्त्र में इस रेखागणित का बड़ा भारी महत्त्व है। इसके द्वारा ग्रहण आदि का साधन बिना पाटीगणित की क्रिया के सरलतापूर्वक किया जा सकता है। व्यवच्छेदक रेखागणित या बैजिक रेखागणित में —बीज सम्बधी क्रियाओ को रेखाओं द्वारा हल किया जाता है। जैनाचार्य श्रीधर ने सरलरेखा, वृत्त, रैखिक क्षेत्र, नलाकृति, मोचाकृति, और वर्त्तुलाकृति आदि विषयो का वर्णन बैजिक रेखागणित मे किया है। यों तो जैन ज्योतिष मे स्वतन्त्र रूप से रेखागणित के सम्बध में प्राय: गणित ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं, परन्तु पाटीगणित के साथ या पञ्चाङ्गनिर्माण अथवा अन्य सैद्धातिक ज्योतिष ग्रन्थो के साथ में रेखागणित मिलता है।

गणितसार सग्रह में त्रिभुजा के कई भेद बतलाये गये हैं तथा उनमें भुज, कोटि, कर्ण और क्षेत्रफल भी सिद्ध किये हैं। जात्य त्रिभुज के भुजकोटि, कर्ण और क्षेत्रफल लाने का निम्नप्रकार बताया है—
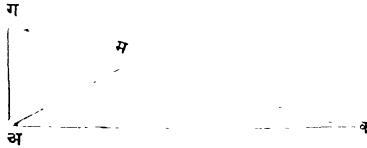
इस त्रिभुज में अक, अग, भुज और कोटि हैं, कग, कर्ण हैं, क अ ग ∠समकोण हैं, असम कोण विन्दु से क ग करण के ऊपर लम्ब किया है—

$\because$ $\text{अक}^2 = \text{कग} \times \text{कम}$; $\text{अग}^2 = \text{कग} \times \text{गम}$ $\therefore$ $\text{अक}^2 + \text{अग}^2 = \text{कग} \times \text{कम} + \text{कग} \times \text{गम} = \text{कग} (\text{कम} + \text{गम}) = \text{कग} \times \text{कग} = \text{कग}^2 = \text{अक}^2 + \text{कग}^2 = \text{कग}$ $\sqrt{\text{अक}^2 + \text{कग}^2} = \sqrt{\text{कोटि}^2 + \text{भु}^2} = \text{कर्ण}$; $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{भुज}^2} = \text{कोटि}$, $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{कोटि}^2} = \text{भुज}$

जात्य त्रिभुज का क्षेत्रफल निम्नप्रकार से निकाला जायगा :—

अ

इ क उ
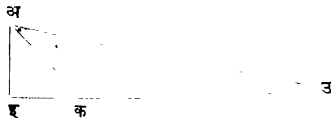
अ इ उ त्रिभुज में लघुभुज=भु; बृहद्भुज=भुं; भूमि=भू, अ क=लम्ब; छोटी आबाध इ क= $\dfrac{\text{भू}^2 - (\text{भुं}^2 - \text{भु}^2)}{2\text{भू}}$

$$\text{लं}^2 = \text{भु}^2 \left\{\frac{\text{भू}^2 - (\text{भूं}^2 - \text{भु}^2)}{2\text{भु}}\right\} = \left\{\text{भु} + \frac{(\text{भू}^2 - (\text{भुं}^2 - \text{भु})}{2\text{भू}}\right\} \times \left\{\text{भु} - \frac{(\text{भू}^2 - \text{भुं}^2 - \text{भु}^2)}{2\text{भू}}\right\}$$

इस प्रकार जैनाचार्यों ने सरलरेखात्मक आकृतियों के निर्माण क्षेत्रफलों के जोड़ तथा आकृतियों के स्वरूप आदि बतलाये हैं, अतः गणितसारसंग्रह के क्षेत्राध्याय पर से रेखागणित सम्बन्धी निम्न सिद्धान्त सिद्ध होते हैं—

(१) समकोण त्रिभुज में कर्ण का वर्ग भुज और कोटि के वर्ग के योग के बराबर होता है [१]।

(२) वृत्तक्षेत्र में क्षेत्रफल का तृतीयांश सूची होती है।

(३) आयत क्षेत्र को वर्गक्षेत्र में एवं वर्गक्षेत्र को आयतक्षेत्र के रूप में बदला जा सकता है।

(४) चतुर्भुज क्षेत्र में चारो भुजाओ को जोड़ कर आधा करने पर जो अवशेष रहे, उसमें से पृथक् पृथक् चारो भुजाओं को घटाने पर जो जो बचे उन्हें तथा पहले आधी की गई राशि को गुणा करके गुणनफल का वर्गमूल निकालने पर विषमबाहु चतुर्भुज का सूक्ष्मफल आता है [२]।

(५) दो वर्गों के योग अथवा अन्तर के समान वर्ग बनाने की प्रक्रिया।

(६) विषम कोण चतुर्भुज के कर्णानयन की विधि तथा लम्ब, लध्वाबाधा एव बृहदाबाधा आदिका विधान।

(७) त्रिभुज, विषमकोण, समचतुर्भुज, आयतक्षेत्र, वर्गक्षेत्र, पंचभुजक्षेत्र, षट्भुजक्षेत्र, ऋजुभुजक्षेत्र, एव बहुभुजक्षेत्र आदि के क्षेत्रफलो का विधान।

(८) वृत्तक्षेत्र, जीवा, वृत्तखण्ड की ज्या, वृत्तखण्ड की चाप एव वृत्तफल आदि निकालने का विधान।

(९) सूचीक्षेत्र, सूचीव्यास, सूचीफल एव सूची के संबध मे विविध परामर्श आदि का विधान।

(१०) शकु और कर्त्तुल के घनफलों का विधान, इत्यादि।

जैनाचार्यों ने रेखागणित से ज्योतिष सम्बन्धी सिद्धान्तों को निश्चित करते हुए लिखा है कि क्रान्तिवृत्त और विषुवरेखा के मिलने से जो कोण होता है वह २३$\frac{१}{२}$ अश परिमित है। यहां से सूर्य उत्तरायण पथ से ६६$\frac{१}{२}$ अंश तक दूर चला जाता है।

इसी प्रकार दक्षिणायन पथ में भी ६६ अश तक गमन करता है। अतएव खगोलस्थ उत्तर केन्द्र से सूर्य की गति११३$\frac{१}{२}$ अंश दूर तक हुआ करती है। जैन मान्यता में जिन वृत्तों की कल्पना खगोलस्थ दोनों केन्द्रों के मध्य की गई है उन्हें होराचक्र और प्रथम होराचक्र से ज्योतिर्मण्डल के पूर्व भाग के दूरत्व को विक्षेप बताया है। इस प्रकार विक्षेपाग्र को केन्द्र मानकर ग्राहक या छादक के व्यासार्ध के समान त्रिज्या से बना हुआ वृत्त जहा छाद्य बिम्ब को काटता है, उतना ही ग्रहण का परम ग्रास भाग होता है। इसी प्रकार चन्द्रशर द्वारा विमण्डलीय, ध्रुवप्रोत वृत्तीय एव क्रान्तिवृत्तीय शरों का आनयन प्रधान रूप से किया है। रेखागणित के प्रवर्त्तक यतिवृषभ, श्रीधर, श्रीपति, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, पद्मप्रभसूरि, देवेन्द्रसूरि, राजकुजर, महावीराचार्य, सर्वनन्दी, उदयप्रभसूरि एव हर्षकीर्त्तिसूरि आदि प्रधान जैन गणक हैं।

बीजगणित—इसमें प्रधान रूप से एक वर्ण समीकरण, अनेकवर्ण समीकरण, करणी, कल्पितराशियाँ समानान्तर, गुणोत्तर, व्युत्क्रम, समानान्तर श्रेणियाँ, क्रम संचय, घातांकों और लघुगणकों का सिद्धान्त आदि बीज सम्बधी प्रक्रियाएँ मिलती हैं। धवला में अ$^{\frac{३}{२}}$ को अ के घन का प्रथम वर्गमूल कहा है। अ^{९} को अ के घन का घन बताया है। अ^{६} को अ के वर्ग का घन बतलाया है। अ के उत्तरोत्तर-वर्ग और घनमूल निम्नप्रकार है :—

---

१ देखें—गणितसारसंग्रहान्तर्गत क्षेत्र व्यवहाराध्याय का त्रिभुज प्रकरण।

२ "भुजयुत्यर्धचतुष्काद्भुजहीनाद्घातितात्पदं सूक्ष्मम्।
अथवा मुखतयुतितलमवलम्बगुणं न विषमचतुरस्रे॥"

अ का प्रथम वर्ग अर्थात् $(अ^{१}) = अ^{२}$

,, द्वितीय वर्ग ,, $(अ^{२})^{२} = अ^{४} = अ^{२^{२}}$

,, तृतीय वर्ग ,, $(अ^{२})^{३} = अ^{६} = अ^{२^{३}}$

,, चतुर्थवर्ग ,, $(अ^{२})^{४} = अ^{८} = अ^{२^{४}}$

इसी प्रकार क वर्ग ,, ,, $(अ^{२})^{क} = अ^{२^{क}}$

इन्हीं सिद्धांतों पर से घाताङ्क सिद्धांक निम्नप्रकार बनाया है—(१) $\frac{क}{अ} + \frac{व}{अ} = \frac{क}{अ} + व$ (२) $\frac{म}{अ}$ । $अ^{न} = \frac{म}{अ} - न$ (३) $\left(\frac{म}{अ}\right) न = \frac{म}{अ} न$, इन घातांक सिद्धांतो के उदाहरण धवला के फुटकर गणित में मिलते हैं।[1]

गणितसारसंग्रह एव गणितशास्त्र आदि ग्रन्थो के आधार पर से बीजगणित संबंधी कुछ सिद्धान्त नीचे दिये जाते हैं।

(१) ऋण राशि के समीकरण की कल्पना।

(२) वर्गप्रकृति, विचित्रकुट्टीकार, ज्ञाताज्ञातमूलानयन, भाटकानयन, इष्टवर्गानयन आदि प्रक्रियाओं के सिद्धान्त।

(३) अकपाश, इष्टकानयन, छायानयन, खातव्यवहार एवं एकादि भेद सम्बंधी नियम।

(४) केन्द्र फल का वर्णन, व्यक्त और अव्यक्त गणितो का विधान एवं मापक सिद्धान्तो की प्रक्रिया का विधान।

(५) एक वर्ण और अनेक वर्ण समीकरण सम्बन्धी सिद्धान्त।

(६) द्वितीयादि असीमाबद्ध वर्ग एव घनों का समीकरण।

(७) अलौकिक गणित में असख्यात, संख्यात, अनन्त आदि राशियों को बीजाक्षर द्वारा प्रतिपादन करने के सिद्धान्त।

त्रिकोणमिति—इस गणित के द्वारा जैनाचार्यों ने त्रिभुज के भुज और कोणो का सम्बन्ध बताया है। प्राचीन काल मे जैनाचार्यों ने जिन क्रियाओ को बीजगणित के सिद्धान्तो से निकाला था, उन क्रियाओ को श्रीधर और विजयप ने त्रिकोणमिति से निकाला है। जैनाचार्यों ने त्रिकोणमिति और रेखागणित का अन्तर बतलाते हुए लिखा है कि रेखागणित के सिद्धान्त के अनुसार जब दो भिन्न रेखायें भिन्न भिन्न दिशाओ से आकर एक-दूसरे से मिल जाती हैं तब कोण बनता है। किन्तु त्रिकोणमिति सिद्धान्त में इससे विपरीत कोण की उत्पत्ति होती है। दूसरा अन्तर त्रिकोणमिति और रेखागणित में यह भी है कि रेखागणित के कोण के पहिले कोई चिह्न नहीं लगता है, किन्तु त्रिकोणमिति में विपरीत दिशा में घूमने से कोई न कोई चिह्न लग ही जाता है। इसलिये इसके कोणो के नाम भी क्रम से योजक और वियोजक बताये गये हैं। सरल त्रिकोणमिति के द्वारा कोण नापने में अत्यन्त सुविधा होती है तथा कोणमान भी ठीक निकलता है।

प्राचीन जैन ग्रन्थों में वृत्त की परिधि में व्यास का भाग देने से कोणमान निकाला गया है। पर बाद के जैन गणको ने यन्त्रो के द्वारा भुज एवं कर्ण के सम्बन्ध से कोणमान स्थिर किया है। गणितसार संग्रह में ऐसी कई एक क्रियाएँ हैं, जिन में भुज, कर्ण एव कोण के सम्बन्ध से ही कोणविषयक नियम निर्धारित किये गये हैं। कुछ आचार्यों ने भुज और कर्ण की निष्पत्ति सिद्ध करने के लिये अनेक नियम बताये हैं। इन्हीं

१—छट्ठवग्गस्स उवरि सत्तमवग्गस्स हेट्ठदोच्चि वुत्ते अत्थवत्ती ण जादेत्ति। भाग ३ पृ० २५३ (धवला)।

नियमों से अक्षक्षेत्र सम्बंधी अग्रा, क्रान्ति, लम्बांश, भुजांश एवं समशंकु आदि का प्रतिपादन किया है। चापीय त्रिकोणमिति द्वारा ग्रह, नक्षत्र आदि के अवस्थान और उनके पथ का निर्णय होता है। यदि कोई समतल कोण वृत्त का केन्द्र भेद कर इसे दो खण्डों में विभक्त करे, तो प्रत्येक वृत्तक्षेत्र महावृत्त कहलाता है। जैनाचार्यों ने ग्रहों की स्पर्शरेखा, छेदनरेखा, कोटिस्पर्शरेखा एवं कोटिछेदन रेखा आदि सिद्धान्तों का प्रतिपादन त्रिकोणमिति से किया है।

प्रतिभागगणित–इसके द्वारा जैनाचार्यों ने ग्रहवृत्तों के परिणमन का कथन किया है। अर्थात् किसी महद्वृत्त वाले ग्रह का गणित करने के लिए कल्पना द्वारा लघुवृत्त में परिणामन कराने वाली प्रक्रिया का नाम ही प्रतिभा है। यद्यपि इस गणित के सम्बन्ध में स्वतन्त्ररूप से ग्रन्थ नहीं मिलते, फिर भी ज्योतिश्चक्र एवं यन्त्रराज में परिणामन सम्बन्धी कई सिद्धान्त दिये गये हैं। कदम्बप्रोतवृत्त, मेरुछिन्नप्रोतवृत्त, क्रान्तिवृत्त, एवं नाडीवृत्त आदि लघु और महद्वृत्तों के परिणामन की नाना विधियाँ बताई गई हैं। श्रीधराचार्य विरचित ज्योतिर्ज्ञानविधि में भी इस परिणामन विधि का सकेत मिलता है। प्रतिभा की प्रक्रिया द्वारा ग्रहों की कक्षाएँ दीर्घवृत्त, परिवलय, वलय एव अतिपरिवलय के रूप में सिद्ध की जाती हैं। प्राचीन सूची और वलय व्यास एव परिधि सम्बन्धी प्रक्रिया का विकसित रूप ही यह प्रतिभागणित है। गणितसारसंग्रह के क्षेत्रसार व्यवहाराध्याय में आधार समानान्तर भूतल से छिन्न सूची क्षेत्रप्रदेश को वृत्तत्व स्वीकार किया गया है। उपर्युक्त सिद्धान्त के ऊपर यदि गणितदृष्टि से विचार किया जाय, तो यह सिद्धान्त भी समसूच्यान्तर्गत प्रतिभागणित का है। इसी प्रकार समतल शंकुमस्तक क्षेत्र व्यवस्था भी प्रतिभा गणित के अन्तर्गत है।

पञ्चाङ्गनिर्माणगणित—जैन पंचांग की प्रणाली बहुत प्राचीन है। जिस समय भारतवर्ष में ज्योतिष के गणित ग्रन्थों का अधिक प्रचार नहीं हुआ था, उस समय भी जैन पंचांगनिर्माण संबंधी गणित पल्लवित और पुष्पित था। प्राचीन काल में गगनखण्डात्मक ग्रहों की गति लेकर पंचाङ्ग प्रणाली शुरू हुई थी, पर उत्तरवर्ती आचार्यों ने इस प्रणाली को स्थूल समझकर सुधार किया। प्राचीन जैन प्रणाली में एक वीथी में सूर्य का जो भ्रमण करना माना जाता था उसे उन्होंने अहोरात्र वृत्त मान लिया और इसीके आधार पर से आकाशमण्डल में नाड़ी वृत्त, क्रान्ति वृत्त, मेरुछिन्नप्रोत वृत्त एवं अयनप्रोतवृत्तादि २४ महद्वृत्त तथा कई-एक लघु वृत्त माने गये। गगनखण्डात्मक गति को भी कलात्मक गतिके रूप में स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार प्राचीन जैन पंचांग की प्रणाली विकसित हो कर नये रूप में आ गई। तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण इन पांचों का नाम ही पंचांग हैं। जैन पञ्चाङ्गगणित में मेरु को केन्द्र मानकर ग्रहों का गमन होने से अनेक विशेषताएँ हैं।

तिथि[१]—सूर्य और चन्द्रमा के अन्तरांशों से तिथि बनती है और इसका मान १२ अंशों के बराबर होता है। सूर्य की गति प्रति दिन लगभग १ अंश और चन्द्रमा की १३ अंश है, पर सूर्य और चन्द्रमा अपनी गति से गमन करते हुए ३० दिनों में ३६० अंशों से अन्तरित होते हैं। अतः मध्यम मान से तिथि का मान १२ अंश अर्थात् ६० घटी अथवा ३० मुहूर्त हैं। कभी कभी सूर्य की गति मन्द और कभी-कभी तेज हो जाती हैं इसी प्रकार चन्द्रमा भी कभी शीघ्रगति और कभी मन्दगति होता है। इसीलिये तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होती है। साधारणतः मध्यम मान के हिसाब से तिथि ६० घटी हैं, पर कभी-कभी ६५ घटी तक हो जाती है। तिथ्योदय सर्वदा सूर्योदय से ही लिया जाता है। तिथिक्षय और वृद्धि के कारण ही कभी पक्ष १६ दिन और कभी १३ दिन का ही होता है।

वार—नाक्षत्रमान के हिसाब से जैन पंचांग में वार लिया जाता है। वारों का क्रम ग्रहों के अनुसार न होकर उनके स्वामियों के अनुसार है, जिस दिन का स्वामी सूर्य होता है, उसे रविवार; जिस दिन का स्वामी चन्द्र होता है, उसे सोमवार; जिस दिन का स्वामी भौम होता है, उसे मगलवार; जिस दिन का स्वामी बुध होता है, उसे बुधवार; जिस दिन का स्वामी गुरु होता है, उसे बृहस्पतिवार; जिस दिन का स्वामी

१–विशेष जानने के लिये देखें:–"जैनपञ्चाङ्ग शीर्षक लेख–"जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ८ कि० २।

भृगु होता है, उसे शुक्रवार; एवं जिस दिन का स्वामी शनैश्चर होता है, उसे शनिवार कहते हैं। इस वार नाम में वृद्धि-ह्रास नहीं होता है क्योंकि सूर्योदय से लेकर पुनः सूर्योदय तक के काल का नाम वार है।

नक्षत्र—सूर्य जिस मार्ग से भ्रमण करता है, उसे क्रान्तिवृत्त या मेरुछिन्नसमानान्तरप्रोतवृत्त कहते हैं, क्रान्तिवृत्त के दोनों तरफ १८० अंश में जो कटिबंध प्रदेश है, उसे राशि चक्र कहते हैं। इस राशिचक्र के २८ भाग करने पर अभिजित् आदि २८ नक्षत्र होते हैं। प्रत्येक ग्रह का नक्षत्र मान भिन्न-भिन्न होता है किन्तु पंचांग के लिये चन्द्र नक्षत्र ही लिया जाता है। इसीको दैनिक नक्षत्र भी कहते हैं। चन्द्र नक्षत्र के लाने का प्रकार यह है कि स्पष्ट चन्द्र की कला बनाकर उनमें ८०० का भाग देने से लब्धि गत नक्षत्र, शेष वर्तमान नक्षत्र की गतकलाएँ आती हैं। उनको ८०० में घटाने से भोग्य कलाएँ होती हैं। गत और भोग्य कलाओं को ६० से गुणा कर चन्द्रगति कलाका भाग देने से गत और भोग्य घटी आती है। जैन सारणी ग्रन्थों के अनुसार अहर्गण बनाकर सारणी पर केन्द्रबल्ली, फलबल्ली, शीघ्रोच्चबल्ली एवं नक्षत्रबल्ली आदि पर से फल लाकर नक्षत्र का साधन करना चाहिये। जैन ग्रन्थ तिथि सारणी के अनुसार तिथिफल एव तिथिकेन्द्रादि लाकर नक्षत्र मान और तिथिमान सिद्ध किया गया है।

योग—यह सूर्य और चन्द्रमा के योग से पैदा होता है। प्राचीन जैन ग्रन्थों में मुहूर्त्तादि के लिये इसको प्रधान अंग माना गया है, इनकी संख्या २७ बतायी है[1]। व्यतिपात, परिघ और दण्ड इनका त्याग प्रत्येक शुभ कार्य में कहा गया है। योग के साधन का विधान बताते हुए लिखा है कि दैनिक स्पष्ट सूर्य एव स्पष्ट चन्द्र के योग की कला बना कर उनमें ८०० का भाग देने से लब्धि गत योग होता है। फिर गत और भोग्य कला को ६० से गुणा कर रवि-चन्द्र की गति कला योग से भाग देने पर गत और भोग्य घटियाँ आती हैं।

करण—गत तिथि को २ से गुणाकर ७ का भाग देने से जो शेष रहे उसी के हिसाब से करण होता है। जैनाचार्य श्रीधर ने भी ज्योतिर्ज्ञानविधि में करणों का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार लिखा है।

> **"वव-वालव-कौलवतैत्तिलगरजा वाणिजविष्टिचरकरणाः।**
> **शकुनिचतुष्पदनागाः किंस्तुघ्नश्चेत्यमी स्थिराः करणाः॥**
> **कृष्णचतुर्दश्यपरार्धतो भवन्ति स्थिराणि करणानि।**
> **शकुनिचतुष्पदनागाः किंस्तुघ्नः प्रतिपदाद्यर्धे॥"**

अर्थात्—वव, वालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज और विष्टि ये चर करण होते हैं एवं शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न ये स्थिर करण होते हैं। कृष्ण चतुर्दशी में परार्द्ध से चर करण और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के परार्द्ध से स्थिर करण होते हैं। यन्त्रराज के गणितानुसार भिन्न-भिन्न यन्त्रो से करणादिक का मान सूक्ष्म लाया गया है। जैन युग में ६० सौर मास, ६१ सावन मास, ६२ चान्द्रमास और ६७ नक्षत्र मास होते हैं। १ नाक्षत्रवर्ष में ३२७ ५१/६७ दिन, १ चान्द्रवर्ष में ३५४ दिन, ११ घटी, ३६ ४८/६२ पल होते हैं। इसी प्रकार १ और वर्ष में ३६६ दिन और एक युग में सौरदिन १८००, चान्द्रदिन १८६०, नक्षत्रोदय १८३०, चान्द्रसावन दिन १७६८ बताए गए हैं। इन अको के साथ जैनेतर भारतीय ज्योतिष से तुलना करने पर चान्द्र वर्ष मान और सौर वर्षमान में पर्याप्त अन्तर होता है। जैनाचार्यों ने यन्त्रो के द्वारा जिस सूक्ष्म पंचांग निर्माण संबधी गणित का प्रतिपादन किया है वह प्रशसनीय है। प्रत्यक्षवेधगत जो गणित मान आता है वही मान जैनाचार्यों के यन्त्रों पर से सिद्ध होता है[2]।

---

१ "विष्कंभः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यं शोभनं तथा। अतिगडः सुकर्मा च धृतिः शूलं तथैव च॥ गडो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा। वज्रः सिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान् परिघः शिवः॥ सिद्धः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मेन्द्रो वैधृतिस्तथा। स्युः सप्तविंशतिर्योगाः शास्त्रे ज्योतिष्कनामनि॥"—जैनज्योतिर्ज्ञानविधिः पत्र ३।

२ यन्त्रराज गणित ग्रन्थ का यन्त्रप्रकरण।

इस पञ्चाङ्गगणित में जैनाचार्यों ने देशान्तर, कालान्तर एवं अक्षांश सम्बन्धी संस्कार करके ग्रहानयन की अत्यन्त सूक्ष्म विधि बतलायी है। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् सुधाकर द्विवेदी ने गणकतरङ्गिणी में जैनाचार्यों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यन्त्रराज में क्रमोत्क्रमज्यानयन, भुजकोटिज्यानयन, भुजफलानयन, द्विज्याफलानयन एवं क्रान्तिज्या साधन इत्यादि गणितों के द्वारा ग्रहों के स्पष्टीकरण का विधान किया है। इस गणित को सिद्ध करने के लिये १४ यन्त्र यन्त्रराज में महत्त्वपूर्ण दिये गये हैं। इनसे तात्कालिक लग्न एवं तात्कालिक सूर्य आदि का साधन अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ होता है।

जन्मपत्रनिर्माणगणित—जन्मपत्र निर्माण करने के लिये सर्व प्रथम इष्टकाल का साधन करना चाहिये। इष्टकाल साधन के लब्धिचन्द्रविरचित जन्मपत्रीपद्धति एवं हर्षकीर्ति विरचित जन्मपत्र-पद्धति में अनेक प्रकार दिये गये हैं। प्रथम नियम यह है कि सूर्योदय से १२ बजे दिन के भीतर का जन्म समय हो तो जन्म समय और सूर्योदयकाल का अन्तर कर शेष को २॥ गुना करने से इष्टकाल होता है अथवा सूर्योदय काल से लेकर जन्म समय तक जितना समय हो उसी के घट्यादि बनाने पर इष्टकाल हो जाता है।

दूसरा नियम–यदि १२ बजे दिन से सूर्यास्त के अन्दर का जन्म हो तो जन्म समय तथा सूर्यास्तकाल का अन्तर कर शेष २॥ गुणा कर दिनमान में घटाने से इष्टकाल होता है।

तीसरा नियम–यदि सूर्यास्त से १२ बजे रात्रि के अन्दर का जन्म हो तो जन्म समय तथा सूर्यास्तकाल का अन्तर कर शेष को २॥ गुना कर दिनमान में जोड़ देने से इष्टकाल होता है।

चौथा नियम–यदि १२ बजे रात्रि के बाद और सूर्योदय के अन्दर का जन्म हो तो जन्म समय तथा सूर्योदय समय का अन्तर कर शेष को २॥ गुणा कर ६० घटी में घटाने से इष्टकाल होता है। इस इष्टकाल पर से सर्वर्क्ष और गतर्क्ष का साधन भी निम्न प्रकार से करना चाहिये—गत नक्षत्र घटी को ६० घटी में से घटा कर शेष में सूर्योदयादि इष्टघटी जोड़ने से गतर्क्ष होता है और उस गत नक्षत्र में जन्म नक्षत्र के घटी-पल जोड़ने से भभोग अर्थात् सर्वर्क्ष होता है। इस सर्वर्क्ष में ४ का भाग देने से लब्ध घटी, पल तुल्य एक चरण का मान होता है। इसी मान के हिसाब से गतर्क्ष में चरण निकाल कर राशि एवं नक्षत्र चरण का मान होता है।

लग्न[1] साधन—लग्न साधन करने के जैनाचार्यों ने कई नियम बताये हैं। पहला नियम तो तात्कालिक सूर्य पर से बताया है। विस्तारभय से यहाँ पर एक संक्षेप प्रक्रिया का उल्लेख किया जाता है:–पञ्चाङ्ग में जो लग्नसारिणी लिखी हो वह यदि सायनसारिणी हो तो सायनसूर्य और निरयणसारिणी हो तो निरयन सूर्य के राशि और अंश के सामने जो अङ्क घट्यादि हों उनमें इष्टकाल सम्बन्धी घटी पल जोड़ देने चाहिये। यदि घटी के स्थान में ६० से अधिक हों तो अधिक को छोड़ कर शेष तुल्य अंक उस सारिणी में जहाँ हों, उस राशि अंश को लग्न समझना चाहिये। पूर्व और उत्तर अंश वाले घट्यादि का अन्तर कर अनुपात से कला-विकलादि का साधन करना चाहिये।

जन्मपत्र के ग्रह स्पष्टीकरण–जिस ग्रह को स्पष्ट करना हो उसकी तात्कालिक गति से ऋण अथवा धन चालन को व्यतिरिक्ता रीति (गोमूत्रिका रीति) से गुणा करने पर जो अंशादि हों उनको पंचांग स्थित ग्रह में ऋण या धन कर देने पर ग्रह स्पष्ट होता है। किन्तु, इन ग्रहों के स्पष्टीकरण में यह विशेषता है कि जो ग्रह वक्री हो, उसके साधन में ऋणगत चालन होने पर पञ्चांग स्थित ग्रह में धन एवं धन चालन होने पर पञ्चांग स्थित ग्रह में ऋण कर दिया जाता है।

चन्द्रस्पष्टीकरण—जन्मपत्र के गणित में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गणित चन्द्रमा के स्पष्टीकरण का है। इसकी रीति जैनाचार्यों ने इस प्रकार बतायी है कि भयात और भभोग को सजातीय करके भयात को ६० से गुणा कर भभोग का भाग देने पर जो लब्ध आये, उसमें ६० से गुणा किये हुए अश्विनी आदि

१–विशेष जानने के लिये परिशिष्ट भाग देखें।

गत नक्षत्रों को जोड़ दें फिर उसमें दो से गुणा करे, गुणनफल में ९ का भाग दे, जो लब्ध हो उसी को अंश माने, शेष को फिर ६० से गुणा करे, ९ का भाग दें, जो लब्ध हो उसे कला जाने, शेष को फिर ६० से गुणा करके ९ का भाग दे, जो लब्ध हो उसे विकला समझे। इस प्रकार चन्द्रमा के राश्यशादि होंगे।

लग्न ग्रहस्पष्ट एवं भयात भभोग के साधन के अनन्तर द्वादश भावों का साधन करना चाहिए। तथा इसी भयात और भभोग पर से विंशोत्तरी, योगिनी एवं अष्टोत्तरी आदि दशाओं का साधन करना चाहिये। जैनाचार्यों ने प्रधानतया विंशोत्तरी का कथन किया है।

फलितज्योतिष–इसमें ग्रहों के अनुसार फलाफल का निरूपण किया जाता है। प्रधानतया इसमें ग्रह एवं नक्षत्रादि की गति या सञ्चार आदि को देख कर प्राणियों की भावी दशा, कल्याण-अकल्याण आदि का वर्णन होता है। इस शास्त्र में होराशास्त्र, संहिताशास्त्र, मुहूर्त्तशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र एवं स्वप्नशास्त्र आदि हैं।

होराशास्त्र–इसका अर्थ है लग्न अर्थात् लग्न पर से शुभ-अशुभ फल का ज्ञान कराना होराशास्त्र का काम है। इसमें जातक के उत्पत्ति के समय के नक्षत्र, तिथि, योग, करण आदि का फल अत्युत्तमता के साथ बताया जाता है। जैनाचार्यों ने इस में ग्रह एवं राशियों के वर्ण-स्वभाव, गुण, आकार-प्रकार आदि बातों का प्रतिपादन किया है। जन्मकुडली का फल बतलाना इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। आचार्य श्रीधर ने यह भी बतलाया है कि आकाशस्थ राशि और ग्रहों के बिम्बों में स्वाभाविक शुभ और अशुभपना मौजूद है; किन्तु उनमें परस्पर साहचर्यादि तात्कालिक सम्बन्ध से फल विशेष शुभाशुभ रूप में परिणत हो जाता है, जिसका स्वभाव पृथ्वीस्थित प्राणियों पर भी पूर्णरूप से पड़ता है। इस शास्त्र में प्रधानता से देह, द्रव्य, पराक्रम, सुख, सुत, शत्रु, कलत्र, मृत्यु, भाग्य, राज्यपद, लाभ और व्यय इन १२ भावों का वर्णन रहता है। इस शास्त्र में सब से विशेष ध्यान देने लायक लग्न और लग्नेश बताये गये हैं। ये जब तक स्थिति में सुधरे हुये हैं तब तक जातक के लिये कोई अशुभ संभावना नहीं होती है। जैसे–लग्न तथा लग्नेश बलवान् हैं, तो शरीरसुख, सन्ततिसुख, अधिकारसुख, सभा में सम्मान, कारोबार में लाभ तथा साहस आदि की कमी नही पड़ती। यदि लग्न अथवा लग्नेश की स्थिति विरुद्ध है तो जातक को सब तरह से शुभ कामों में विघ्न बाधाएँ उपस्थित होती हैं। लग्न के सहायक १२ भाव हैं। क्यों कि आचार्यों ने भचक्र को जातक का पूर्ण शरीर माना है। इसीलिये यदि जन्मकुडली के १२ भावों मे से कोई भाव बिगड़ जाय तो जातक को सुख में कमी पड़ जाती है। अतएव लग्न-लग्नेश, भाग्य-भाग्येश, पंचम-पञ्चमेश, सुख सुखेश, अष्टम-अष्टमेश, बृहस्पति, चन्द्र, शुक्र, मंगल, बुध इनकी स्थिति तथा ग्रह स्फुट में वक्री, मार्गी, भावोद्धारक चक्र, देष्काणचक्र, कुण्डली एवं नवांशकुंडली आदि का विचार इस शास्त्र में जैनाचार्यों ने विस्तार से किया है।

संहिता–इस शास्त्र में भूशोधन, दिक्शोधन, शल्योद्धार, मेलापक, आयाद्यानयन, ग्रहोपकरण, इष्टिकाद्वार, गेहारंभ, गृहप्रवेश, जलाशय, उल्कापात एवं ग्रहों के उदयास्त का फल आदि अनेक बातों का वर्णन रहता है। जैनाचार्यों ने संहिता ग्रन्थों में प्रतिमा-निर्माण विधि एवं प्रतिष्ठा आदि का भी विधान लिखा है। यन्त्र, तन्त्र, मन्त्रादि का विधान भी इस शास्त्र में है।

मुहूर्त्त–इस शास्त्र में प्रत्येक मांगलिक कार्य के लिये शुभमुहूर्त्तों का वर्णन किया गया है। बिना मुहूर्त्त के किसी भी मांगलिक कार्य का प्रारंभ करना उचित नहीं है। क्योंकि समय का प्रभाव प्रत्येक जड़ एवं चेतन पदार्थ पर पड़ता है। इसीलिये हमारे जैनाचार्यों ने गर्भाधानादि अन्यान्य संस्कार एवं प्रतिष्ठा, गृहारंभ, गृहप्रवेश, यात्रा आदि सभी मांगलिक कार्यों के लिए शुभ मुहूर्त्त का ही आश्रय लेना आवश्यक बतलाया है। कर्मकांड सम्बन्धी प्रतिष्ठापाठ एवं आराधनादि ग्रन्थों में भी मुहूर्त्तों का प्रतिपादन मिलता है। मुहूर्त्त विषय का निरूपण करने वाले सैकड़ों ग्रन्थ हैं। जैन और अजैन ज्योतिष की मुहूर्त्त

प्रक्रिया में मौलिक भेद है। जैनाचार्यों ने प्रतिष्ठा के लिये उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, पुनर्वसु पुष्य, हस्त, श्रवण और रेवती ये नक्षत्र उत्तम बतलाये हैं। चित्रा, मघा, मूल, भरणी इन नक्षत्रों में भी प्रतिष्ठा का विधान बतलाया है। पर मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि ग्रन्थों में चित्रा, स्वाति, भरणी और मूल प्रतिष्ठा में ग्राह्य नहीं बतलाये हैं। आचार्य जयसेन ने मुहूर्त्त के प्रकरण में क्रूरासन्न, दूषित, उत्पात लता, विद्धपात, राशिवेध, नक्षत्रवेध, युति, वाणपंचक एवं जामित्र त्याज्य बतलाये हैं। इसी प्रकार सूर्यदग्धा और चन्द्रदग्धा आदि तिथियों का भी विस्तार से विश्लेषण किया है। आचार्य वसुनन्दि ने अमृतसिद्धि योग का लक्षण बताते हुये लिखा है कि–

> "हस्तः पुनर्वसुः पुष्यो रविणा चोत्तरात्रयम्।
> पुष्यर्क्षगुरुवारेण शशिना मृगरोहिणी॥
> अश्विनी रेवती भौमे शुक्रे श्रवण रेवती।
> विशाखा कृत्तिका मन्दे रोहिणी श्रवणस्तथा॥
> मैत्रवारुणनक्षत्रं बुधवारेण संयुतम्।
> अमृताख्या इमे योगाः प्रतिष्ठादिषु शोभनाः॥"

अर्थात्–रविवार को हस्त, पुनर्वसु, पुष्य, गुरुवार को उत्तरात्रय (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद), पुष्य; सोमवार को मृगशिर, रोहिणी; मगलवार को अश्विनी, रेवती; शुक्रवार को श्रवण, रेवती; शनिवार को विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, श्रवण और बुधवार को अनुराधा, शतभिष नक्षत्र, अमृतसिद्धि योग संज्ञक हैं।

सामुद्रिकशास्त्र—जिस शास्त्र से मनुष्य के प्रत्येक अंग के शुभाशुभ का ज्ञान हो उसे सामुद्रिकशास्त्र कहते हैं। हस्तसंजीवन में आचार्य मेघविजयगणि ने बताया है कि सब अंगों में हाथ श्रेष्ठ है क्योंकि सभी कार्य हाथों द्वारा किये जाते हैं। इसीलिये पहले पहल हाथ के लक्षणों का ही विचार इस शास्त्र में प्रधान रूप से रहता है[१]। हाथ में जन्मपत्री की तरह ग्रहों का अवस्थान बताया है। तर्जनीमूल में बृहस्पति का स्थान, मध्यमा उँगली के मूल देश में शनि स्थान, अनामिका के मूलदेश में रविस्थान, कनिष्ठा के मूलदेश में बुध स्थान, तथा बृहद् अंगुष्ठ के मूल में शुक्रदेव का स्थान है। मंगल के दो स्थान बताये गये हैं। १–तर्जनी और बृहदागुलि के बीच में पितृरेखा के समाप्तिस्थान के नीचे और २–बुध के स्थान के नीचे तथा चन्द्र के स्थान के ऊपर आयुरेखा और पितृरेखा के नीचे वाले स्थान में बताया गया है। रेखाओं के वर्ण का फल बतलाते हुये जैनाचार्यों ने लिखा है कि रेखाओं के रक्तवर्ण होने से मनुष्य आमोदप्रिय, सदाचारी और उग्रस्वभाव का होता है। यदि रक्तवर्ण में काली आभा मालूम पड़े तो प्रतिहिंसापरायण, शठ और क्रोधी होता है। जिसकी रेखा पीली होती है, पित्त के आधिक्यवश वह क्रुद्ध स्वभाव का, उच्चाभिलाषी, कार्यक्षम और प्रतिहिंसापरायण होता है। यदि उसकी रेखा पाडुक आभा की हो तो वह स्त्री स्वभाव का, दाता और उत्साही होता है। मेघविजयगणि ने भाग्यवान् के हाथ का लक्षण बतलाते हुये लिखा है कि :—

> "श्लाघ्य उष्णारुणोऽच्छिद्रोऽस्वेदः स्निग्धश्च मांसलः।
> श्लक्ष्णस्ताम्रनखो दीर्घाङ्गुलिको विपुलः करः॥"

---

१ "सर्वांगलक्षणप्रेक्षा व्याकुलानां नृणां मुदे। श्रीसामुद्रेण मुनिना तेन हस्तः प्रकाशितः"

अर्थात्–गरम, लालरंग, आछिद्र अंगुलियां सटी हों, पसीना न हो, चिकना,मांस से भरा हो, चमकीला, ताम्रवर्ण के नख वाला तथा लम्बी और पतली अंगुलियों वाला हाथ सर्वश्रेष्ठ होता है, ऐसा मनुष्य संसार में सर्वत्र सम्मान पाता है।

इस शास्त्र में प्रधान रूप से आयुरेखा, मातृरेखा, पितृरेखा एवं समयनिर्णयरेखा, ऊर्ध्वरेखा, अन्तःकरणरेखा, स्त्रीरेखा, सन्तानरेखा, समुद्रयात्रारेखा या मणिबन्धरेखा आदि रेखाओं का विचार किया जाता है। सभी ग्रहों के पर्वत के चिह्न भी सामुद्रिक शास्त्र में बतलाये गये हैं। इनके फल का विश्लेषण बहुत सुन्दर ढङ्ग से जैनाचार्यों ने किया है।

प्रश्नशास्त्र—इस शास्त्र में प्रश्नकर्त्ता से पहले किसी फल, नदी और पहाड़ का नाम पूछ कर अर्थात् प्रातःकाल से लेकर मध्याह्न काल तक फल का नाम, मध्याह्नकाल से लेकर सध्याकाल तक नदी का नाम और सन्ध्याकाल से लेकर रात के १०-११ बजे तक पहाड़ का नाम पूछ कर तब प्रश्न का फल बताया गया है। जैनाचार्यों ने प्रश्न के फल का उत्तर देने के लिये अ ए क च ट त प य श इन अक्षरों का प्रथम वर्ग; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष इन अक्षरों का द्वितीय वर्ग, इ ओ ग ज ड द ब ल स इन अक्षरो का तृतीयवर्ग, ई, औ, घ, झ, ढ, ध, भ, व, ह इन अक्षरों का चतुर्थवर्ग, और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः इन अक्षरो के पञ्चमवर्ग बताया है। आचार्यों ने इन अक्षरो के भी सयुक्त, असयुक्त, अभिहित, अनभिहित, अभिघातित, आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध ये आठ भेद बतलाये हैं। इन भेदों पर से जातक के जीवन-मरण, हानि-लाभ, संयोग-वियोग एवं सुख दुःख का विवेचन किया है। दो चार ग्रन्थों में प्रश्न की प्रणाली लग्न के अनुसार मिलती है। यदि लग्न या लग्नेश बली हुए और स्वसम्बन्धी ग्रहो की दृष्टि हुई तो कार्य की सिद्धि और इससे विपरीत में असिद्धि होती है। भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भिन्न भिन्न प्रकार की ग्रहस्थिति का भिन्न-भिन्न नियमों से विचार किया है। केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि में आचार्य ने लाभालाभ के प्रश्न का उत्तर देते हुए लिखा है कि—**"यदि दीर्घमक्षरं प्रश्ने प्रथमतृतीयपञ्चमस्थानेषुदृष्टं तदेव लाभकरं स्यात्, शेषा अलाभकराः स्युः। जीवितमरणं लाभालाभं साधयन्तीति साधकाः।"** अर्थात्–दीर्घाक्षर प्रश्न में प्रथम, तृतीय और पञ्चम स्थान में हों तो लाभ करने वाले होते हैं, शेष अलाभकर–हानि करने वाले होते हैं। साधक इन प्रश्नाक्षरो पर से जीवन, मरण, लाभ और हानि आदि को सिद्ध करते हैं। इसी प्रकार जैनाचार्यों ने उत्तर, अधर, उत्तराधर एवं अधरोत्तर आदि प्रश्न के अनेक भेद करके उत्तर देने के नियम निकाले हैं। चन्द्रान्मीलनप्रश्न में चर्या, चेष्टा एवं हावभाव आदि से प्रश्नो के उत्तर दिये गये हैं। वास्तविक में जैन प्रश्नशास्त्र बहुत उन्नत है। ज्योतिष के अङ्गों में जितना अधिक यह शास्त्र विकसित हुआ है, उतना दूसरा शास्त्र नहीं।

स्वप्नशास्त्र[१]–जैन मान्यता में स्वप्न संचित कर्मों के अनुसार घटित होने वाले शुभाशुभ फल के द्योतक बताये गये हैं। स्वप्नशास्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट अवगत हो जाता है कि कर्मबद्ध प्राणिमात्र की क्रियाएँ सांसारिक जीवों को उनके भूत और भावी जीवन की सूचना देती हैं। स्वप्न का अतरंग कारण ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय के क्षयोपशम के साथ मोहनीय का उदय है। जिस व्यक्ति के जितना अधिक इन कर्मों का क्षयोपशम होगा उस व्यक्ति के स्वप्नों का फल भी उतना ही अधिक सत्य निकलेगा। तीव्रकर्मों के उदय वाले व्यक्तियों के स्वप्न निरर्थक एव सारहीन होते हैं। इसका मुख्य कारण जैनाचार्यों ने यही बताया है कि सुषुप्तावस्था में भी आत्मा तो जागृत ही रहती है, केवल इन्द्रियों और मन की शक्ति विश्राम करने के लिये सुषुप्त सी हो जाती है। जिसके उपर्युक्त कर्मों का क्षयोपशम है, उसके क्षयोपशमजन्य इन्द्रिय और मन सबधी चेतना या ज्ञानावस्था अधिक रहती है। इसलिए ज्ञान की उज्ज्वलता से निद्रित अवस्था

---

१ विशेष जानने के लिये देखें—"स्वप्न और उसका फल, भास्कर भाग ११ किरण १।"

में जो कुछ देखते हैं, उसका सम्बन्ध हमारे भूत, वर्त्तमान और भावी जीवन से है। इसी कारण स्वप्न-शास्त्रियों ने स्वप्न को भूत, वर्त्तमान और भावी जीवन का द्योतक बतलाया है। पौराणिक स्वप्नसंबंधी जैन अनेक आख्यानों से भी यही सिद्ध होता है कि स्वप्न मानव को उसके भावी जीवन में घटने वाली घटनाओं की सूचना देते हैं।

उपलब्ध जैन ज्योतिष में स्वप्नशास्त्र अपना विशेष स्थान रखता है। जहाँ जैनाचार्यों ने जीवन में घटने वाली अनेक घटनाओं के इष्टानिष्ट कारणो का विश्लेषण किया है, वहाँ स्वप्न के द्वारा भावी जीवन की उन्नति और अवनति का विश्लेषण भी अत्यन्त महत्त्वपूर्व ढग से किया है। यो तो प्राचीन वैदिक धर्मावलम्बी ज्योतिषशास्त्रियों ने भी इस विषय पर पर्याप्त लिखा है पर जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित स्वप्नशास्त्र में कई विशेषताएँ हैं। वैदिक ज्योतिषशास्त्रियो ने ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता माना है, इसलिये स्वप्न को ईश्वरप्रेरित इच्छाओं का फल बताया है। वराहमिहिर, बृहस्पति और पौलस्त्य आदि विख्यात गणको ने ईश्वर की प्रेरणा को ही स्वप्न में प्रधान कारण माना है। फलाफल के विवेचन में भी दस पाँच स्थलो में भिन्नता मिलेगी। जैन स्वप्नशास्त्र में प्रधानतया सात प्रकार के स्वप्न बताये गये हैं। (१) दृष्ट–जो कुछ जागृत अवस्था में देखा हो उसी को स्वप्नावस्था में देखा जाय। (२) श्रुत–सोने के पहले कभी किसी से सुना हो उसी को स्वप्नावस्था में देखा जाय। (३) अनुभूत–जिसका जागृत अवस्था में किसी भांति अनुभव किया हो, उसी को स्वप्न में देखें। (४) प्रार्थित–जिसकी जागृत अवस्था मे प्रार्थना–इच्छा की हो उसी को स्वप्न मे देखें, (५) कल्पित–जिसकी जागृत अवस्था मे कभी भी कल्पना की गयी हो, उसी को स्वप्न में देखें (६) भाविक–जो कभी न देखा गया हो न सुना गया हो पर जो भविष्य में होने वाला हो उसे स्वप्न में देखा जाय (७) वात, पित्त, और कफ इनके विकृत हो जाने से देखा जाय। इन सात प्रकार के स्वप्नो मे से पहले के पाँच प्रकार के स्वप्न प्रायः निष्फल होते हैं, वस्तुतः भाविक स्वप्न का फल ही सत्य होता है।

निमित्तशास्त्र–इस शास्त्र में बाह्य निमित्तो को देखकर आगे होने वाले इष्टानिष्ट का कथन किया जाता है, क्योकि संसार में होने वाले हानि-लाभ, सुख-दुःख, जीवन मरण आदि सभी विषय कर्मों की गति पर अवलम्बित हैं। मानव जिस प्रकार के शुभाशुभ कर्मों का सचय करता हैं, उन्हीं के अनुसार उन्हें सुख-दुःख भोगना पड़ता है। बाह्य निमित्तों के द्वारा घटने वाले कर्मो का आभास हो जाता हैं, इस शास्त्र मे इन बाह्य निमित्तो का ही विस्तार के साथ विश्लेषण किया जाता है। जैनाचार्यों ने निमित्तशास्त्र के तीन भेद बतलाये हैं।

"जे दिट्ठ भुविरसण्ण जे दिट्ठा कुहमेण कत्ताणं।
मद्संकुलेन दिट्ठा वउसट्ठिय ऐण णाणधिया॥"

अर्थात्–पृथ्वी पर दिखायी देने वाले निमित्तों के द्वारा फल का कथन करनेवाला शास्त्र, आकाश में दिखायी देने वाले निमित्तों के द्वारा फल प्रतिपादन करने वाला निमित्तशास्त्र और शब्द श्रवणमात्र से फल का कथन करने वाला निमित्त शास्त्र ये तीन निमित्त शास्त्र के प्रधान भेद हैं। आकाशसबंधी निमित्तों का कथन करते हुए लिखा है कि–

"छरोदय अच्छमणे चंदमसरिक्खमग्गहचरियं।
तं पिच्छियं निमित्तं सव्वं आएसिहं कुणहं॥"

अर्थात्–सूर्योदय के पहले और अस्त होने के पीछे चन्द्रमा-नक्षत्र-एव उल्का आदि के गमन एवं पतन को देखकर शुभाशुभ फल का ज्ञान करना चाहिये। इस शास्त्र में दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम इन तीनों प्रकार के उत्पातों का वर्णन भी विस्तार से किया है।

फलित जैन ज्योतिष शास्त्र शक संवत् की ५ वीं शताब्दी में अत्यन्त पल्लवित और पुष्पित था। इस काल में होने वाले वराहमिहिर जैसे प्रसिद्ध गणक ने सिद्धसेन और देवस्वामी का स्मरण किया है तथा दो चार योगों में मतभेद भी दिखलाया है। तथा इसी शताब्दी के कल्याणवर्मा ने कनकाचार्य का उल्लेख किया है। यह कनकाचार्य भी जैन गणक प्रतीत होते हैं। इन जैनाचार्यों के ग्रन्थों का पता अद्यावधि नहीं लग पाया है, पर इतना निसन्देह कहा जा सकता है कि ये जैन गणक ज्योतिषशास्त्र के महान् प्रवर्त्तकों में से थे। संहिता शास्त्र के रचयिताओं में वामदेव का नाम भी बड़े गौरव के साथ लिया गया है। यह वामदेव लोकशास्त्र के वेत्ता, गणितज्ञ एवं संहिता शास्त्र में धुरीण कहे गये हैं। इस प्रकार फलित जैन ज्योतिष विकास करता गया है।

जैन प्रश्नशास्त्र का मूलाधार

प्रश्नशास्त्र फलित ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसमें प्रश्नकर्त्ता के प्रश्नानुसार बिना जन्मकुण्डली के फल बताया जाता है। तात्कालिक फल बतलाने के लिये यह शास्त्र बड़े काम का है। जैन ज्योतिष के विभिन्न अंगों में यह एक अत्यन्त विकसित एव विस्तृत अंग है। उपलब्ध दिगम्बर जैन ज्योतिष ग्रन्थो में प्रश्नग्रन्थों की ही बहुलता है। इस शास्त्र में जैनाचार्यों ने जितने सूक्ष्म फल का विवेचन किया है उतना जैनेतर प्रश्नग्रन्थों में नहीं है। प्रश्नकर्त्ता के प्रश्नानुसार प्रश्नों का उत्तर ज्योतिष में तीन प्रकार से दिया जाता है—

पहला—प्रश्नकाल को जान कर उसके अनुसार फल बतलाना। इस सिद्धान्त का मूलाधार समय का शुभाशुभत्व है—प्रश्न समयानुसार तात्कालिक प्रश्नकुण्डली बनाकर उससे ग्रहों के स्थानविशेष द्वारा फल कहा जाता है। इस सिद्धान्त में मूलरूप से फलादेश सम्बन्धी समस्त कार्य समय पर ही अवलम्बित हैं।

दूसरा—स्वरसम्बन्धी सिद्धान्त है। इसमें फल बतलाने वाला अपने स्वर (श्वास) के आगमन और निर्गमन से इष्टानिष्ट फल का प्रतिपादन करता है। इस सिद्धान्त का मूलाधार प्रश्नकर्त्ता का अदृष्ट है; क्योंकि उसके अदृष्ट का प्रभाव तत्स्थानीय वातावरण पर पड़ता है, इसीसे वायु प्रकम्पित होकर प्रश्नकर्त्ता के अदृष्टानुकूल बहने लगती है और चन्द्र एव सूर्य स्वर के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह सिद्धान्त मनोविज्ञान के निकट नहीं है। केवल अनुमान पर ही आश्रित है अतः इसे अति प्राचीन काल का अविकसित सिद्धान्त कह सकते हैं। और—

तीसरा—प्रश्नकर्त्ता के प्रश्नाक्षरों से फल बतलाना है। इस सिद्धान्त का मूलाधार मनोविज्ञान है, क्योंकि विभिन्न मानसिक परिस्थितियों के अनुसार प्रश्नकर्त्ता भिन्न-भिन्न प्रश्नाक्षरों का उच्चारण करते हैं। उच्चरित प्रश्नाक्षरो से मानसिक स्थिति का पता लगाकर आगामी-भावी फल का निर्णय करना इस सिद्धान्त का काम है।

इन तीनों सिद्धान्तो की तुलना करने पर लग्न और स्वर वाले सिद्धान्तो की अपेक्षा प्रश्नाक्षर वाला सिद्धान्त अधिक मनोवैज्ञानिक है। तथा पहले वाले दानो सिद्धान्त कभी कदाचित् व्यभिचरित भी हो सकते हैं। जैसे उदाहरण के लिये मान लिया कि सौ व्यक्ति एक साथ एक ही समय में एक ही प्रश्न का उत्तर पूछने के लिये आये; इस समय का लग्न सभी व्यक्तियों का एक ही होगा तथा उस समय का स्वर भी एक ही होगा। अतः सब का फल सदृश ही आवेगा। हाँ, एक-दो सेकिण्ड का अन्तर पड़ने से नवांश, द्वादशांशादि में अन्तर भले ही पड़ जाय, पर इस अन्तर से स्थूल फल में कोई फर्क नहीं पडेगा। इससे सभी के प्रश्नों का फल हाँ या ना के रूप में आयेगा। लेकिन यह संभव नहीं कि सभी व्यक्तियो के फल एक सदृश हो; क्योंकि किसी का कार्य सिद्ध होगा, किसी का नहीं भी। परन्तु तीसरे—प्रश्नाक्षर वाले सिद्धान्त के अनुसार सभी व्यक्तियों के प्रश्नाक्षर एक नहीं होगे; भिन्न-भिन्न मानसिक परिस्थितियो के अनुसार भिन्न-भिन्न होगे। इससे फल भी सभी का पृथक् पृथक् आयेगा।

जैन प्रश्नशास्त्र में प्रश्नाक्षरों से ही फल का प्रतिपादन किया गया है; इसमें लग्नादि का प्रपञ्च नहीं है। अतः इसका मूलाधार मनोविज्ञान है। बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनों प्रकार की विभिन्न परिस्थितियों के आधीन मानव मन की भीतरी तह में जैसी भावनाएँ छिपी रहती हैं वैसे ही प्रश्नाक्षर निकलते हैं। मनोविज्ञान के पण्डितों का कथन है—मस्तिष्क में किसी भौतिक घटना या क्रिया का उत्तेजन पाकर प्रतिक्रिया होती है। यही प्रतिक्रिया मानव के आचरण में प्रदर्शित हो जाती है। क्योंकि अबाधभावानुषङ्ग से हमारे मन के अनेक गुप्त भाव भावी शक्ति, अशक्ति के रूप में प्रकट हो जाते हैं तथा उनसे समझदार व्यक्ति सहज में ही मन की धारा और उससे घटित होने वाले फल को समझ लेता है।

आधुनिक मनोविज्ञान के सुप्रसिद्ध पण्डित फ्रायड के मतानुसार मन की दो अवस्थाएँ हैं—सज्ञान और निर्ज्ञान। सज्ञान अवस्था अनेक प्रकार से निर्ज्ञान अवस्था के द्वारा नियन्त्रित होती रहती है। प्रश्नों की छान-बीन करने पर इस सिद्धांत के अनुसार पूछे जाने पर मानव निर्ज्ञान अवस्था विशेष के कारण ही झट उत्तर देता है और उसका प्रतिबिम्ब सज्ञान मानसिक अवस्था पर पड़ता है। अतएव प्रश्न के मूल में प्रवेश करने पर संज्ञात इच्छा, असज्ञात इच्छा, अन्तर्ज्ञात इच्छा और निर्ज्ञात इच्छा ये चार प्रकार की इच्छाएँ मिलती हैं। इन इच्छाओं में से सज्ञात इच्छा बाधा पाने पर नाना प्रकार से व्यक्त होने की चेष्टा करती है तथा इसी के कारण रुद्ध या अवदमित इच्छा भी प्रकाश पाती है। यद्यपि हम सज्ञात इच्छा के प्रकाश काल में रूपांतर जान सकते हैं, किन्तु असज्ञात या अज्ञात इच्छा के प्रकाशित होने पर भी हठात् कार्य देखने से उसे नहीं जान सकते। विशेषज्ञ प्रश्नाक्षरों के विश्लेषण से ही असज्ञात इच्छा का पता लगा लेते हैं तथा उससे संबद्ध भावी घटनाओं को भी जान लेते हैं।

फ्रायड ने इसी विषय को स्पष्ट करते हुए बताया है कि मानवमन का संचालन प्रवृत्तिमूलक शक्तियों से होता है और ये प्रवृत्तियाँ सदैव उसके मन को प्रभावित करती हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व का अधिकांश भाग अचेतन मन के रूप में है जिसे प्रवृत्तियों का अशान्त समुद्र कह सकते हैं। इन प्रवृत्तियों में प्रधान रूप से काम और गौण रूप से अन्य इच्छाओं की तरंगे उठती रहती हैं। मनुष्य का दूसरा अंश चेतन मन के रूप में है, जो घात-प्रतिघात करने वाली कामनाओं से प्रादुर्भूत है और उन्हीं को प्रतिबिम्बित करता रहता है। बुद्धि मानव की एक प्रतीक है; उसी के द्वारा वह अपनी इच्छाओं को चरितार्थ करता है। अतः सिद्ध है कि हमारे विचार, विश्वास, कार्य और आचरण जीवन में स्थित वासनाओं की प्रतिच्छाया मात्र हैं। सारांश यह है कि संज्ञात इच्छा प्रत्यक्षरूप से प्रश्नाक्षरों के रूप में प्रकट होती है और इन प्रश्नाक्षरों में छिपी हुई असज्ञात और निर्ज्ञात इच्छाओं को उनके विश्लेषण से अवगत किया जाता है। जैनाचार्यों ने प्रश्नशास्त्र में असज्ञात और निर्ज्ञात इच्छा सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन किया है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बतलाया है कि हमारे मस्तिष्क के मध्य स्थित कोष के आभ्यन्तरिक परिवर्तन के कारण मानसिक चिन्ता की उत्पत्ति होती है। मस्तिष्क में विभिन्न ज्ञानकोष परस्पर संयुक्त हैं। जब हम किसी व्यक्ति से मानसिक चिन्ता सम्बन्धी प्रश्न पूछने जाते हैं तो उक्त ज्ञानकोषों में एक विचित्र प्रकार का प्रकम्पन होता है, जिससे सारे ज्ञानतन्तु एक साथ हिल उठते हैं। इन तन्तुओं में से कुछ तन्तुओं का प्रतिबिम्ब अज्ञात रहता है। प्रश्नशास्त्र के विभिन्न पहलुओं में चर्या, चेष्टा आदि के द्वारा असंज्ञात या निर्ज्ञात इच्छा सम्बन्धी प्रतिबिम्ब का ज्ञान किया जाता है। यह स्वयं सिद्ध बात है कि जितना असज्ञात इच्छा सम्बन्धी प्रतिबिम्बित अंश, जो छिपा हुआ है, केवल अनुमानगम्य है, स्वयं प्रश्नकर्ता भी जिसका अनुभव नहीं कर पाया है; प्रश्नकर्ता की चर्या और चेष्टा से प्रकट हो जाता है। जो सफल गणक चर्या—प्रश्नकर्ता के उठने, बैठने, आसन, गमन आदि का ढंग एवं चेष्टा, बातचीत का ढंग, अंगस्पर्श, हावभाव, आकृति विशेष आदि का मर्मज्ञ होता है, वह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा भूत और भविष्यकाल सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर बड़े सुन्दर ढंग से दे सकता है। आधुनिक पाश्चात्य फलित ज्योतिष के सिद्धान्तों के साथ प्रश्नाक्षर सम्बन्धी ज्योतिषसिद्धान्त

की बहुत कुछ समानता है। पाश्चात्य फलित ज्योतिषका प्रत्येक अंग मनोविज्ञान की कसौटी पर कस कर रखा गया है, इसमें ग्रहों के सम्बन्ध से जो फल बतलाया हैं वह जातक और गणक दोनों की असंज्ञात और संज्ञात इच्छाओं का विश्लेषण ही है।

जैनाचार्यों ने प्रश्नकर्त्ता के मन के अनेक रहस्य प्रकट करने वाले प्रश्नशास्त्र की पृष्ठभूमि मनोविज्ञान को ही रखा है। उन्होंने प्रात:काल से लेकर मध्याह्न काल तक फलका नाम, मध्याह्न काल से लेकर सन्ध्या काल तक नदी का नाम और सन्ध्याकाल से लेकर रात के १२ बजे तक पहाड़ का नाम पूछ कर मनोविज्ञान के आधार पर विश्लेषण कर प्रश्नो के उत्तर दिये हैं। केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि में पृच्छक के प्रश्नानुसार अक्षरो से अथवा पाच वर्गो के अक्षर स्थापित कर उनका स्पर्श कराके प्रश्नो का फल बताया है। फल ज्ञात करने के लिये अ ए क च ट त प य श अक्षरों का प्रथम वर्ग; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष अक्षरो का द्वितीय वर्ग; इ ओ ग ज ड द ब ल स अक्षरो का तृतीय वर्ग; ई औ घ झ ढ ध भ व ह अक्षरो का चतुर्थ वर्ग, और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः अक्षरो का पंचम वर्ग बताया है। इन पाँचो वर्गों को स्थापित करके आलिङ्गित, असंयुक्तादि आठ भेदों द्वारा पृच्छक के जीवन-मरण, हानि-लाभ, संयोग-वियोग और सुख-दुख का विवेचन किया गया है। सूक्ष्म फल जानने के लिये अधरोत्तर और वर्गोत्तर वाला नियम निम्न प्रकार बताया है–

अधरोत्तर, वर्गोत्तर और वर्गसंयुक्त अधरोत्तर इन वर्गत्रय के संयोगी नौ भंगो—उत्तरोत्तर, उत्तराधर, अधरोत्तर, अधराधर, वर्गोत्तर, अक्षरोत्तर, स्वरोत्तर, गुणोत्तर और आदेशोत्तर के द्वारा अज्ञात और निर्ज्ञात इच्छाओ का विश्लेषण किया है।

जैन प्रश्नशास्त्र में प्रश्नो के प्रधानत: दो भेद बताये हैं—वाचिक और मानसिक। वाचिक प्रश्नो के उत्तर देने की विधि उपर्युक्त है तथा मानसिक प्रश्नो के उत्तर प्रश्नाक्षरों पर से जीव, धातु और मूल ये तीन प्रकार की योनियाँ निकालकर बताये हैं। अ आ इ ए ओ अ: क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह ये इक्कीस वर्ण जीवाक्षर, उ ऊ अं त थ द ध प फ ब भ व स ये तेरह वर्ण धात्वक्षर और ई ऐ औ ङ ञ ण न म र ल ष ये ग्यारह वर्ण मूलाक्षर संज्ञक कहे हैं। प्रश्नाक्षरों में जीवाक्षरों की अधिकता होने पर जीवसम्बन्धिनी, धात्वक्षरो की अधिकता होने पर धातुसम्बन्धिनी और मूलाक्षरो की अधिकता होने पर मूलाक्षरसम्बन्धिनी चिन्ता होती है। सूक्ष्मता के लिये जीवाक्षरो के भी द्विपद, चतुष्पद, अपद, पादसंकुल ये चार भेद बताये हैं अर्थात् आ ए क च ट त प य श ये अक्षर द्विपद, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये अक्षर चतुष्पद, इ ओ ग ज ड द ब ल स ये अक्षर अपद और ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये अक्षर पादसंकुल संज्ञक हैं। इस प्रकार योनियो के अनेक भेद-प्रभेदो द्वारा प्रश्नो की सूक्ष्मता का वर्णन किया है।

जैन प्रश्नशास्त्र का मूलाधार मनोविज्ञान है। वर्गविभाजन में जो स्वर और व्यञ्जन रखे हैं वे अत्यन्त सार्थक और मन की अव्यक्त भावनाओ को प्रकाशित करने वाले हैं।

जैन प्रश्नशास्त्र का विकासक्रम

व्यञ्जन, अङ्ग, स्वर, भौम, छिन्न, अन्तरिक्ष, लक्षण और स्वप्न ये आठ अग निमित्त ज्ञान के माने गये हैं। इनका विद्यानुवादपूर्व में विस्तार से वर्णन आया है। परिकर्म में चन्द्र, सूर्य एवं नक्षत्रो के स्वरूप, संचार, परिभ्रमण आये हैं। कल्याणवाद में चान्द्र नक्षत्र, सौर नक्षत्र, ग्रहण, ग्रहो की स्थिति, माङ्गलिक कार्यों के मुहूर्त्त आदि बातों का निरूपण किया गया है। प्रश्नव्याकरणाङ्ग में प्रश्नशास्त्र की अनेक बातो पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुष्टिप्रश्न एव मूकप्रश्नो का विचार प्रधानतया आया है। इस कल्प के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी के मुख से निकली दिव्यध्वनि को ग्रहण करने वाले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ने द्वादशाङ्ग की रचना एक मुहूर्त्त में की। इन्होने दोनो प्रकार का श्रुतज्ञान—भाव और द्रव्य श्रुत लोहाचार्य को दिया, लोहाचार्य ने जम्बूस्वामी को दिया। इनके निर्वाण के पश्चात् विष्णु, नन्दिमित्र,

अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँचों ही आचार्य चौदह पूर्व के धारी हुए। इनके पश्चात् विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थदेव, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गंगदेव, और धर्मसेन ये ग्यारह आचार्य ग्यारह अंग और उत्पादपूर्व आदि दस पूर्वों के ज्ञाता तथा शेष चार पूर्वों के एकदेश के ज्ञाता हुए। इनके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन और कंसाचार्य ये पाँचों ही आचार्य ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों के एकदेश के ज्ञाता हुए। इस प्रकार प्रश्नशास्त्र का ज्ञान परम्परा रूप में कई शतियों तक चलता रहा।

प्रश्नशास्त्र का सर्वप्रथम स्वतन्त्र ग्रन्थ 'अर्हच्चूडामणिसार' मिलता है। इसके रचयिता भद्रबाहु स्वामी बताये जाते हैं। उपलब्ध अर्हच्चूडामणिसार में ७४ गाथाएँ हैं। इसमें ग्रन्थकर्ता का नाम, प्रशस्ति आदि कुछ भी नहीं है। हाँ, उपलब्ध ग्रन्थ की भाषा और विषयविवेचन को देखने से उसकी प्राचीनता में सन्देह नहीं रहता। प्रारम्भ में मगलाचरण करते हुए लिखा है—

"नमिऊण जिणसुरअणचूडामणिकिरणसोहि पयजुयलं।
इय चूडामणिसारं कहिय मए जाणदीवक्खं ॥१॥
पढमं तईयसत्तम रथसर पढमतईयवग्गवण्णाइं।
आलिंगियाहिं सुहया उत्तरसंकडअ णामाई ॥२॥"

अर्थ—देवों के मुकुट में जटित मणियो की किरण से जिनके चरणयुगल शोभित हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर इस चूड़ामणिसार ज्ञानदीपक को बनाता हूँ। प्रथम, तृतीय, सप्तम और नवम स्वर—अ इ ए ओ; प्रथम और तृतीय व्यञ्जन—क च ट त प य श, ग ज ड द ब ल स इन १८ वर्णों की आलिङ्गित, सुभग, उत्तर और सङ्कट संज्ञा है। इस प्रकार अक्षरो की नाना संज्ञाएँ बतला कर फलाफल का विवेचन किया है।

अर्हच्चूडामणिसार के पश्चात् प्रश्न ग्रन्थो की परम्परा जैनों में बहुत जोरों से चली। दक्षिण भारत में प्रश्न निरूपण करने को प्रणालो अक्षरो पर ही आश्रित थी। ५ वीं ६ वीं शदी में चन्द्रोन्मीलन नामक प्रश्न-ग्रन्थ बनाया गया है। इस ग्रन्थ का प्रमाण चार हजार श्लोक है। अब तक मुझे इसकी सात प्रतियां देखने को मिली हैं, पर सभी अधूरी हैं। यह प्रश्नग्रन्थ अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है, इसकी एक प्रति मुझे श्रीमान् पं० सुन्दरलाल जी शास्त्री सागर से मिली है, जिसमें प्रधान श्लोकों की केवल संस्कृत टीका है। ज्योतिष-महार्णव नामक संग्रहग्रन्थ में चन्द्रोन्मीलन मुद्रित भी किया गया है। मुद्रित श्लोकों की संख्या एक हजार से भी अधिक है। श्री जैन-सिद्धांत भवन में चन्द्रोन्मीलन की जो प्रति है, उसकी श्लोकसंख्या तीन सौ है। श्री पं० सुन्दरलाल जी के पास चन्द्रोन्मीलन की दो प्रतियाँ और भी हैं, पर उनको उन्होंने अभी मुझे दिखलाया नहीं है। इस की एक प्रति गवर्नमेन्ट संस्कृत पुस्तकालय बनारस में है, जिसकी श्लोकसंख्या तेरह सौ के लगभग है। यह प्रति सबसे अधिक शुद्ध मालूम होती है। चन्द्रोन्मीलन के नाम से मेरा अनुमान है कि पाँच-सात ग्रन्थ और भी लिखे गये हैं। जैनो की ५ वीं ६ वीं शताब्दी की यह प्रणाली बहुत प्रसिद्ध थी, इसलिये इस प्रणाली को ही लोग चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली कहने लगे थे। 'चन्द्रोन्मीलन' के व्यापक प्रचार के कारण घबड़ा कर दक्षिण भारत में 'केरल' नामक प्रश्न प्रणाली निकाली गयी है। केरलप्रश्नसंग्रह, केरलप्रश्नरत्न, केरलप्रश्नतत्त्वसग्रह आदि केरलीय प्रश्नग्रन्थो में चन्द्रोन्मीलन के व्यापक प्रचार का खण्डन किया है—

"प्रोक्तं चन्द्रोन्मीलनं दिक्वस्त्रैस्तच्चाशुद्धम्"।

केरलीयप्रश्नसंग्रह में 'दिक्वस्त्रैः' के स्थान में 'शुक्लवस्त्रैः' पाठ भी है। शेष श्लोक ज्यों का त्यों है। केरलप्रश्नसंग्रह की एक प्रति हस्तलिखित ताड़पत्रीय जैन सिद्धांत-भवन में है। इसमें 'दिक्वस्त्रैः' पाठ है,

जो कि दिगम्बर जैनाचार्यों के लिये व्यवहृत हुआ है। प्रश्नशास्त्र का विकास वस्तुतः द्राविड़ नियमों के आधार पर हुआ प्रतीत होता है, अतः 'शुक्लवस्त्रैः' के स्थान में 'दिक्वस्त्रैः' ज्यादा उपयुक्त प्रतीत होता है।

आठवीं, नौवीं और दसवीं शताब्दी में चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली के साथ साथ 'आय' प्रश्नप्रणाली का जैनों में प्रचार हुआ। इस प्रणाली पर कई ग्रन्थ लिखे गये हैं। दामनन्दी के शिष्य भट्ट वोसरि ने आयज्ञानतिलक, मल्लिषेणाचार्य ने आयसद्भाव प्रकरण लिखे हैं। इनके अलावा आयप्रदीपिका, आयप्रश्नतिलक, प्रश्नज्ञानप्रदीप, आर्यसिद्धि, आयस्वरूप आदि अनेक ग्रन्थ रचयिताओं के नामों से रहित भी मिलते हैं। चन्द्रोन्मीलन और आयप्रश्नप्रणाली में मौलिक अन्तर संज्ञाओं का है। चन्द्रोन्मीलन प्रणाली में अक्षरों की संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत, अभिघातित, आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध ये आठ सज्ञाएँ हैं तथा आयप्रणाली में अक्षरों की ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और वायस ये संज्ञाएँ बतायी हैं। फलनिरूपण में भी थोड़ा सा अन्तर है। चन्द्रोन्मीलन में चर्या-चेष्टा को भी स्थान दिया गया है, तथा चर्या-चेष्टा के आधार पर भी फलों का प्रतिपादन किया गया है। आयज्ञानतिलक के प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हुए आयप्रणाली की स्वतन्त्रता की ओर संकेत किया है–

"नमिऊण नमियनमियं दुत्तरसंसारसायरुत्तिन्नं।
सव्वन्नं वीरजिणं पुलिंदिणिं सिद्धसंघं च ॥१॥
जं दामनन्दिगुरुणो मणयं आयाण जाणि गुज्झं।
तं आयनाणतिलए वोसिरिणा भन्नए पयडं ॥२॥"

आयप्रश्नप्रणाली का आदि आविष्कर्त्ता सुग्रीव मुनि को बताया गया है। सुग्रीव मुनि के प्रश्नशास्त्र पर तीन ग्रन्थ बताये जाते हैं, पर मुझे देखने को एक भी नहीं मिला है। आयप्रश्नतिलक, प्रश्नरत्न, आयसद्भाव के नाम सूचियों में मिलते हैं। शकुन पर भी 'सुग्रीवशकुन' नाम का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बताया जाता है। पुलिंदिनी आय की अधिष्ठात्री देवी की स्तुति करते हुए भट्टवोसरि ने सुग्रीवमुनि का नामोल्लेख करते हुए लिखा है—

"सुग्रीवपूर्वमुनिसूचितमन्त्रबीजैः तेषां वचांसि न कदापि मुधा भवन्ति ॥"

आयसद्भावप्रकरण में भी सुग्रीवमुनि के सम्बन्ध में बताया गया है—

"सुग्रीवादिमुनीन्द्रैः रचितं शास्त्रं यदायसद्भावम्।
तत्सम्प्रत्यार्याभिर्विरच्यते मल्लिषेणेन ॥"

इससे सिद्ध है कि आयप्रणाली के प्रवर्त्तक सुग्रीव आदि प्राचीन मुनि थे। आयप्रणाली का प्रचार चन्द्रोन्मीलन प्रणाली से अधिक हुआ है। आयप्रणाली में प्रश्नो के उत्तरो के साथ-साथ चमत्कारी मंत्र, यंत्र, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष आदि बातों का बिचार-विनिमय भी गर्भित किया है।

एक तीसरी प्रश्नप्रणाली १४ वीं, १५ वीं और १६ वीं शती में प्रश्नलग्न की भी जैनों में प्रचलित हुई है। उत्तर भारत में श्वेताम्बर जैनाचार्यों द्वारा इस प्रणाली में बहुत काम हुआ है। इतर आचार्यों की तुलना में जैनाचार्यों ने प्रश्नविषयक रचनाएँ इस प्रणाली के आधार पर बहुत की हैं। पद्मप्रभ सूरि का भुवनदीपक, हेमप्रभ सूरि का त्रैलोक्यप्रकाश, नरचन्द्र के प्रश्नशतक, प्रश्नचतुर्विंशिका आदि लग्नाधारित प्रश्नग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन प्रश्नग्रन्थों में प्रश्नकालीन लग्न बनाकर फल बताया गया है। त्रैलोक्यप्रकाश में कहा गया है कि लग्नज्ञान का प्रचार म्लेच्छों में है, पर प्रभुप्रसाद से जैनों में भी इसका पूर्ण प्रचार विद्यमान है। लग्न के गूढ़ रहस्य को जैनाचार्यों ने अच्छी तरह जान लिया है–

"म्लेच्छेषु विस्तृतं लग्नं कलिकालप्रभावतः ।
प्रभुप्रसादमासाद्य जैने धर्मेऽवतिष्ठते ॥६॥"

लग्न की प्रशंसा हेमप्रभ सूरि ने अत्यधिक की है, उन्होंने प्रश्नों का उत्तर निकालने के लिये इस प्रणाली को उत्तम माना है। उनके मत से लग्न ही देवता, लग्न ही स्वामी, लग्न ही माता, लग्न ही पिता, लग्न ही लक्ष्मी, लग्न ही सरस्वती, लग्न ही नवग्रह, लग्न ही पृथ्वी, लग्न ही जल, लग्न ही अग्नि, लग्न ही वायु, लग्न ही आकाश और लग्न ही परमानन्द है[1]। यह लग्नप्रणाली दिव्यज्ञान–केवलज्ञान के तुल्य जीव के सुख, दुःख, हर्ष, विषाद, लाभ, हानि, जय, पराजय, जीवन, मरण का साक्षात् निरूपण करने वाली है। इसमें ग्रहों का रहस्य, भावों–द्वादश स्थानों का रहस्य, ग्रहों का द्वादश भावों से सम्बन्ध आदि विभिन्न दृष्टिकोणों द्वारा फलादेश का निरूपण किया गया है।

लग्नप्रणाली में उत्तर भारत में चार-पाँच सौ वर्षों तक कोई संशोधन नहीं हुआ है। एक ही प्रणाली के आधार से फल प्रतिपादन की प्रक्रिया चलती रही। हाँ, इस प्रणाली में परिवर्धन उत्तरोत्तर होता गया है। इस प्रणाली का सर्वाङ्गपूर्ण और व्यवस्थित ग्रन्थ ११६० श्लोक प्रमाण में त्रैलोक्यप्रकाश नाम का मिलता है। इस ग्रन्थ के प्रणयन के पश्चात् लग्नप्रणाली पर कोई सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ लिखा ही नहीं गया। यों तो १७ वीं और १८ वीं शदी में भी लग्नप्रणाली पर दो एक ग्रन्थ लिखे गये हैं, पर उनमें कोई नई बात नहीं बतायी गई है।

दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवी शताब्दी मे दक्षिण भारत में लग्न सम्बन्धिनी प्रश्नप्रणाली जैनों में उत्तर की अपेक्षा भिन्न रूप में मिलती है। दक्षिण में लग्न, दादश भाव और उनमें स्थित रहने वाले ग्रहो पर से सीधे सादे ढग से फल नही बताया गया है, बल्कि कुछ विशेष सज्ञाएँ निर्धारित कर फल कहा है। ज्ञानप्रदीपिका के प्रारम्भ में बताया गया है–

"भूतं भव्यं वर्तमानं शुभाशुभनिरीक्षणम् ।
पञ्चप्रकारमार्गं च चतुष्केन्द्रबलाबलम् ॥
आरूढछत्रवर्गं चाभ्युदयादिबलाबलम् ।
क्षेत्रं दृष्टिं नरं नारीं युग्मरूपं च वर्णकम् ॥
मृगादिनररूपाणि किरणान्योजनानि च ।
आयूरसोदयाद्यञ्च परीक्ष्य कथयेद् बुधः ॥"

अर्थात्—भूत, भविष्य, वर्तमान, शुभाशुभ दृष्टि, पाँच मार्ग, चार केन्द्र, बलाबल, आरूढ, छत्र, वर्ग, उदयबल, अस्तबल, क्षेत्र, दृष्टि, नर, नारी, नपुंसक, वर्ण, मृग तथा नर आदि का रूप, किरण, योजन, आयु, रस, उदय आदि की परीक्षा करके बुद्धिमान को फल कहना चाहिये।

धातु, मूल, जीव, नष्ट, मुष्टि, लाभ, हानि, रोग, मृत्यु, भोजन, शयन, शकुन, जन्म, कर्म, अस्त्र शल्य,–मकान में से हड्डी आदि का निकालना, कोप, सेना का आगमन, नदियों की बाढ़, अवृष्टि, वृष्टि, अतिवृष्टि,

१ "लग्नं देवः प्रभुः स्वामी लग्न ज्योतिः पर मतम् । लग्नं दीपो महान् लोके लग्नं तत्त्वं दिशन् गुरुः ॥
लग्न माता पिता लग्नं लग्नं बन्धुर्निजः स्मृतम् । लग्न वृद्धिर्महालक्ष्मीर्लग्नं देवी सरस्वती ॥
लग्नं सूर्यो विधुर्लग्नं लग्नं भौमो बुधोऽपि च । लग्नं गुरुः कविर्मन्दो लग्नं राहुः सकेतुकः ॥
लग्नं पृथ्वी जलं लग्नं लग्नं तेजस्तथानिलः । लग्नं व्योम परानन्दो लग्न विश्वमयात्मकम् ॥"
—त्रैलोक्यप्रकाश श्लो० २–५।

नौका-सिद्धि आदि प्रश्नो के उत्तरों का निरूपण किया गया है। इस प्रणाली में द्वादश राशियों की संज्ञाएँ, उनकी भ्रमणवीथियों, उनकी विशेष अवस्थाएँ, उनकी किरणें, उनका भोजन, उनका वाहन, उनका आकार-प्रकार, उनकी योजनसख्या, उनकी आयु, उनका उदय, उनकी धातु, उनका रस, उनका स्थान आदि सैकड़ों संज्ञाओं के आधार पर नाना विचारविनियमो द्वारा फलादेश का कथन किया गया है। यद्यपि उस लग्नप्रणाली का मूलाधार भी समय का शुभाशुभत्व ही है, किन्तु इसमें विचार-विमर्श करने की विधि त्रैलोक्य-प्रकाश, भुवनदीपक, प्रश्नचतुर्विंशिका आदि ग्रन्थों से भिन्न है।

दक्षिण भारत में जैनाचार्यों में इस प्रणाली का प्रचार दसवीं सदी से पन्द्रहवीं सदी तक पाया जाता हैं। इस प्रणाली के प्रश्नसम्बन्धी दस-बारह ग्रन्थ मिलते हैं। प्रश्नदीपक, प्रश्नप्रदीप, ज्ञानप्रदीप, रत्नदीपक, प्रश्नरत्न आदि ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। यदि अन्वेषण किया जाय तो इसी प्रणाली के और भी ग्रन्थ मिल सकते हैं। सोलहवीं सदी में दक्षिण में भी उत्तरवाली लग्नप्रणाली मिलती है। ज्योतिषसग्रह, ज्योतिष-रत्न ग्रन्थों के देखने से मालूम होता है, कि चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती में ही उत्तर दक्षिण की लग्न प्रक्रिया एक हो गयी थी। उपर्युक्त दोनों ग्रन्थो के मङ्गलाचरण जैन हैं, रचनाशैली द्राविड़ है। कहीं कहीं आरूढ़ क्षत्र आदि सज्ञाएँ भी मिलती है; पर ग्रहों और भावो के सम्बन्ध में कोई अन्तर नहीं है। इन प्रश्नप्रणालियों के साथ-साथ रमल प्रश्नप्रणाली भी जैनाचार्यों में प्रचलित थी। कालकाचार्य रमलशास्त्र के बड़े भारी ज्ञाता थे, इन्होने रमल प्रक्रिया में कई नवीन संशोधन किये थे। कुछ विद्वान् तो यहाँ तक मानते हैं कि रमल-प्रणाली के भारत में मूल प्रचारक कालकाचार्य ही थे। इन्होंने ही इस प्रणाली का प्रचार सस्कृत भाषा में निबद्ध कर आर्यों में किया।

रमलशास्त्र पर मेघविजय, भोजसागर, विजयदानसूरि के ग्रन्थ मिलते हैं। इन ग्रन्थो में पाशक और प्रस्तारज्ञान, तत्त्वज्ञान, शाकुनक्रम, दशक्रम, साक्षज्ञान, वर्णज्ञान, षोड़शभाव फल, शून्यचालन, दिनज्ञान, प्रश्नज्ञान, भूमिज्ञान, धनमानपरीक्षा आदि विषय वर्णित हैं। दिगम्बर जैनाचार्यों में रमलशास्त्र का प्रचार नहीं पाया जाता है। उन्होने रमल के स्थान पर 'पाशाकेवली' नामक प्रणाली का प्रचार किया है। संस्कृत भाषा में सकलकीर्त्ति, गर्गाचार्य, सुग्रीव मुनि आदि के पाशाकेवली ग्रन्थ मिलते हैं। इन ग्रन्थो को देखने से प्रतीत होता है कि दिगम्बर जैनाचार्यों ने रमल के समान 'पाशाकेवली' की भी दो प्रणालियाँ निकाली थीं—(१) सहज पाशा और (२) यौगिक पाशा। सहज पाशा प्रणाली में 'अरहन्त' शब्द के पृथक् पृथक् चारो वर्णों को एक चन्दन या अष्टधातु के बने पाशे पर लिख कर इष्टदेव का १०८ बार स्मरण कर अथवा "ॐ नमः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः" मन्त्र का १०८ बार जाप कर पवित्र मन से चार बार उक्त पाशे को डालना चाहिये। इससे जो शब्द बने उसका फल ग्रन्थ में देख लेने से प्रश्नो का फल ज्ञात हो जायगा।

यौगिक पाशा प्रणाली की दो विधियाँ देखने को मिलती हैं। पहली विधि है कि अष्टधातु के निर्मित पाशे पर १, २, ३ और चार अङ्को को निर्मित करें। पश्चात् उपर्युक्त मत्र का या इष्टदेव का १०८ बार स्मरण कर पाशे को प्रथम चार बार गिरावे, उससे जो अकसख्या निकले उसे एक स्थान पर रख ले। द्वितीय बार पाशे को चार बार फिर गिरावे, उससे जो अङ्क सख्या आवे उसे एक स्थान पर पुनः अंकित कर ले। तृतीय बार इसी प्रकार पाशा गिराने पर जो अक संख्या प्राप्त हो उसे भी अंकित कर ले। इन तीनो प्रकार की अङ्कित अङ्क संख्याओं में जो सबसे अधिक अक सख्या हो, उसी का फलाफल देख ले। द्वितीय विधि यह बतायी गयी है कि प्रथम बार चार बार पाशा डालने पर यदि निष्पन्न अक राशि विषम हो तो विषम राशि लग्न और सम हो तो सम राशि लग्न होती है। राशियो के सम, विषम की गणना द्वितीय बार में डाले गये पाशे के प्रथम अंक से करना चाहिये। इस प्रकार लग्न राशि का निश्चय कर पाशा द्वारा ग्रहों का भी निर्णय कर राशि, नक्षत्र, ग्रहो के बलाबल, दृष्टि आदि विचार से फलाफल ज्ञात करना चाहिये। द्वितीय प्रणाली का आभास सुग्रीव मुनि के नाम से उल्लिखित पाशाकेवली के चार श्लोको में ही मिलता है। 'पाशाकेवली' की प्रणाली को देखने से ज्ञात होता है कि जैनाचार्यों में प्रश्ननिरूपण की नाना प्रणालियों में

इस प्रणाली को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। संस्कृत भाषा में 'गर्भप्रश्न' और 'अक्षरकेवली' प्रश्नग्रन्थ सरल और आशुबोधगम्य प्रथम प्रणाली-सहज पाशाकेवली में निर्मित हुए हैं। इन दोनों ग्रंथों में यौगिक पाशाप्रणाली और सहज पाशाप्रणाली मिश्रित है।

हिन्दी भाषा में विनोदीलाल और वृन्दावन के 'अरहन्त, पाशाकेवली सहज पाशाप्रणाली पर मिलते हैं। १६ वीं, १७ वीं और १८ सदियो में पाशाकेवली प्रणाली का प्रश्नोत्तर निकालने के लिये अधिक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार जैन प्रश्नशास्त्र में उत्तरोत्तर विकास होता रहा है।

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि का जैन प्रश्नशास्त्र में स्थान

जैन प्रश्नशास्त्र की उपर्युक्त प्रणालियों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि केवलज्ञान प्रश्नचूड़ामणि में 'चन्द्रोन्मीलन' प्रश्नप्रणाली का वर्णन किया गया हैं। इस छोटे-से ग्रन्थ में वर्णों का वर्ग विभाजन कर संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत, अभिघातित, अभिधूमित, आलिंगित और दग्ध इन संज्ञाओं द्वारा प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। इस ग्रन्थकी रचनाशैली बड़ी सरल और रोचक है। चन्द्रोन्मीलन में जहाँ विस्तारपूर्वक फल बताया है वहाँ इस ग्रन्थ में संक्षेप में। आयप्रणाली की कुछ प्राचीन गाथाएं इस ग्रन्थ में उद्धृत की गई हैं। गद्य में स्वयं रचयिता ने 'आयप्रश्नप्रणाली' पर प्रकाश डाला है। प्रश्नशास्त्र की दृष्टि से इस ग्रन्थ में सभी आवश्यक बातें आ गयी हैं। कतिपय प्रश्नों के उत्तर विलक्षण ढग से दिये गये हैं। नष्ट जन्मपत्र बनाने की विधि इसकी सर्वथा नवीन और मौलिक है। यह विषय 'आयप्रश्नप्रणाली' में गर्भित नहीं होता है। चन्दोन्मीलन प्रश्नप्रणाली में नष्ट जन्मपत्र निर्माण का विषय आ जाता है, परन्तु चन्द्रोन्मीलन ग्रन्थ की अब तक जितनी प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं उनमें यह विषय नहीं आया है।

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि को देखने से मालूम होता है कि यह ग्रन्थ चद्रोन्मीलन प्रणाली के विस्तार को संक्षेप में समझाने के लिये लिखा गया है। इस शैली के अन्य ग्रन्थों में जिस बात को दस-बीस श्लोकों में कहा गया है, इस ग्रन्थ में उसी बात को एक छोटे-से गद्य अंश में कह दिया है। रचयिता की अभिव्यञ्जना शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है। इसमें एक भी शब्द व्यर्थ नहीं आया है। भाषा का कम प्रयोग करने पर भी ग्रन्थ कारों को जिस बात का निरूपण करना चाहिये, सरलता से कर दिया है। फलित ज्योतिष के प्रश्न ग्रन्थों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि इसका कलेवर 'आयज्ञानतिलक' या 'आयसद्भाव' की तुलना में बहुत कम है, फिर भी विषय प्रतिपादन की दृष्टि से इसका स्थान उपलब्ध जैन प्रश्नसाहित्य में महत्त्वपूर्ण है। इस एक ग्रन्थ के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन से कोई भी व्यक्ति प्रश्नशास्त्र का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। 'प्रश्न चूड़ामणि' नाम का एक ग्रन्थ चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली की संशोधित केरल प्रश्नप्रणाली में भी है; पर इस ग्रन्थ में वह खूबी नहीं जो इसमें है। प्रश्नचूड़ामणि या दिव्यचूड़ामणि में पद्यों में वर्णों के अष्टवर्गों का निरूपण किया है तथा फलकथन में कई स्थानों में त्रुटियाँ है। प्रश्नचुड़ामणि ग्रन्थ भी जैनाचार्य द्वारा निर्मित प्रतीत होता है। इसमें मंगलाचरण नहीं है। ग्रन्थ के अन्त में "ॐ शान्ति श्रीजिनाय नमः" आया है। यह पाठ मूल ग्रन्थकार का प्रतीत होता है।

जैन प्रश्नशास्त्र में केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि का स्थान विषयनिरूपण शैली की अपेक्षा से यदि सर्वोपरि माना जाय तो भी अत्युक्ति न होगी। इस एक ग्रन्थ में 'आयप्रश्नप्रणाली' 'चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली' तथा 'कल्पितसंज्ञालग्नप्रणाली' इन तीनों का सामान्य आभास मिल जाता है। यों तो इसमें 'चन्द्रोन्मीलनप्रश्न-प्रणाली' का ही अनुसरण किया गया है।

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि का विषय-परिचय

इस ग्रन्थ में अ क च ट त प य श अथवा आ ए क च ट त प य श इन अक्षरों का प्रथम वर्ग; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष इन अक्षरों का द्वितीय वर्ग; इ ओ ग ज ड द ब ल स इन अक्षरों का तृतीय वर्ग; ई

औ घ झ ढ ध भ व ह इन अक्षरों का चतुर्थ वर्ग और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः इन अक्षरों का पंचम वर्ग बताया गया है। इन अक्षरों को प्रश्नकर्त्ता के वाक्य या प्रश्नाक्षरों से ग्रहण कर अथवा उपर्युक्त पाँचों वर्गों को स्थापित कर प्रश्नकर्त्ता से स्पर्श कराके अच्छी तरह फलाफल का विचार करना चाहिये। संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित, अनभिहित और अभिघातित इन पाँचों द्वारा तथा आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध इन तीन क्रियाविशेषणो द्वारा प्रश्नों के फलाफल का विचार करना चाहिये।

प्रथम वर्ग और तृतीय वर्ग के संयुक्त अक्षर प्रश्नवाक्य में हों तो वह प्रश्नवाक्य संयुक्त कहलाता है। प्रश्नवर्णों में अ इ ए ओ ये स्वर हों तथा क च ट त प य श ग ज ड द ब ल स ये व्यञ्जन हो तो संयुक्त संज्ञक होता है। संयुक्त प्रश्न होने पर पृच्छक का कार्य सिद्ध होता है। यदि पृच्छक लाभ, जय, स्वास्थ्य, सुख और शान्ति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने आया है तोसंयुक्त प्रश्न होने पर उस के वे सभी कार्य सिद्ध होते हैं। यदि प्रश्नवर्णों में कई वर्गों के अक्षर हैं अथवा प्रथम, तृतीय वर्ग के अक्षरों की बहुलता होने पर भी संयुक्त प्रश्न ही माना जाता है। जैसे पृच्छक के मुख से प्रथम वाक्य 'कार्य' निकला, इस प्रश्नवाक्य का विश्लेषण किया। इसका क्+आ+र्+य्+अ यह स्वरूप हुआ। इस विश्लेषण में क+य्+अ ये तीन अक्षर प्रथम वर्ग के हैं तथा आ और र् द्वितीय वर्ग के हैं। यहाँ प्रथम वर्ग के तीन वर्ण और द्वितीय वर्ग के दो वर्ण हैं, अतः प्रथम द्वितीय वर्ग का संयोग होने से यह प्रश्न सयुक्त नहीं कहलायेगा।

प्रश्न पूछने के लिये जब कोई आवे तो उसके मुख से जो पहला वाक्य निकले, उसीको प्रश्नवाक्य मान कर अथवा उससे किसी पुष्प, फल, देवता, नदी और पहाड़ का नाम पूछ कर अर्थात् प्रातःकाल में आने पर पुष्प का नाम, मध्याह्नकाल में फल का नाम, अपराह्न में देवता का नाम और सायङ्काल में नदी या पहाड़ का नाम पूछकर प्रश्नवाक्य ग्रहण करना चाहिये। पृच्छक के प्रश्नवाक्य का स्वर, व्यञ्जनों के अनुसार विश्लेषण कर संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित, अनभिहित, अभिघातित, आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध इन आठ भेदों के द्वारा फल का निर्णय करना चाहिये।

यदि प्रश्नवाक्य में संयुक्त वर्णों की अधिकता हो–प्रथम और तृतीय वर्ग के वर्ण अधिक हों अथवा प्रश्नवाक्य का प्रारम्भ कि, चि, टि, ति, पि, यि, शि, को चो, टो, तो, पो, यो, शो, ग, ज, ड, द, ब, ल, स, गे, जे, डे, दे, बे, ले, से अथवा क्+ग्, क्+ज्, क्+ड्, क्+द्, क्+ब्, क्+ल्, क्+स्, च्+ज्, च्+ड्, च्+द्, च्+ब्, च्+ल्, च्+स्, ट्+ग्, ट्+ज्, ट्+ड्, ट्+द्, ट्+ब्, ट्+ल्, ट्+स्, त्+ग्, त्+ज्, त्+ड्, त्+द्, त्+ब्, त्+ल्, त्+स्, प्+ग्, प्+ज्, प्+ड्, प्+द्, प्+ब्, प्+ल्, प्+स्, य्+ग्, य्+ज्, य्+ड्, य्+द्, य्+ब्, य्+ल्, य्+स्, श्+ग्, श्+ज्, श्+ड्, श्+द्, श्+ब्, श्+ल्, श्+स्, ग्+क्, ग्+च्, ग्+ट्, ग्+त्, ग्+प्, ग्+य्, ग्+श्, ज्+क्, ज्+च्, ज्+ट्, ज्+प्, ज्+य्, ज्+श्, ड्+क्, ड्+च्, ड्+ट्, ड्+त्, ड्+प्, ड्+य्, ड्+श्, द्+क्, द्+च्, द्+ट्, द्+प्, द्+य्, द्+श्, ब्+क्, ब्+च्, ब्+ट्, ब्+त्, ब्+प्, ब्+य्, ब्+श्, ल्+क्, ल्+च्, ल्+ट्, ल्+त्, ल्+प्, ल्+य्, ल्+श्, स्+क्, स्+च्, स्+ट्, स्+त्, स्+प्, स्+य्, स्+श् से होता हो तो संयुक्त प्रश्न होता है। संयुक्त प्रश्न का फल शुभकारक बताया है।

प्रथम और द्वितीय वर्ग, द्वितीय और चतुर्थ वर्ग, तृतीय और चतुर्थ वर्ग एव चतुर्थ और पंचम वर्ग के वर्णों के मिलने पर असंयुक्त प्रश्न कहलाता है। प्रथम और द्वितीय वर्गाक्षरो के सयोग से–क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ, य र इत्यादि, द्वितीय और चतुर्थ वर्गाक्षरो के संयोग से–ख घ, छ झ, ठ ढ, थ ध, फ भ, र व, इत्यादि, तृतीय और चतुर्थ वर्गाक्षरों के सयोग से–गघ, जझ, डढ, दध, बभ, वल इत्यादि एवं चतुर्थ और पंचम वर्गाक्षरों के संयोग से- घङ, झञ, ढण, धन, भम इत्यादि विकल्प बनते हैं। असंयुक्त प्रश्न होने से फल की प्राप्ति बहुत दिनों के बाद होती है। यदि प्रथम द्वितीय वर्गों के अक्षर मिलने से असंयुक्त प्रश्न

हो तो धनलाभ, कार्य-सफलता और राजसम्मान अथवा जिस सम्बन्ध में प्रश्न पूछा गया हो, उस फल की प्राप्ति तीन महीने के उपरान्त होती है। द्वितीय चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से असंयुक्त प्रश्न हो, तो मित्र-प्राप्ति, उत्सववृद्धि, कार्यसाफल्य की प्राप्ति छः महीने में होती है। तृतीय-चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से असंयुक्त प्रश्न हो तो अल्पलाभ, पुत्रप्राप्ति, माङ्गल्यवृद्धि और प्रियजनों से झगड़ा एक महीने के अन्दर होता है। चतुर्थ और पंचम वर्गाक्षरों के संयोग से असंयुक्त प्रश्न हो तो घर में विवाह आदि माङ्गलिक उत्सवों की वृद्धि, स्वजन-प्रेम, यशःप्राप्ति, महान् कार्यों में लाभ और वैभव की वृद्धि इत्यादि फलों की प्राप्ति शीघ्र होती है।

यदि पृच्छक रास्ते में हो, शयनागार में हो, पालकी पर सवार हो, मोटर, साइकिल, घोड़े, हाथी आदि किसी भी सवारी पर सवार हो तथा हाथ में कुछ भी चीज न लिये हो तो असयुक्त प्रश्न होता है। यदि पृच्छक पश्चिम दिशा की ओर मुँह कर प्रश्न करे तथा प्रश्न करते समय कुर्सी, टेबुल, बेंच अथवा अन्य लकड़ी की वस्तुओं को छूता हुआ या नोंचता हुआ प्रश्न करे तो उस प्रश्न को भी असंयुक्त जानना चाहिये, असंयुक्त प्रश्न का फल प्रायः अनिष्टकर ही होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में असयुक्त प्रश्न में चिन्ता, मृत्यु, पराजय हानि एवं कार्यनाश आदि फल बताये गये हैं।

यदि प्रश्नवाक्य का आद्यक्षर गा, जा, डा, दा, बा, ला, सा, गै, जै, डै, दै, बै, लै, सै, घि, झि, ढि, धि, भि, वि, हि, घो, झो, ढो, धो, भो, वो, हो, में से कोई हो तो असंयुक्त प्रश्न होता है। इस प्रकार से असंयुक्त प्रश्न का फल अशुभ होता है। कार्य विनाश, मानसिक चिन्ताएँ, मृत्यु आदि फल ढो, झो, हो लै आद्य प्रश्नाक्षरों के होने पर तीन महीने के भीतर होते हैं।

प्रश्नकर्त्ता के प्रश्नाक्षरो में कख, खग, गघ, घङ, चछ, छज, जझ, झञ, टठ, ठड, डढ, ढण, तथ, थद, दध, धन, पफ, फब, बभ, भम, यर, रल, लव, वश, शष, षस और सह इन वर्णों के क्रमशः विपर्यय होने पर—परस्पर में पूर्व और उत्तरवर्ती हो जाने पर अर्थात् खक, गख, घग, ङघ, छच, जछ, झज, ञझ, ठट, डठ, ढड, णढ, थत, दथ, धद, नध, फप, बफ, भब, मभ, रय, लर, वल, षश, सष एव हस होने पर अभिहित प्रश्न होता है। इस प्रकार के प्रश्नाक्षरो के होने पर कार्यसिद्धि नहीं होती है। प्रश्नवाक्य के विश्लेषण करने पर पंचमवर्ग के वर्णों की संख्या अधिक हो ता भी अभिहित प्रश्न होता है। प्रश्नवाक्य का आरम्भ उपर्युक्त अक्षरों के संयोग से निष्पन्न वर्गों से हो तो अभिहित प्रश्न होता है। इस प्रकार के प्रश्न का फल भी अशुभ है।

अकार स्वर सहित और अन्य स्वरो से रहित अ क च त प य श ङ ञ ण न म ये प्रश्नाक्षर या प्रश्नवाक्य के आद्यक्षर हों तो अनभिहत प्रश्न होता है। अनभिहत प्रश्नाक्षर स्ववर्गाक्षरों में हो तो व्याधि-पीड़ा और अन्य वर्गाक्षरों में हों तो शोक, सन्ताप, दुःख, भय और पीड़ा फल होता है। जैसे मोतीलाल नामक व्यक्ति प्रश्न पूछने आया। प्रश्नवाक्य पूछने पर उसने 'चमेली' का नाम लिया। चमेली यह प्रश्नवाक्य कौन सा है? यह जानने के लिये उस वाक्य का विश्लेषण किया तो प्रश्नवाक्य का प्रारम्भिक अक्षर च है, इसमें अ स्वर और च् व्यञ्जन का संयोग है; द्वितीय वर्ण 'मे' में ए स्वर और म् व्यञ्जन का सयोग है तथा तृतीय वर्ण 'ली' में ई स्वर और ल् व्यञ्जन का सयोग है। च्+अ्+म्+ए+ल्+ई इस विश्लेषण में अ+च्+म् ये तीन वर्ण अनभिहत, ई अभिधूमित, ए आलिंगित और ल् आभिहत सज्ञक हैं। परस्पर शोधयित्वा योऽधिकः स एव प्रश्नः' इस नियम के अनुसार यह प्रश्न अनभिहत हुआ, क्योंकि सबसे अधिक वर्ण अनभिहत प्रश्न के हैं। अथवा प्रथम वर्ण जिस प्रश्न का हो, उसी सज्ञक प्रश्नवाक्य को मानना चाहिये; जैसे ऊपर के प्रश्नवाक्य 'चमेली' में प्रथम अक्षर 'च' है यह अनभिहत प्रश्नवाक्य का है, अतः अनभिहत प्रश्न माना जायगा। इसका फल कार्य असिद्धि कहना चाहिये।

प्रश्नश्रेणी के सभी वर्ण चतुर्थ वर्ग और प्रथम वर्ग के हो अथवा पञ्चम वर्ग और द्वितीय वर्ग के हों तो अभिघातित प्रश्न होता है। इस प्रश्न का फल अत्यन्त अनिष्टकर बताया गया है। यदि पृच्छक कमर, हाथ, पैर और छाती को खुजलाता हुआ प्रश्न करे तो भी अभिघातित प्रश्न होता है।

प्रश्नवाक्य के प्रारम्भ में या समस्त प्रश्नवाक्य में अधिकाश स्वर अ इ ए ओ ये चार हों तो आलिङ्गित प्रश्न; आ ई ऐ औ ये चार हों तो अभिधूमित प्रश्न और उ ऊ अं अः ये चार हों तो दग्ध प्रश्न होता है। आलिङ्गित प्रश्न होने पर कार्यसिद्धि, अभिधूमित होने पर धनलाभ, कार्यसिद्धि, मित्रागमन एवं यश लाभ और दग्ध प्रश्न होने पर दुःख, शोक, चिन्ता, पीड़ा एवं धनहानि होती है। जब पृच्छक दाहिने हाथ से दाहिने अंग को खुजलाते हुए प्रश्न करे तो आलिङ्गित, दाहिने या बाँये हाथ से समस्त शरीर को खुजलाते हुए प्रश्न करे तो अभिधूमित प्रश्न एवं रोते हुए नीचे की ओर दृष्टि किये हुए प्रश्न करे तो दग्ध प्रश्न होता है। प्रश्नाक्षरों के साथ-साथ उपर्युक्त चर्या-चेष्टा का भी विचार करना आवश्यक है। यदि प्रश्नाक्षर आलिङ्गित हों और पृच्छक की चेष्टा दग्ध प्रश्न की हो ऐसी अवस्था में फल मिश्रित कहना चाहिये। प्रश्नवाक्य में अथवा प्रश्नवाक्य का आद्य स्वर आलिङ्गित होने पर तथा चेष्टा-चर्या के अभिधूमित या दग्ध होने पर प्रश्न का फल मिश्रित होगा, पर इस अवस्था में गणक को अपनी बुद्धिका विशेष उपयोग करना होगा। यदि प्रश्नाक्षरों में आलिङ्गित स्वरों की प्रधानता हो तो उसे निस्संकोच रूप से आलिङ्गित प्रश्न का फल कहना चाहिये, भले ही चर्या-चेष्टा अन्य प्रश्न की हो।

उदाहरण–किसी ने आकर पूछा 'मेरा कार्य सिद्ध होगा या नहीं?' इस प्रारम्भिक उच्चरित वाक्य को प्रश्नवाक्य मानकर विश्लेषण किया तो–

म् + ए + र + आ + क् + आ + र + य् + अ + स् + इ + द् + ध् + अ + ह + ओ + ग् + आ यह स्वरूप हुआ। इसमें अ अ इ ए ओ ये पाँच अक्षर स्वर आलिङ्गित और आ आ आ ये तीन अभिधूमित प्रश्न के हुए। "परस्परम् अक्षराणि शोधयित्वा योऽधिकः स एव प्रश्नः" इस नियम के अनुसार शोधन किया तो आलिङ्गित प्रश्न के दो स्वर अवशेष आये—'५ आलि०—३ अभिधू० = २ स्वर आलिङ्गित। अतः यह प्रश्न आलिङ्गित हुआ। यदि इस पृच्छक की चर्या-चेष्टा अभिधूमित प्रश्न की हो, तो मिश्रित फल होने पर भी आलिङ्गित प्रश्न का ही फल प्रधान रूप से कहना चाहिये।

उपर्युक्त आठ प्रकार से प्रश्न का विचार करने के पश्चात् अधरोत्तर, वर्गोत्तर और वर्ग संयुक्त अधर इन भंगों के द्वारा भी प्रश्नों का विचार करना चाहिये। उत्तर के नौ भेद कहे गये हैं—उत्तरोत्तर, उत्तराधर, अधरोत्तर, अधराधर, अधरोत्तर, अधराधर, वर्गोत्तर, अक्षरोत्तर, स्वरोत्तर, गुणोत्तर और आदेशोत्तर। अ और कवर्ग उत्तरोत्तर, चवर्ग और टवर्ग उत्तराधर, तवर्ग और पवर्ग अधरोत्तर एव यवर्ग और शवर्ग अधराधर होते हैं। प्रथम और तृतीय वर्गवाले अक्षर वर्गोत्तर, द्वितीय और चतुर्थ वर्गवाले अक्षर अधरोत्तर एव पञ्चम वर्ग वाले अक्षर दोनों—प्रथम और तृतीय मिला देने से क्रमशः वर्गोत्तर और वर्गाधर होते हैं।

क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स ये उन्नीस वर्ण उत्तरसंज्ञक, ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह ये चौदह वर्ण अधरसंज्ञक, अ इ उ ए ओ अ ये छ वर्ण स्वरोत्तरसंज्ञक; अ च त य उ ब द ल ये आठ वर्ण गुणोत्तर संज्ञक और क ट प श ग ड ब ह ये आठ वर्ण गुणाधर संज्ञक हैं। संयुक्त, असंयुक्त अभिहत एवं अनभिहत आदि आठ प्रकार के प्रश्नों के साथ नौ प्रकार के इन प्रश्नों का भी विचार करना चाहिये।

प्रश्नकर्त्ता के प्रथम, तृतीय और पंचम स्थान के वाक्याक्षर उत्तर एव द्वितीय और चतुर्थ स्थान के वाक्याक्षर अधर कहलाते हैं। यदि प्रश्न में दीर्घाक्षर प्रथम, तृतीय और पंचम स्थान में हों तो लाभ कराने वाले होते हैं, शेष स्थानो में रहने वाले ह्रस्व और प्लुताक्षर हानि कराने वाले होते हैं। साधक इन प्रश्नाक्षरों पर से जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, जय, पराजय आदि फलों को ज्ञात कर सकता है। इस प्रकार विभिन्न दृष्टिकोणों से आचार्य ने वाचिक प्रश्नों का विचार किया है।

ज्योतिष शास्त्र में प्रश्न दो प्रकार के बताये गये हैं—मानसिक और वाचिक। वाचिक प्रश्न में प्रश्नकर्त्ता जिस बात को पूछना चाहता है उसे ज्योतिषी के सामने प्रकट कर उसका फल ज्ञात करता है। परन्तु मानसिक प्रश्न में पृच्छक अपने मन की बात नहीं बतलाता है; केवल प्रतीको–फल, पुष्प, नदी, पहाड़, देवता आदि के नाम द्वारा ही ज्योतिषी को उसके मन की बात जानकर कहना पड़ता है।

संसार में प्रधानतया तीन प्रकार के पदार्थ होते हैं—जीव, धातु और मूल। मानसिक प्रश्न भी उक्त तीन ही प्रकार के हो सकते हैं। आचार्य ने सुविधा के लिये इनका नाम तीन प्रकार की योनि—जीव, धातु और मूल रखा है। अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः इने बारह स्वरों में से अ आ इ ए ओ अः ये छः स्वर तथा क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह ये पन्द्रह व्यञ्जन इस प्रकार कुल २१वर्ण जीव संज्ञक; उ ऊ अं ये तीन स्वर तथा त थ द ध प फ ब भ व स ये दस व्यञ्जन इस प्रकार कुल १३ वर्ण धातु संज्ञक और ई ऐ औ ये तीन स्वर तथा ङ ञ ण न म ल र ष ये आठ व्यञ्जन इस प्रकार कुल ११ वर्ण मूल संज्ञक होते हैं।

जीवयोनि में अ ए क च ट त प य श ये अक्षर द्विपद संज्ञक; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये अक्षर चतुष्पद संज्ञक; इ ओ ग ज ड द ब ल स ये अक्षर अपद सज्ञक और ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये अक्षर पाद-संकुल संज्ञक होते हैं। द्विपद योनि के देव, मनुष्य, पक्षी और राक्षस ये चार भेद हैं। अ क ख ग घ ङ प्रश्न वर्णों के होने पर देवयानि; च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण प्रश्नवर्णों के होने पर मनुष्य योनि; त थ द ध न प फ ब भ म के होने पर पशु या पक्षी योनि और य र ल व श ष स ह प्रश्नवर्णों के होने पर राक्षस योनि होती है। देवयोनि के चार भेद हैं—कल्पवासी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी। देवयोनि के वर्णों में अकार की मात्रा होने पर कल्पवासी, इकार की मात्रा होने पर भवनवासी; एकार की मात्रा होने पर व्यन्तर और ओकार की मात्रा होने पर ज्योतिष्क देवयोनि होती है।

मनुष्य योनि के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज ये पाँच भेद हैं। अ ए क च ट त प य श ये वर्ण ब्राह्मण योनि सज्ञक; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये वर्ण क्षत्रिय योनि संज्ञक; इ ओ ग ज ड द ब ल स ये वर्ण वैश्य योनि संज्ञक, ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये वर्ण शूद्रयोनि सज्ञक एवं उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः ये वर्ण अन्त्यज योनि संज्ञक होते हैं। इन पाँचों योनियों के वर्णों में यदि अ इ ए ओ ये मात्राएँ हों तो पुरुष, आ ई ऐ औ ये मात्राएँ हों तो स्त्री एवं उ ऊ अं अः ये मात्राएँ हों तो नपुसक सज्ञक होते हैं। पुरुष, स्त्री और नपुंसक में भी आलिङ्गित होने पर गौर वर्ण, अभिधूमित होने पर श्याम और दग्ध होने पर कृष्ण वर्ण होता है। आलिङ्गित प्रश्न होने पर बाल्यावस्था, अभिधूमित होने पर युवावस्था और दग्ध प्रश्न होने पर वृद्धावस्था होती है। आलिङ्गित प्रश्न होने पर सम—न कद अधिक बड़ा और न अधिक छोटा, अभिधूमित होने पर लम्बा और दग्ध प्रश्न होने पर कुब्ज और बौना होता है।

त थ द ध न प्रश्नाक्षरों के होने पर जलचर पक्षी और प फ ब भ म प्रश्नाक्षरो के होने पर थलचर पक्षियो की चिन्ता कहनी चाहिये। राक्षस योनि के दो भेद हैं—कर्मज और योनिज। भूत, प्रेतादि राक्षस कर्मज कहलाते हैं और असुरादि को योनिज कहते हैं। त थ द ध न प्रश्नाक्षरों के होने पर कर्मज और श ष स ह प्रश्नाक्षरों के होने पर योनिज राक्षस की चिन्ता समझनी चाहिये।

चतुष्पद योनि के खुरी, नखी, दन्ती और शृंगी ये चार भेद हैं। यदि प्रश्नाक्षरों में आ और ऐ स्वर हों तो खुरी; छ और ठ प्रश्नाक्षरों में हों तो नखी; थ और फ प्रश्नाक्षरों में हों तो दन्ती एवं र और ष प्रश्नाक्षरों में हों तो शृंगी योनि होती है। खुरी योनि के ग्रामचर और अरण्यचर ये दो भेद है। आ, ऐ प्रश्नाक्षर के होने पर ग्रामचर—घोड़ा, गधा, ऊँट आदि मवेशी की चिन्ता और ख प्रश्नाक्षर होने पर वनचारी पशु—रोझ, हरिण, खरगोश आदि पशुओं की चिन्ता समझनी चाहिये।

नखी योनि के ग्रामचर और अरण्यचर ये दो भेद हैं। प्रश्नवाक्य में छ प्रश्नाक्षर हो तो ग्रामचर अर्थात् कुत्ता, बिल्ली आदि नखी पशुओं की चिन्ता और ठ प्रश्नाक्षर हो तो अरण्यचर—व्याघ्र, चीता, सिंह, भालू आदि जंगली जीवों की चिन्ता कहनी चाहिये।

दन्ती योनि के दो भेद हैं—ग्रामचर और अरण्यचर। प्रश्नवाक्य में थ अक्षर हो तो ग्रामचर—शूकर आदि ग्रामीण पालतू दन्ती जीवों की चिन्ता और फ अक्षर हो तो अरण्यचर जंगली हाथी, सेही आदि दन्ती पशुओं की चिन्ता कहनी चाहिये।

शृंगी योनि के दो भेद हैं—ग्रामचर और अरण्यचर। प्रश्नवाक्य में र अक्षर हो तो भैंस, बकरी, गाय, बैल आदि पालतू सींग वाले पशुओं की चिन्ता एवं ष अक्षर हो तो अरण्यचर—हरिण, कृष्णसार आदि वनचारी सींगवाले पशुओं की चिन्ता समझनी चाहिये।

अपद योनि के दो भेद हैं—जलचर और थलचर। प्रश्नवाक्य में इ ओ ग ज ड अक्षर हों तो जलचर—मछली, शख इत्यादि की चिन्ता और द ब ल स अक्षर हों तो साँप, मेढक आदि थलचर अपदों की चिन्ता समझनी चाहिये।

पादसंकुल योनि के दो भेद हैं—अण्डज और स्वेदज। इ औ घ झ ढ ये प्रश्नाक्षर अण्डज संज्ञक—भ्रमर, पतङ्ग इत्यादि और ध भ व ह ये प्रश्नाक्षर स्वेदक संज्ञक—जूँ, खटमल आदि हैं।

धातु योनि के भी दो भेद बताये हैं–धाम्य और अधाम्य। त द प ब उ अं स इन प्रश्नाक्षरों के होने पर धाम्य धातु योनि और घ थ ध फ ऊ व ए इन प्रश्नाक्षरों के होने पर अधाम्य धातु योनि होती है। धाम्य योनि के आठ भेद हैं—सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, रांगा, काँसा, लोहा, सीसा और पित्तल। धाम्य योनि के प्रकारान्तर से दो भेद हैं—घटित और अघटित। उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों में रहने पर घटित और अधराक्षर रहने पर अघटित धातु योनि होती है। घटित धातु योनि के तीन भेद हैं—जीवाभरण—आभूषण, गृहाभरण—वर्तन और नाणक-सिक्के, नोट आदि। अ ए क च ट त प य श प्रश्नाक्षर हों तो द्विपदाभरण–दो पैर वाले जीवों के आभूषण होते हैं। इसके तीन भेद हैं—देवताभूषण, पक्षिआभूषण और मनुष्याभूषण। मनुष्याभरण के शिरसाभरण, कर्णाभरण, नासिकाभरण, ग्रीवाभरण, हस्ताभरण, जङ्घाभरण और पादाभरण ये आठ भेद हैं। इन आभूषणों में मुकुट, खौर, सीसफूल आदि शिरसाभरण; कानों में पहने जाने वाले कुण्डल, एरिंग आदि कर्णाभरण; नाक में पहने जाने वाली लौंग, वाली, नथ आदि नासिकाभरण; कण्ठ में पहने जाने वाली हंसुली, हार, कण्ठी आदि ग्रीवाभरण; हाथों में पहने जाने वाले कंकण, अंगूठी, मुदरी, छल्ला, छाप आदि हस्ताभरण; जङ्घों में बांधे जाने वाले घुंघरू, क्षुद्रघण्टिका आदि जङ्घाभरण और पैरों में पहने जाने वाले बिछुए, छल्ला, पाजेब आदि पादाभरण होते हैं। क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स प्रश्नाक्षरों के होने पर मनुष्याभरण की चिन्ता एवं ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह प्रश्नाक्षरों के होने पर स्त्रियों के आभूषणों की चिन्ता समझनी चाहिये।

उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर दक्षिण अङ्ग का आभूषण और अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर वाम अङ्ग का आभूषण समझना चाहिये। अ क ख ग घ ङ प्रश्नाक्षरों के होने पर या प्रश्नवर्णों में उक्त प्रश्नाक्षरों की बहुलता होने पर देवों के उपकरण—छत्र, चामर आदि अथवा आभूषण (पद्मावती देवी एवं धरणेन्द्र आदि रक्षक देवों के आभूषण) और त थ द ध न प फ ब भ म इन प्रश्नवर्णों के होने पर पक्षियों के आभूषणों की चिन्ता कहनी चाहिये। प्रश्नकर्ता के प्रश्नवाक्य में प्रथम वर्ण की मात्रा अ इ ए ओ इन चार मात्राओं में से कोई हो तो जीवाभरण की चिन्ता; आ ई ऐ औ इन चार मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो गृहाभरण की चिन्ता और उ ऊ अं अः इन चार मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो सिक्के, नोट, रुपये आदि की चिन्ता समझनी चाहिये। प्रश्नवाक्य के आद्य वर्ण की मात्रा अ आ इन दोनों में से कोई हो तो शिरसाभरण की चिन्ता; इ ई इन दोनों में से कोई हो तो कर्णाभरण की चिन्ता; उ ऊ इन दोनो मात्राओं में से कोई हो तो नासिकाभरण की चिन्ता; ए मात्रा के होने से ग्रीवाभरण की चिन्ता; ऐ मात्रा के होने से कण्ठाभरण की चिन्ता; ऋ तथा संयुक्त व्यञ्जन में उकार की मात्रा होने से हस्ताभरण की चिन्ता; ओ औ इन मात्राओं में से किसी के होने पर जङ्घाभरण की चिन्ता और अं अः इन दोनों मात्राओं में से किसी के होने पर पादाभरण की चिन्ता समझनी चाहिये।

यदि प्रश्नवाक्य का आद्य वर्ण क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स इन अक्षरों में से कोई हो तो हीरा, माणिक्य, मरकत, पद्मराग और मूँगा की चिन्ता; ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह

इन अक्षरों में से कोई हो तो हरिताल, शिला, पत्थर आदि की चिन्ता एवं उ ऊ अं अः इन स्वरों से युक्त व्यञ्जन प्रश्न के आदि में हो तो शर्करा (चीनी), लवण, बालू आदि की चिन्ता समझनी चाहिये। यदि प्रश्न-वाक्य के आदि में अ इ ए ओ इन चार मात्राओं में से कोई हो तो हीरा, मोती, माणिक्य आदि जवाहरात की चिंता, आ ई ऐ औ इन मात्राओं में से कोई हो तो शिला, पत्थर, सीमेन्ट, चूना, सङ्गमरमर आदि की चिन्ता एवं उ ऊ अं अः इन मात्राओं मे से कोई मात्रा हो तो चीनी, बालू आदि की चिन्ता कहनी चाहिये। मुष्टिका प्रश्न में मुट्ठी के अन्दर भी इन्हीं प्रश्न विचारो के अनुसार योनि का निर्णय कर वस्तु कहनी चाहिये।

मूल योनि के चार भेद हैं—वृक्ष, गुल्म, लता और वल्ली। यदि प्रश्नवाक्य के आद्यवर्ण की मात्रा आ हो तो वृक्ष, ई हो तो गुल्म, ऐ हो तो लता और औ हो ता वल्ली समझनी चाहिये। पुनः मूलयोनि के चार भेद कहे गये हैं–बल्कल, पत्ते, फूल और फल। प्रश्नवाक्य के आदि में, क च ट त वर्णों के होने पर बल्कल, ख छ ठ थ वर्णों के होने पर पत्ते; ग ज ड द वर्णों के होने पर फूल और घ झ ढ ध वर्णों के होने पर फल की चिन्ता कहनी चाहिये। इन चारो भेदो के भी दो-दो भेद हैं—भक्ष्य और अभक्ष्य। क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स प्रश्न वर्णों के होने पर या प्रश्नवाक्य में उक्त वर्णों की अधिकता होने पर भक्ष्य और ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष प्रश्नवर्णों के होने पर या प्रश्नवाक्य में इन वर्णों की अधिकता होने पर अभक्ष्य मूल योनि की चिन्ता कहनी चाहिये। भक्ष्याभक्ष्य के अवगत हो जाने पर उत्तरा-क्षर प्रश्नवर्णों के होने पर सुगन्धित और अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर दुर्गन्धित मूल योनि की चिन्ता समझनी चाहिये। अथवा क च ट त प य श प्रश्न वर्णों के होने पर भक्ष्य; ख छ ठ थ फ र ष प्रश्नवर्णों के होने पर अभक्ष्य; ग ज ड द ब ल ष प्रश्नवर्णों के होने पर सुगन्धित एवं घ झ ढ ध भ व स प्रश्नवर्णों के होने पर दुर्गन्धित मूल योनि की चिन्ता समझनी चाहिये।

उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर आर्द्र मूल योनि, अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर शुष्क, उत्तराक्षर प्रश्न-वर्णों के होने पर स्वदेशस्थ, अधराक्षर प्रश्न वर्णो के होने पर परदेशस्थ मूल योनि समझनी चाहिये। ङ ञ ण न म प्रश्नाक्षरो के होने पर सूखे हुए तृण, काठ, देवदारु, दूब, चन्दन आदि समझने चाहिये। इ और ज प्रश्नवर्णों के होने पर शस्त्र और वस्त्र सम्बन्धी मूल योनि कहनी चाहिये।

जीवयोनि से मानसिक चिन्ता और मुष्टिगत प्रश्नों के उत्तरों के साथ चोर की जाति, अवस्था, आकृति, रूप, कद, स्त्री, पुरुष एव बालक आदि का पता लगाया जा सकता है। धातु योनि में चोरी गई वस्तु का स्वरूप, नाम पृच्छक के बिना कहे भी ज्योतिषी जान सकता है। धातु योनि के विश्लेषण से कहा जा सकता है कि अमुक प्रकार की वस्तु चोरी गयी है या नष्ट हुई है। इन योनियों के विचार द्वारा किसी भी व्यक्ति की मनःस्थित विचारधारा का पता सहज म लगाया जा सकता है।

इस ग्रन्थ में मूक प्रश्नों के अनन्तर मुष्टिका प्रश्नों का विचार किया है। यदि प्रश्नाक्षरो में पहले के दो स्वर आलिङ्गित हो और तृतीय स्वर अभिधूमित हो तो मुट्ठी में श्वेत रंग की वस्तु; पूर्व के दो स्वर अभिधूमित हों और तृतीय स्वर दग्ध हो तो पीले रङ्ग की वस्तु; पूर्व के दो स्वर दग्ध और तृतीय आलिङ्गित हो तो रक्त-श्याम वर्ण की वस्तु; प्रथम स्वर दग्ध, द्वितीय आलिङ्गित और तृतीय अभिधूमित हो तो श्याम-श्वेत वर्ण की वस्तु; प्रथम आलिङ्गित, द्वितीय दग्ध और तृतीय अभिधूमित हो तो काले रङ्ग की वस्तु एव प्रथम दग्ध द्वितीय अभिधूमित और तृतीय आलिङ्गित स्वर हो तो मुट्ठी में हरे रङ्ग की वस्तु समझनी चाहिये। यदि पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में प्रथम स्वर अभिधूमित, द्वितीय आलिङ्गित और तृतीय दग्ध हो तो विचित्र वर्ण की वस्तु; तीनो स्वर आलिङ्गित हो तो कृष्ण वर्ण की विचित्र वस्तु; तीनों दग्ध हो तो नील वर्ण की वस्तु और तीनों अभिधूमित स्वर हों तो काचन वर्ण की वस्तु समझनी चाहिये।

लाभालाभ सम्बन्धी प्रश्नों का विचार करते हुए कहा है कि प्रश्नाक्षरों में आलिङ्गित–अ इ ए ओ मात्राओं के होने पर शीघ्र अधिक लाभ; अभिधूमित–आ ई ऐ औ मात्राओं के होने पर अल्प लाभ एवं

दग्ध–उ ऊ अं अः मात्राओं के होने पर अलाभ एवं हानि होती है। उ ऊ अं अः इन चार मात्राओं से संयुक्त क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स ये प्रश्नाक्षर हों तो बहुत लाभ होता है। आ ई ऐ औ मात्राओं से संयुक्त क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स प्रश्नाक्षरों के होने पर अल्प लाभ होता है। अ इ ए ओ मात्राओं से संयुक्त उपर्युक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर कष्ट द्वारा अल्पलाभ होता है। अ आ इ ए ओ अः क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह प्रश्नाक्षर हों तो जीवलाभ और रुपया, पैसा, सोना, चाँदी, मोती, माणिक्य आदि का लाभ होता है। ई ऐ औ ङ ञ ण न म ल र ष प्रश्नाक्षर हों तो लकड़ी, वृक्ष, कुर्सी, टेबुल, पलग आदि वस्तुओं का लाभ होता है।

शुभाशुभ प्रश्न प्रकरण में प्रधानतया रोगी के स्वास्थ्य लाभ एव उसकी आयु का विचार किया गया है। प्रश्नवाक्य में आद्य वर्ण आलिङ्गित मात्रा से युक्त हो तो रोगी का रोग यत्नसाध्य, अभिधूमित मात्रा से युक्त हो तो कष्टसाध्य और दग्धमात्रा से युक्त हो तो मृत्यु फल समझना चाहिये। पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण आ ई ऐ औ मात्राओं से सयुक्त संयुक्ताक्षर हो तो पृच्छक जिस के सम्बन्ध में पूछता है उस की दीर्घायु कहनी चाहिये। आ ई ऐ औ इन मात्राओं से युक्त क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स वर्णों में से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य का आद्यक्षर हो तो लम्बी बीमारी भोगने के बाद रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है। इस प्रकार शुभाशुभ प्रकरण में विस्तार से स्वास्थ्य, अस्वास्थ्य, जीवन-मरण का विचार किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण प्रकरण नष्ट-जन्मपत्र बनाने का है। इस में प्रश्नाक्षरों पर से ही जन्ममास, पक्ष, तिथि और संवत् आदि का आनयन किया गया है। मासानयन करते हुए बताया है कि यदि अ ए क प्रश्नाक्षर हों या प्रश्नवाक्य के आदि में इन में से कोई हो तो फाल्गुन मास का जन्म, च ट प्रश्नाक्षर हों या प्रश्नवाक्य के आदि में इन में से कोई अक्षर हो तो चैत्र मास का जन्म, त प प्रश्नाक्षर हो या प्रश्नवाक्य के आदि में इन में से कोई अक्षर हो तो कार्त्तिक मास का जन्म, य श प्रश्नाक्षर हो या प्रश्नवाक्य के आदि में इन में से कोई अक्षर हो तो मार्गशीर्ष का जन्म, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष प्रश्नाक्षर हों या प्रश्नवाक्य के आदि का अक्षर इन में से कोई हो तो माघ मास का जन्म, इ ओ ग ज ड द प्रश्नाक्षर हों या इनमें से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य के आदि में हो तो वैशाख मास का जन्म, द ब ल ये प्रश्नाक्षर हो या इनमें से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य के आदि में हो तो ज्येष्ठ मास का जन्म, ई औ घ झ ढ ये प्रश्नाक्षर हों या इन में से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य के आदि में हो तो आषाढ़ मास का जन्म, ध भ व ह प्रश्नाक्षर हो या इन में से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य के आदि में हो तो श्रावण मास का जन्म, उ ऊ ङ ण ञ ये प्रश्नाक्षर हो या इन में से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य का आदि अक्षर हो तो भाद्रपद मास का जन्म; न म अं अः ये प्रश्नाक्षर हो या इन में से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य के आदि में हो तो आश्विन मास का जन्म एव आ ई ख छ ठ ये प्रश्नाक्षर हो या इन में से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य का आद्यक्षर हो तो पौष मास का जन्म समझना चाहिये। इसी प्रकार आगे पक्ष और तिथि का भी विचार किया है, इस ग्रन्थ में प्रतिपादित विधि से नष्ट जन्मपत्र सरलता पूर्वक बनाया जा सकता है।

इस ग्रन्थ में आगे मूकप्रश्न, मुष्टिकाप्रश्न, लूकाप्रश्न इत्यादि प्रश्नों के लिये उपयोगी वर्ग पञ्चाधिकार का वर्णन किया है। क्योंकि प्रश्नाक्षर जिस वर्ग के होते हैं, वस्तु का नाम उस वर्ग के अक्षरों पर नहीं होता। इसलिए सिंहावलोकन, गजावलोकन, नद्यावर्त, मड्डूकप्लवन और अश्वमोहित क्रम ये पाँच प्रकार के सिद्धान्त वर्गाक्षरों के परिवर्तन में कार्य करते हैं। इस पञ्चाधिकार के स्वरूप, गणित और नियमोपनियम आदि आवश्यक बातों को जानकर प्रश्नों के रहस्य को अवगत करना चाहिये। इस ग्रन्थ के ७२ वें पृष्ठ से लेकर अन्त तक सभी वर्गों के पञ्चाधिकार दिये गये हैं तथा चक्रों के आधार पर उनका स्वरूप परिवर्तन भी दिखलाया गया है।

प्रश्न निकालने की विधि

यद्यपि प्रश्न निकालने की विधि का पहले उल्लेख किया जा चुका है। परन्तु पाठक इस नवीन विषय को सरलता पूर्वक जान सकें; इसलिये संक्षेप में प्रश्नविधि पर प्रकाश डाला जायगा।

१—जब पृच्छक प्रश्न पूछने के लिये आवे तो पूर्वोक्त पाँचों वर्गों को एक कागज पर लिखकर उससे अक्षरों का स्पर्श तीन बार करावे। पृच्छक द्वारा स्पर्श किये गये तीनों अक्षरों को लिख ले, फिर संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत, अभिघातित, अभिधूमित, आलिङ्गित और दग्ध इन संज्ञाओं द्वारा तथा अधरोत्तर, वर्गोत्तर और वर्गसंयुक्त अधर इन ग्रन्थोक्त संज्ञाओं द्वारा प्रश्नों का विचार कर उत्तर दे।

२—वर्णमाला के अक्षरो में से पृच्छक से कोई भी तीन अक्षर पूछे। पश्चात् उसके प्रश्नाक्षरों को लिखकर ग्रन्थोक्त पाँचो वर्गों के अक्षरो से मिलान करें तथा संयुक्त, असयुक्त आदि संज्ञाओं द्वारा फल का विचार करें।

३—पृच्छक के आने पर किसी अबोध बालक से अक्षरों का स्पर्श करावें या वर्णमाला के अक्षरों में से तीन अक्षरों का नाम पूछे; पश्चात् उस अबोध शिशु द्वारा बताये गये अक्षरो को प्रश्नाक्षर मानकर प्रश्नों का विचार करे।

४—पृच्छक आते ही जिस वाक्य से बातचीत आरम्भ करे; उसी वाक्य को प्रश्नवाक्य मानकर संयुक्त, असंयुक्त आदि संज्ञाओं द्वारा प्रश्नों का फलाफल ज्ञात करे।

५—प्रातःकाल में पृच्छक के आने पर उससे किसी पुष्प का नाम, मध्याह्नकाल में फल का नाम, अपराह्नकाल में देवता का नाम और सायकाल में नदी या पहाड़ का नाम पूछकर प्रश्नवाक्य ग्रहण करना चाहिये। इस प्रश्नवाक्य पर से सयुक्त, असंयुक्त आदि सज्ञाओं द्वारा प्रश्नों का फलाफल अवगत करना चाहिये।

६—पृच्छक की चर्या, चेष्टा जैसी हो, उसके अनुसार प्रश्नों का फलाफल बतलाना चाहिये।

७—प्रश्नलग्न निकाल कर उसके आधार से प्रश्नों के फल बतलाने चाहिये।

८—पृच्छक से किसी अंक संख्या को पूछ कर उस पर गणित क्रिया द्वारा प्रश्नो का फलाफल अवगत करना चाहिये।

ग्रन्थ का बहिरंग रूप

उपयोगीप्रश्न–पृच्छक से किसी फल का नाम पूछना तथा कोई एक अकसंख्या पूछने के पश्चात् अंकसंख्या को द्विगुणा कर फल और नाम के अक्षरों की सख्या जोड़ देनी चाहिये। जोड़ने के पश्चात् जो योग संख्या आवे, उसमें १३ जोड़कर योग में नौ का भाग देना चाहिये। १ शेष में धनवृद्धि, २ में धनक्षय, ३ में आरोग्य, ४ में व्याधि, ५ में स्त्री लाभ, ६ में बन्धुनाश, ७ में कार्यसिद्धि, ८ में मरण और ९ में राज्यप्राप्ति होती है।

कार्यसिद्धि-असिद्धि का प्रश्न–पृच्छक का मुख जिस दिशा में हो उस दिशा की अंक संख्या (पूर्व १, पश्चिम २, उत्तर ३, दक्षिण ४), प्रहर संख्या (जिस प्रहर में प्रश्न किया गया है उसकी संख्या, तीन-तीन घण्टे का एक प्रहर होता है। प्रातःकाल सूर्योदय से तीन घंटे तक प्रथम प्रहर, आगे तीन तीन घंटे पर एक-एक प्रहर की गणना कर लेनी चाहिये।), वार संख्या (रविवार १, सोमवार २, मंगलवार ३, बुधवार ४, बृहस्पति ५, शुक्र ६, शनि ७) और नक्षत्र संख्या (अश्विनी १, भरणी २, कृत्तिका ३ इत्यादि गणना) को जोड़ कर योगफल में आठ का भाग देना चाहिये। एक अथवा पाँच शेष रहे तो शीघ्र कार्य-सिद्धि; छः अथवा चार शेष में तीन दिन में कार्यसिद्धि; तीन अथवा सात शेष में विलम्ब से कार्यसिद्धि एवं एक अथवा आठ शेष में कार्य-असिद्धि होती है।

पृच्छक से एक से लेकर एक सौ आठ अंक के बीच की एक अंकसंख्या पूछनी चाहिये। इस अंकसंख्या में १२ का भाग देने पर १।७।९ शेष बचे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि, ८।४।१०।५ शेष में कार्यनाश एवं २।६।११।० शेष में शीघ्र कार्यसिद्धि होती है।

३—पृच्छक से किसी फूल का नाम पूछ कर उसकी स्वर संख्या को व्यञ्जन संख्या से गुणा कर दे; गुणनफल में पृच्छक के नाम के अक्षरो की संख्या जोड़कर योगफल में ९ का भाग दे। एक शेष में शीघ्र कार्यसिद्धि; २।५।० में विलम्ब से कार्यसिद्धि और ४।६।८ शेष में कार्यनाश तथा अवशिष्ट शेष में कार्य मन्दगति से होता है।

४—पृच्छक के नाम के अक्षरो को दो से गुणाकर गुणनफल में ७ जोड़ दे। इस योग में ३ का भाग देने पर सम शेष में कार्यनाश और विषम शेष में कार्यसिद्धि फल कहना चाहिये।

५—पृच्छक से एक से लेकर नौ तक की अंकसख्या में से कोई भी अंक पूछना चाहिए। बतायी गयी अंक संख्या को उस के नाम की अक्षरसंख्या से गुणा कर देना चाहिए। इस गुणनफल में तिथिसंख्या और प्रहरसंख्या जोड़ देनी चाहिए। तिथि की गणना शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से होती है, अतः शुक्लपक्ष की प्रतिपदा की सख्या १, द्वितीया की २ इसी प्रकार अमावस्या की ३० सख्या मानी जाती है। वार संख्या रविवार को १, सोमवार को २, मंगल को ३ इसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शनि को ७ मानी जाती है। उपर्युक्त योग सख्या में ८ का भाग देने पर ०।७।१ शेष में कार्य असिद्धि, मतान्तर से ७।१ में विलम्ब से सिद्धि, २।६।४ शेष में सिद्धि, ३।५ शेष में कुछ विलम्ब से सिद्धि होती है।

६—निम्न चक्र बनाकर पृच्छक से अंगुली रखवाना चाहिए। यदि पृच्छक ८।२ अंक पर अंगुली रखे तो कार्याभाव, ४।६ पर अंगुली रखे तो कार्यसिद्धि, ७।३ पर अगुली रखे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि एवं १।५।९ पर अंगुली रखे तो शीघ्र ही कार्यसिद्धि फल कहना चाहिए।

७—पृच्छक यदि ऊपर को देखता हुआ प्रश्न करे तो कार्यसिद्धि और जमीन की ओर देखता हुआ प्रश्न करे तो कार्य की असिद्धि होती है। अपने शरीर को खुजलाता हुआ प्रश्न करे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि; जमीन खरोचता हुआ प्रश्न करे तो कार्य असिद्धि एव इधर-उधर देखता हुआ प्रश्न करे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि होती है।

८—मेष, मिथुन, कन्या और मीन लग्न में प्रश्न किया गया हो तो कार्यसिद्धि, तुला, कर्क, सिंह और वृष लग्न में प्रश्न किया हो तो विलम्ब से सिद्धि एव वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ लग्न में प्रश्न किया गया हो तो प्रायः असिद्धि, मतान्तर से धनु और कुम्भ लग्न में कार्यसिद्धि होती है। मकर लग्न में प्रश्न करने पर कार्य सिद्धि नहीं होती। लग्न के अनुसार प्रश्न का विचार करने पर ग्रह दृष्टि का विचार कर लेना भी आवश्यक सा है। अतः दशम भाव और पञ्चम भाव के सम्बन्ध का विचार कर फल कहना चाहिये।

९—पिण्ड बनाकर इस ग्रन्थ के विवेचन में २३ वें पृष्ठ पर प्रतिपादित विधि से कार्यसिद्धि के प्रश्नों का विचार करना चाहिये।

लाभालाभ प्रश्न—पृच्छक से एक से लेकर इक्यासी तक की अक संख्या में से कोई एक अंकसंख्या पूछनी चाहिये। उसकी अंकसख्या को २ से गुणा कर नाम के अक्षरो की संख्या जोड़ देनी चाहिये। इस योगफल में ३ का भाग देने पर दो शेष में लाभ, एक शेष में अल्प लाभ, कष्ट अधिक और शून्य शेष में हानि फल कहना चाहिये।

२—लाभालाभ के प्रश्न में पृच्छक से किसी नदी का नाम पूछना चाहिये। यदि नदी के नाम के आद्यक्षर में अ इ ए ओ मात्राएँ हो तो बहुत लाभ; आ ई ऐ औ मात्राएँ हों तो अल्प लाभ एवं उ ऊ अं अः ये मात्राएँ हों तो हानि फल कहना चाहिये।

३—पृच्छक के नामाक्षर की मात्राओ को नामाक्षर के व्यञ्जनों से गुणाकर दो का भाग देना चाहिये। एक में लाभ और शून्य शेष में हानि फल समझना चाहिये।

४—पृच्छक के प्रश्नाक्षरों से आलिङ्गितादि संज्ञाओं में जिस संज्ञा की मात्राएँ अधिक हों, उन्हें तीन स्थानों में रखकर एक जगह आठ से, दूसरी जगह चौदह से और तीसरी जगह चौबीस से गुणाकर तीनों

गुणनफल राशियों में सात का भाग देना चाहिये। यदि तीनों स्थानों में सम शेष बचे तो अपरिमित लाभ; दो स्थानों में सम शेष और एक स्थान में विषम शेष बचे तो साधारण लाभ और एक स्थान में सम शेष तथा अन्य दो स्थानों में विषम शेष रहें तो अल्प लाभ होता है। तीनों स्थानों में विषम शेष रहने से निश्चित हानि होती है।

चोरी गई वस्तु की प्राप्ति का प्रश्न—पृच्छक जिस दिन पूछने आया हो उस तिथि की संख्या, वार संख्या, नक्षत्र संख्या और लग्न संख्या (जिस लग्न में प्रश्न किया हो उसकी संख्या, ग्रहण करनी चाहिये। मेष में १, वृष में २, मिथुन में ३, कर्क में ४ आदि) को जोड़ देना चाहिये। इस योगफल में तीन और जोड़ कर जो सख्या आवे उसमें पाँच का भाग देना चाहिये। एक शेष बचे तो चोरी गई वस्तु पृथ्वी में, दो बचे तो जल में, तीन बचे तो आकाश में (ऊपर किसी स्थान पर रक्खी हुई), चार बचे तो राज्य में (राज्य के किसी कर्मचारी ने ली है) और पाँच बचे तो ऊबड़ खाबड़ जमीन में नीचे खोदकर रखी हुई कहना चाहिये।

पृच्छक के प्रश्न पूछने के समय स्थिर लग्न—वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ हो तो चोरी गयी वस्तु घर के समीप; चर लग्न—मेष, कर्क, तुला, मकर हों तो चोरी गई वस्तु घर से दूर किसी बाहरी आदमी के पास; द्विस्वभाव—मिथुन, कन्या, धनु, मीन हो तो कोई सामान्य परिचित नौकर, दासी आदि चोर होता है। यदि लग्न में चन्द्रमा हो तो चोरी गयी वस्तु पूर्व दिशा में, दशम में चन्द्रमा हो तो दक्षिण दिशा में, सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो तो पश्चिम दिशा में और चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा हो तो खोयी वस्तु अथवा चोर का निवासस्थान उत्तर दिशा में जानना चाहिये। लग्न पर सूर्य और चन्द्रमा दोनों की दृष्टि हो तो अपने ही घर का चोर होता है।

पृच्छक की मेष लग्न राशि हो तो ब्राह्मण चोर, वृष हो तो क्षत्रिय चोर, मिथुन हो तो वैश्य चोर, कर्क हो तो शूद्र चोर, सिंह हो तो अन्त्यज चोर, कन्या हो तो स्त्री चोर, तुला हो तो पुत्र, भाई अथवा मित्र चोर, वृश्चिक हो तो सेवक चोर, धनु हो तो भाई अथवा स्त्री चोर, मकर हो तो वैश्य चोर, कुम्भ हो तो चूहा चोर और मीन लग्न राशि हो तो पृथ्वी के नीचे चोरी गयी वस्तु होती है। चरलग्न-मेष, कर्क, तुला, मकर हों तो चोरी गयी वस्तु किसी अन्य स्थान पर, स्थिर, वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ हो तो उसी स्थान पर (घर के भीतर ही) चोरी गयी वस्तु और द्विस्वभाव—मिथुन, कन्या, धनु, मीन हो तो घर के आस-पास बाहर कहीं चोरी गयी वस्तु होती है। मेष, कर्क, तुला और मकर लग्न राशियों के होने पर चोर का नाम दो अक्षर का; वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ राशियों के होने पर चोर का नाम चार अक्षरों का एव मिथुन, कन्या, धनु और मीन लग्न राशियों के होने पर चोर का नाम तीन अक्षरो का होता है।

अन्ध संज्ञक नक्षत्रों में वस्तु की चोरी हुई हो तो शीघ्र मिलती है। मन्दलोचन संज्ञक नक्षत्रों में चोरी गयी वस्तु प्रयत्न करने से मिलती है। मध्यलोचन संज्ञक नक्षत्रो में चोरी गयी या खोयी हुई वस्तु का पता बहुत दिनों में लगता है। सुलोचन संज्ञक नक्षत्रों में चोरी गयी वस्तु कभी नहीं मिलती। अन्ध नक्षत्रो में चोरी गयी या खोयी हुई हुई वस्तु पूर्व दिशा में; काण संज्ञक नक्षत्रों में दक्षिण दिशा में; चिपट संज्ञक नक्षत्रों में पश्चिम दिशा में एवं सुलोचन संज्ञक नक्षत्रों में चोरी गयी वस्तु उत्तर दिशा में होती है। मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रो में खोयी वस्तु घर के भीतर; हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रो में खोयी वस्तु घर से दूर—४,७,१०,२५,३०, ४५,१७,२१,३४,४३, २३ और २४ कोश की दूरी पर; शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रों में खोयी वस्तु घर में या घर के आस-पास पड़ोस में ५० गज की दूरी पर एव कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रों में खोयी वस्तु बहुत दूर चली जाती है और कभी नहीं मिलती।

अन्ध-मन्दलोचनादि नक्षत्र संज्ञा बोधक चक्र

रो०	पुष्य	उफा०	वि०	पूषा०	ध०	रे०	अन्ध लोचन
मृ०	आश्ले०	ह०	अनु०	उषा०	श०	अ०	मन्दलोचन या चिपटलोचन
आ०	म०	चि०	ज्ये०	अभि०	पूभा०	भ०	मध्यलोचन या काणलोचन
पुन०	पूफा०	स्वा०	मू०	श्र०	उभा०	कृ०	सुलोचन

यदि प्रश्नकर्त्ता कपड़ों के भीतर हाथ छिपा कर प्रश्न करे तो घर का ही चोर, और बाहर हाथ कर प्रश्न करे तो बाहर के व्यक्ति को चोर समझना चाहिए। चोर का स्वरूप, आयु, कद एव अन्य बातें अवगत करने के लिये इस ग्रन्थ का ४५वाँ पृष्ठ तथा योनि विचार प्रकरण देखना चाहिए।

प्रवासी-आगमन सम्बन्धी प्रश्न—प्रश्नाक्षरों की संख्या को ११से गुणा कर देना चाहिये। इस गुणनफल में ८ जोड़ देने पर जो योगफल आवे उसमें ७ से भाग देना चाहिये। एक शेष रहने पर परदेशी परदेश में सुख पूर्वक निवास करता है; दो में आने की चिन्ता करता है, तीन शेष में रास्ते में आता है, चार शेष में गाँव के पास आया हुआ होता है, पाँच शेष में परदेशी व्यर्थ इधर उधर मारा-मारा घूमता रहता है, छः शेष में कष्ट में रहता है और सात शेष में रोगी अथवा मृत्यु शय्या पर पड़ा रहता है।

२—प्रश्नाक्षर संख्या को छः से गुणा कर, गुणनफल में आठ जोड़ देना चाहिये। इस योगफल में सात से भाग देने पर यदि एक शेष रहे तो परदेशी की मृत्यु, दो शेष रहने पर धनधान्य से पूर्ण सुखी, तीन शेष रहने पर कष्ट में, चार शेष रहने पर आने वाला, पाँच शेष रहने पर शीघ्र आने वाला, छः शेष रहने पर रोग से पीड़ित तथा मानसिक सन्ताप से दग्ध एव सात शेष में प्रवासी का मरण या महा कष्ट फल कहना चाहिये।

३—प्रश्नाक्षर सख्या को छः से गुणा कर, उसमें एक जोड़ दे। योगफल में सात का भाग देने पर एक शेष रहे तो प्रवासी आधे मार्ग में; दो शेष रहे तो घर के समीप, तीन शेष रहे तो घर पर, चार शेष रहे तो सुखी, धन-धान्य पूर्ण; पांच शेष रहे तो रोगी; छः शेष रहे तो पीड़ित एव सात अर्थात् शून्य शेष रहने पर आने के लिये उत्सुक रहता है।

गर्भिणी को पुत्र या कन्या प्राप्ति का प्रश्न—जब यह पूछने के लिये पृच्छक आवे कि अमुक गर्भवती स्त्री को पुत्र होगा या कन्या तो गर्भिणी के नाम के अक्षर संख्या में वर्तमान तिथि तथा पन्द्रह जोड़कर नौ का भाग देने से यदि सम अंक शेष रहे तो कन्या और विषम अंक शेष रहे तो पुत्र होता है।

२—पृच्छक की प्रश्न तिथि को शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से गिनकर तिथि, प्रहर, वार, नक्षत्र का योग कर देना चाहिये। इस योगफल में से एक घटा कर सात का भाग देने से विषम अंक शेष रहने पर पुत्र और सम अंक शेष रहने पर कन्या होती है।

३—पृच्छक के तिथि, वार, नक्षत्र में गर्भिणी के अक्षरों को जोड़कर सात का भाग देने से एक आदि शेष में रविवार आदि होते हैं। रवि, भौम और गुरुवार निकलें तो पुत्र, शुक्र, चद्र और बुधवार निकलें तो कन्या एव शनिवार आवे तो गर्भस्राव अथवा उत्पत्ति के अनन्तर सन्तान की मृत्यु होती है।

४—गर्भिणी के नाम के अक्षरों में २० का अङ्क, पूछने की तिथि (शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से एकादि गणना कर) तथा ५ जोड़ कर जो योग आवे उसमें से एक घटा कर नौ का भाग देने पर सम अङ्क शेष रहे तो कन्या और विषम अंक शेष रहे तो पुत्र होता है।

५—गर्भिणी के नाम के अक्षरों की संख्या को तिगुना कर स्थान (जिस गाँव में रहती हो, उसके नाम) की अक्षर संख्या, पूछने के दिन की तिथिसंख्या तथा सात और जोड़कर सबका योग कर लेना चाहिये। इस योगफल में आठ का भाग देने पर सम शेष बचे तो कन्या और विषम बचे तो पुत्र होता है।

रोगीप्रश्न—रोगी के रोग का विचार प्रश्नकुण्डली[1] में सप्तम भाव से करना चाहिये। यदि सप्तम भाव में शुभ ग्रह हो तो जल्द रोग शान्त होता है, और अशुभ ग्रह हो तो विलम्ब से रोग शान्त होता है।

१—रोगी के नाम के अक्षरों को तीन से गुणाकर ४ युक्त करे, जो योगफल आवे उसमें तीन का भाग दे। एक शेष रहे तो जल्द आरोग्य लाभ, दो शेष में बहुत दिन तक रोग रहता है और शून्य शेष में मृत्यु होती है। प्रश्नकुण्डली में अष्टम स्थान में शनि, राहु, केतु और मंगल हो तो भी रोगी की मृत्यु होती है।

मुष्टिप्रश्न—प्रश्न के समय मेष लग्न हो तो मुट्ठी में लाल रंग की वस्तु, वृष लग्न हो तो पीले रंग की वस्तु, मिथुन हो तो नीले रंग की वस्तु, कर्क हो तो गुलाबी रंग की, सिंह हो तो धूम्र वर्ण की, कन्या में नीले वर्ण की, तुला में पीले वर्ण की, वृश्चिक में लाल, धनु में पीले वर्ण की, मकर और कुम्भ में कृष्ण वर्ण की और मीन में पीले रंग की वस्तु होती है। इस प्रकार लग्नेश के अनुसार वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादन करना चाहिये।

मूकप्रश्न—प्रश्न के समय मेष लग्न हो तो प्रश्नकर्त्ता के मन में मनुष्यो की चिन्ता, वृष लग्न हो तो चौपायों की, मिथुन हो तो गर्भ की, कर्क हो तो व्यवसाय की, सिंह हो तो अपनी, कन्या हो तो स्त्री की, तुला हो तो धन की, वृश्चिक हो तो रोग की, धनु हो तो शत्रु की, कुम्भ हो तो स्थान और मीन हो तो देव-सम्बन्धी चिन्ता जाननी चाहिये।

मुकद्दमा सम्बन्धी प्रश्न—प्रश्न लग्न लग्नेश, दशम-दशमेश तथा पूर्णचन्द्र बलवान्, शुभ ग्रहों से युक्त, दृष्ट होकर परस्पर मित्र तथा 'इत्थशाल' आदि योग करते हों और सप्तम-सप्तमेश तथा चतुर्थ चतुर्थेश हीन बली होकर 'मणऊ' आदि अनिष्ट योग करते हो तो प्रश्नकर्त्ता को मुकद्दमे में यशपूर्वक विजय लाभ होता है।

२—पापग्रह लग्न में हों तो पृच्छक की विजय होती है। यदि लग्न और सप्तम इन दोनो में पाप ग्रह हों तो पृच्छक की विशेष प्रयत्न करने पर विजय होती है।

३—प्रश्न लग्न में सूर्य और अष्टम भाव में चन्द्रमा हो तथा इन दोनों पर शनि मंगल की दृष्टि हो तो पृच्छक की निश्चय हार होती है।

४—यदि बुध, गुरु, सूर्य और शुक्र क्रमशः प्रश्नकुण्डली में ५।४।१।१० में हो और शनि मंगल लाभ स्थान में हो तो मुकद्दमे में विजय मिलती है।

५—पृच्छक के प्रश्नाक्षरो को पाँच से गुणा कर गुणनफल में तिथि, वार, नक्षत्र, प्रहर की संख्या जोड़ देनी चाहिये। योगफल में सात का भाग देने पर एक शेष में सम्मानपूर्वक विजय लाभ, दो में पराजय, तीन में कष्ट से विजय, चार शेष में व्ययपूर्वक विजय, पाँच शेष में व्यय सहित पराजय, छः शेष में पराजय और शून्य शेष में प्रयत्न पूर्वक विजय मिलती है।

६—पृच्छक से किसी फूल का नाम पूछकर उसके स्वरों को व्यञ्जन संख्या से गुणाकर तीन का भाग देने पर दो शेष में विजय और एक तथा शून्य शेष में पराजय होती है।

ग्रन्थकार

इस ग्रन्थ के रचयिता समन्तभद्र बताये गये हैं। ग्रन्थकर्त्ता का नाम ग्रन्थ के मध्य या किसी प्रशस्ति-वाक्य में नहीं आया है। प्रारम्भ में मङ्गलाचरण भी नहीं है। अन्त में प्रशस्ति भी नहीं आयी है, जिससे ग्रन्थकर्त्ता के नाम का निर्णय किया जा सके तथा उस के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त की जा सके। केवल

१—प्रश्नकुण्डली बनाने की विधि इसी ग्रन्थ के प्रारम्भ में दी गयी है। अथवा परिशिष्ट में दी गयी जन्मकुण्डली की विधि से प्रश्नकुण्डली का निर्माण करना चाहिये।

ग्रन्थारम्भ में लिखा है—'श्रीसमन्तभद्रविरचितकेवलज्ञानप्रश्नचूडामणिः'। मूडबिद्री से प्राप्त ताड़पत्रीय प्रति के अन्त में भी 'समन्तभद्रविरचित केवलज्ञानप्रश्नचूडामणिः समाप्तः' ऐसा उल्लेख मिलता है। अतः यह निर्विवादरूप से स्वीकार करना पड़ता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता समन्तभद्र ही हैं।

यह समन्तभद्र कौन हैं? इन्होंने अपने जन्म से किस स्थान को कब सुशोभित किया है, इन के गुरु कौन थे? इन्होंने कितने ग्रन्थों का निर्माण किया है? आदि बातों के सम्बन्ध में निश्चितरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। समन्तभद्र नाम के कई व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने जैनागम की श्रीवृद्धि करने में सहयोग दिया है। तार्किक शिरोमणि सुप्रसिद्ध श्री स्वामी समन्तभद्र तो इस ग्रन्थ के रचयिता नहीं है। हाँ, एक समन्तभद्र जो अष्टाङ्गनिमित्तज्ञान और आयुर्वेद के पूर्ण ज्ञाता थे, जिन्होंने साहित्य शास्त्र का पूर्ण परिज्ञान प्राप्त किया था, इस शास्त्र के रचयिता माने जा सकते हैं।

प्रतिष्ठातिलक में कविवर नेमिचन्द्र ने जो अपनी वंशावली बतायी है, उससे केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि के रचयिता के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है। वंशावली में बताया गया है कि कर्मभूमि के आदि में भगवान् ऋषभदेव के पुत्र श्री भरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मण नाम की जाति बनायी। इस जाति के कुछ विवेकी, चारित्रवान्, जैनधर्मानुयायी ब्राह्मण कांची नाम के नगर में रहते थे। इस वंश के लोग देवपूजा, गुरुवन्दना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन षट् कर्मों में प्रवीण थे, श्रावक की ५३ क्रियाओं का भली भाँति पालन करते थे। इस वंश के ब्राह्मणों को विशारवाचार्य ने उपासकाध्ययनाङ्ग की शिक्षा दी थी, जिससे वे श्रावकाचार का पालन करने में तनिक भी त्रुटि नहीं करते थे। जैनधर्म में उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी; राजा महाराजाओं द्वारा स्तुत्य थे। इस वंश के निर्मलबुद्धि वाले कई ब्राह्मणों ने दिगम्बरीय दीक्षा धारण की थी। इस प्रकार इस कुल में व्रतपालन करने वाले अनेक ब्राह्मण हुए।

कालान्तर में इसी कुल में भट्टाकलंक स्वामी हुए। इन्होंने अपने वचनरूपी वज्र द्वारा वादियों के गर्व रूपी पर्वत को चूर-चूर किया था। इनके ज्ञान की यशोपताका दिग्दिगन्त में फहरा रही थी। इसके पश्चात् इसी वंश में सिद्धान्तपारगामी, सर्वशास्त्रोपदेशक इन्द्रनन्दी नाम के आचार्य हुए। अनन्तर इस वंश में अनन्तवीर्य नाम के मुनि हुए। यह अकलंक स्वामी के कार्यों को प्रकाश में लाने के लिये दीपवर्त्तिका के समान थे। पश्चात् इस वंश रूपी पर्वत पर वीरसेन नामक सूर्य का उदय हुआ, जिसके प्रकाश से जैनशासन रूपी आकाश प्रकाशित हुआ।

इस वंश में आगे जिनसेन, वादीभसिंह, हस्तिमल्ल, परवादिमल्ल आदि कई नरपुंगव हुए; जिन्होंने जैन शासन की प्रभावना की। पश्चात् इस वंश में ऐसे बहुत से ब्राह्मण हुए, जिन्होंने श्रावकाचार या मुनि आचार का पालन कर अपना आत्मकल्याण किया था।

आगे इस वंश में लोकपालाचार्य नामक विद्वान् हुए। यह गृहस्थाचार्य थे, फिर भी संसार से विरक्त रहा करते थे। इनका सम्मान चोल राजा करते थे। यह किसी कारण कांची को छोड़ कर बन्धु-बान्धव सहित कर्नाटक देश में आकर रहने लगे। इनका पुत्र तर्कशास्त्र का पारगामी, कुशाग्रबुद्धि समयनाथ नाम का था। समयनाथ का पुत्र कविशिरोमणि, आशुकवि कविराजमल्ल नाम का था। इसका चतुर विद्वान् पुत्र चिन्तामणि नाम का था। चिन्तामणि का पुत्र षट्वाद में निपुण अनन्तवीर्य नाम का हुआ। इसका पुत्र संगीतशास्त्र में निपुण पार्श्वनाथ नाम का हुआ। पार्श्वनाथ का पुत्र आयुर्वेद में प्रवीण आदिनाथ नामक हुआ। इसका पुत्र धनुर्विद्या में प्रवीण ब्रह्मदेव नाम का हुआ। इसका पुत्र देवेन्द्र नाम का हुआ। यह देवेन्द्र संहिता शास्त्र में निपुण, कलाओं में प्रवीण, राजमान्य, जिनधर्माराधक, त्रिवर्गलक्ष्मी सम्पन्न और बन्धुवत्सल था। इसकी स्त्री का नाम आदिदेवी था। इस आदिदेवी के पिता का नाम विजयप और माता का नाम श्रीमती था। आदिदेवी के ब्रह्मसूरि, चन्द्रपार्य और पार्श्वनाथ ये तीन भाई थे। देवेन्द्र और आदिदेवी के आदिनाथ, नेमिचन्द्र और विजयप ये तीन पुत्र हुए। आदिनाथ संहिताशास्त्र में पारगामी था, इसके त्रैलोक्यनाथ और जिनचन्द्र नाम के दो पुत्र हुए।

विजयप ज्योतिषशास्त्र का पारगामी था। इस विजयप का साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों का ज्ञाता समन्तभद्र नाम का पुत्र था। केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि का कर्त्ता यही समन्तभद्र मुझे प्रतीत होता है। ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान इन्हें परम्परागत भी प्राप्त हुआ होगा। विजयप के ग्रन्थ भी चन्द्रोन्मीलन प्रणाली पर हैं। आयसद्भाव में विजयप का नाम भी आया है। प्रतिष्ठातिलक में समन्तभद्र का उल्लेख निम्न प्रकार हुआ है—

धीमान् विजयपाख्यस्तु ज्योतिःशास्त्रादिकोविदः।
समन्तभद्रस्तत्पुत्रः साहित्यरससान्द्रधीः॥

प्रतिष्ठातिलक के उक्त कथन का समर्थन कल्याणकारक की प्रशस्ति से भी होता है। इस प्रशस्ति में समन्तभद्र को अष्टाङ्ग आयुर्वेद का प्रणेता बतलाया है। मेरा अनुमान है कि यह समन्तभद्र आयुर्वेद के साथ ज्योतिष शास्त्र के भी प्रणेता थे। इन्होने अपने पिता विजयप से ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया था। कल्याणकारक के रचयिता उग्रादित्य ने कहा है—

अष्टाङ्गमप्यखिलमत्र समन्तभद्रैः प्रोक्तं सविस्तरवचोविभवैर्विशेषात्।
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्त्या कल्याणकारकमशेषपदार्थयुक्तम्॥

सेनगण की पट्टावली में तथा श्रवणबेल्गोल के शिलालेखो में भी समन्तभद्र नाम के दो-तीन विद्वानों का उल्लेख मिलता है। परन्तु विशेष परिचय के बिना यह निर्णय करना बहुत कठिन है कि इस ग्रन्थ के रचयिता समन्तभद्र कौन से हैं? वंशपरम्परा को देखते हुए प्रतिष्ठातिलक के रचयिता नेमिचन्द्र के भाई विजयप के पुत्र समन्तभद्र ही प्रतीत होते हैं। शृंगारार्णवचन्द्रिका में भी विजयवर्णी ने एक समन्तभद्र का महाकवीश्वर के रूप में उल्लेख किया है; पर यह समन्तभद्र प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता नहीं जँचते। यह तो आयुर्वेद और ज्योतिष के ज्ञाता उक्त समन्तभद्र ही हो सकते हैं।

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि का रचनाकाल

इस ग्रन्थ में इसके रचनाकाल का कहीं भी निर्देश नहीं है। अनुमान के आधार पर ही इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में कुछ भी कहा जा सकता है। चन्द्रोन्मीलनप्रश्नप्रणाली का प्रचार ९ वीं शती से लेकर १३-१४ वीं शती तक रहा है। यदि विजयप के पुत्र समन्तभद्र को इस ग्रन्थ का रचयिता मान लेते हैं तो इसका रचना समय १३ वीं शती का मध्य भाग होना चाहिये। विजयप के भाई नेमिचन्द्र ने प्रतिष्ठातिलक की रचना आनन्द नाम के संवत्सर में चैत्र मास की पञ्चमी को की है। इस आधार पर इसका रचनाकाल १३ वीं शती होता है। केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि में जो प्राचीन गाथाएँ उद्धृत की गयीं हैं, उनके मूल ग्रन्थ का पता कहीं भी नहीं लगता है। पर उनकी विषयप्रतिपादन शैली ९-१० शती से पीछे की प्रतीत नहीं होती है। प्रतिष्ठातिलक में दी गयी प्रशस्ति के आधार पर विजयप का समय १२ वीं शती आता है।

दक्षिणभारत में चन्द्रोन्मीलनप्रश्नप्रणाली का प्रचार ४-५ सौ वर्ष तक रहा है। यह ग्रन्थ इस प्रणाली का विकसित रूप है। इसमें च-त-य-क-ट-प-श-वर्ग पञ्चाधिकार का निरूपण किया गया है। यह विषय १०-११ वीं शती में स्वतन्त्र था। सिंहावलोकन, गजावलोकन, नद्यावर्त, मण्डूकप्लवन, अश्वमोहित इन पाँच परिवर्तनशील दृष्टियों द्वारा चवर्ग, तवर्ग, यवर्ग, कवर्ग, टवर्ग, पवर्ग और शवर्गों को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार कोई भी वर्ग उक्त क्रमों द्वारा दूसरे वर्ग को प्राप्त हो जाता है। १०-११ वीं शती में यह विषय संहिता शास्त्र के अन्तर्गत था तथा गणित द्वारा इसका विचार होता था। १२ वीं शताब्दी में इसका समावेश प्रश्नशास्त्र के भीतर किया गया है तथा प्रश्नाक्षरों पर से ही उक्त दृष्टियों का विचार भी होने

लग गया है। ९ वीं शताब्दी के ज्योतिष के विद्वान् गर्गाचार्य ने सर्वप्रथम वर्गपञ्चक को परिवर्तनशील दृष्टियों का रूप प्रदान कर चन्द्रोन्मीलनप्रश्नप्रणाली में स्थान दिया। गर्गाचार्य के समय में चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली में केवल पञ्चवर्ग सम्बन्धी असयुक्त, सयुक्त, अभिहत आदि आठ संज्ञावाली विधि ही थी। उस समय केवल वाचिक प्रश्नों के उत्तर ही इस प्रणाली द्वारा निकाले जाते थे। मूक प्रश्नों के लिये 'पाशा-केवली' प्रणाली थी। इस प्रणाली के आद्य आविष्कर्त्ता गर्गाचार्य ही हैं। इनका पाशाकेवली अंक प्रणाली पर है तथा मूकप्रश्नों का उत्तर निकालने के लिये इसका प्रवर्तन किया गया था। ११ वीं शती में मूक प्रश्नों के निकालने का बड़ा भारी रिवाज था। उस समय इनके निकालने की तीन विधियाँ प्रचलित थीं—(१) मन्त्रसाधना (२) स्वरसाधना (३) अष्टागनिमित्तज्ञान। इन तीनों प्रणालियों का जैन सम्प्रदाय में प्रचार था। गर्गाचार्य ने पाशाकेवली के आदि में "ॐ नमो भगवती कूष्माण्डिनी सर्वकार्यप्रसाधिनी सर्व निमित्तप्रकाशिनी ऐह्येहि २ वरदेहि २ हलि २ मातङ्गिनी सत्यं ब्रूहि २ स्वाहा" इस मन्त्र को सात वार पढ़ कर मुख से "सत्य वद, मृषा परिहारय" कहते हुए तीन वार पाशा डालने का विधान बताया है। इससे सिद्ध है कि मन्त्रसाधना द्वारा ही पाशे से फल कहा जाता था। प्रथम संख्या १११ का फल बताया है "इस प्रश्न का फल बहुत शुभ है, तुम्हारे दिन अच्छी तरह व्यतीत होंगे। तुमने मन में विलक्षण बात विचार रक्खी है वह सिद्ध होगी। तुम्हारे मन में व्यापार और युद्ध सम्बन्धी चिन्ता है, वह शीघ्र दूर होगी।

स्वरसाधना का निरूपण भी गर्गाचार्य ने किया है। यह स्वरसाधना उत्तरकालीन स्वर विज्ञान से भिन्न थी। यह एक यौगिक प्रणाली थी, जिसका ज्ञान एकाध ऋषि मुनि को ही था। स्वर विज्ञान का प्रचार १३ वीं सदी के उपरान्त हुआ प्रतीत होता है। अष्टाङ्गनिमित्त ज्ञान का प्रचार बहुत पहले से था और ९-१० वीं शताब्दी में इसका बहुत कुछ भाग लुप्त भी हो गया था।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि मूक प्रश्न, मुष्टिका प्रश्न एव लूका प्रश्न आदि का विश्लेषण चन्द्रोन्मीलन प्रश्न प्रणाली में १२ वीं शती से आया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में मूक प्रश्नो का विश्लेषण योनिज्ञान विवरण द्वारा किया गया है, अतः यह निश्चित है कि यह ग्रन्थ १२ वीं शताब्दी के बाद का है।

चन्द्रोन्मीलन प्रश्न प्रणाली का अन्त १४ वीं शती में हो जाता है। इसके पश्चात् इस प्रणाली में रचना होना बिल्कुल बन्द हो गया प्रतीत होता है। १४ वीं शती के पश्चात् रमल प्रणाली, प्रश्नलग्नप्रणाली, स्वर विज्ञान तथा केरल प्रश्नप्रणाली का प्रचार और विकास होने लग गया था। १४ वीं शती के प्रारम्भ में लग्नप्रणाली का दक्षिण भारत में भी प्रचार दिखलायी पड़ता है अतः यह सुनिश्चित है कि केवलज्ञानप्रश्न-चूड़ामणि का रचना काल १२ वीं शताब्दी के पश्चात् और १४ वीं शताब्दी के पहले है। इस ग्रन्थ में रच-यिता ने ग्रन्थकारोक्त जो शवर्ग चक्र दिया है, उससे सिद्ध हैं, कि जब कोई भी वर्ग परिवर्तनशील दृष्टियों द्वारा अन्य वर्ग को प्राप्त हो जाता है तो उसका फलादेश दृष्टिक्रम के अनुसार अन्यवर्ग सम्बन्धी हो जाता है। इस प्रकार का विषय सुधार चन्द्रोन्मीलन प्रणाली में १३ वीं शती में आया हुआ जचता है। इस प्रणाली के प्रारम्भिक ग्रन्थों में इतना विकास नहीं है। अतः विषयनिरूपण की दृष्टि से इस ग्रन्थ का रचना काल १३ वीं शताब्दी है।

रचनाशैली के विचार से आरम्भ में पाँच वर्गों का निरूपण कर अष्ट संख्याओं द्वारा सीधे-सादे ढंग से बिना भूमिका बांधे प्रश्नों का उत्तर प्रारम्भ कर दिया गया है। इस प्रकार की सूत्ररूप प्रणाली ज्योतिष शास्त्र में ११-१२ वीं सदी में खूब प्रचलित थी। कई श्लोकों में जिस बात को कहना चाहिये, उसी को एक छोटे से गद्य टुकड़े में—वाक्य में कह दिया गया है। इस प्रकार के ग्रन्थ दक्षिण भारत में ज्यादे लिखे जाते थे। अतः रचनाशैली की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ १२ वीं या १३ वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। ग्राम्य और अग्राम्य योनि का जो साङ्गोपाङ्ग विवेचन इस ग्रन्थ में है, उससे भी यही कहा जा सकता है कि यह १३ वीं शताब्दी से बाद का बनाया हुआ नहीं हो सकता।

आत्मनिवेदन

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि का अनुवाद तथा विस्तृत विवेचन अनेक ज्योतिष ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। विवेचनों में ग्रन्थ के स्पष्टीकरण के साथ-साथ अनेक विशेष बातों पर प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ को एक बार सन् १९४२ में आद्योपान्त देखा था, उसी समय इसके अनुवाद करने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। श्री जैन-सिद्धान्त-भास्कर भाग ९ किरण २ में इस ग्रन्थ का परिचय भी मैंने लिखा था। परिचय को देखकर श्री बा० कामता प्रसाद जी अलीगंज ने अनुवाद करने की प्रेरणा भी पत्र द्वारा की थी: पर उस समय यह कार्य न हो सका।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी की स्थापना हो जाने पर श्रद्धेय प्रो० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य ने इसके अनुवाद तथा सम्पादन करने की मुझे प्रेरणा की। आपके आदेश तथा अनुमति से इस ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है। मूड़बिद्री के शास्त्रभण्डार से श्रीमान् पं० के० भुजबलीजी शास्त्री, शास्त्री विद्याभूषण ने ताड़पत्रीय प्रति भेजी, जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। इस प्रति की सञ्ज्ञा क० मू० रखी गयी है। यद्यपि 'भवन' की केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि की प्रति भी मूडबिद्री से ही नकल कर आई थी, पर शास्त्री जी द्वारा भेजी गयी प्रति में अनेक विशेषताएँ मिलीं। कई स्थानों में शुद्ध तथा विषय को स्पष्ट करने वाले पाठान्तर भी मिले। इस प्रति के आदि और अन्त में भी ग्रन्थकर्ता का नाम अंकित है। इस प्रति के अन्त में "इति केवलज्ञानचूडामणिः केवलज्ञानहोराज्ञानप्रदीप कन्नडः समाप्तः" लिखा है। पवर्ग शवर्ग चक्र इसी प्रति के आधार पर रखे गये हैं, क्योंकि ये दोनों चक्र इसी प्रति में शुद्ध मिले हैं। अवशेष ग्रन्थ का मूलपाठ श्री-जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा की हस्तलिखित प्रति के आधार पर रखा गया है। फुटनोट में क० मू० के पाठान्तर रखे गये हैं।

मूडबिद्री से आयी हुई ताड़पत्रीय प्रति की लिपि का वाचन मित्रवर श्री देवकुमार जी शास्त्री ने किया है, अतः मैं उनका आभारी हूँ। इस ग्रन्थ की प्रकाशन व्यवस्था श्रीमान् प्रो० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य ने की है, अतः मैं उनका विशेष कृतज्ञ हूँ। प्रूफ संशोधन पं० महादेव जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने किया है। सम्पादन में श्रीमान् पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री, गुरुवर्य पं० कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री, मित्रवर प्रो० गो० खुशालचन्द्र जी एम० ए०, साहित्याचार्य, के कई महत्वपूर्ण सुझाव मिले हैं; अतः आप महानुभावों का भी कृतज्ञ हूँ।

श्री जैन-सिद्धान्त-भवन आरा के विशाल ज्योतिष विषयक संग्रह से विवेचन एवं प्रस्तावना लिखने में सहायता मिली है, अतः भवन का आभार मानना भी अत्यावश्यक है। इस ग्रन्थ में उद्धरणों के रूप में आयी हुई गाथाओं का अर्थ विषय क्रम को ध्यान में रख कर लिखा गया है। प्रस्तुत दोनों प्रतियों के आधार पर भी गाथाएँ शुद्ध नहीं की जा सकी है। हाँ, विषय के अनुसार उनका भाव अवश्य स्पष्ट हो गया है।

सम्पादन में अज्ञानता एवं प्रमादवश अनेक त्रुटियाँ रह गयी होंगी, विज्ञ पाठक क्षमा करेंगे। इतना सुनिश्चित है कि इसके परिशिष्टों तथा भूमिका के अध्ययन से साधारण व्यक्ति भी ज्योतिष की अनेक उपयोगी बातों को जान सकेंगे, इसमें दोष नहीं हो सकते हैं।

अनन्तचतुर्दशी वि० नि० २४७५
जैनसिद्धान्तभवन, आरा

नेमिचन्द्र जैन शास्त्री,
ज्यौतिषाचार्य, साहित्यरत्न

*

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणिः
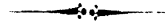
अ क च ट त प य शा वर्गाः
आ ए क च ट त प य शा वर्गा इति } प्रथमः ॥१॥
आ ऐ ख छ ठ थ फ र षा इति द्वितीयः ॥२॥
इ ओ ग ज ड द ब ल सा इति तृतीयः ॥३॥
ई औ घ झ ढ ध भ व हा इति चतुर्थः ॥४॥
उ ऊ ङ ञ ण न माः, अं अः इति पञ्चमः ॥५॥

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः एतान्यक्षराणि सर्वाणि कथकस्य वाक्यतः प्रश्नाद्वा गृहीत्वा स्थापयित्वा सुष्ठु विचारयेत् । तद्यथा—संयुक्तः, असंयुक्तः अभिहितः, अनभिहितः, अभिघातित इत्येतान् पञ्चालिङ्गिताभिधूमितदग्धांश्च त्रीन् क्रियाविशेषान् प्रश्ने तावद्विचारयेत् ।

अर्थ—अ क च ट त प य श अथवा आ ए क च ट त प य श इन अक्षरों का प्रथमवर्ग, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष इन अक्षरों का द्वितीय वर्ग; इ ओ ग ज ड द ब ल स इन अक्षरों का तृतीय वर्ग; ई औ घ झ ढ ध भ व ह इन अक्षरों का चतुर्थ वर्ग और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः इन अक्षरों का पञ्चम वर्ग होता है। इन अक्षरों को प्रश्नकर्त्ता के वाक्य या प्रश्नाक्षरों में ग्रहण कर अथवा उपर्युक्त पाँचों वर्गों को स्थापित कर प्रश्नकर्त्ता से स्पर्श कराके अच्छी तरह फलाफल का विचार करना चाहिये। संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित, अनभिहित और अभिघातित इन पाँचों का तथा आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध इन तीन क्रियाविशेषणों का प्रश्न में विचार करना चाहिये।

---

१ तुलना—चं० प्र० श्लो० ३३। "वर्गौ द्वौ विज्ञद्भिर्द्वादशमात्रासु विज्ञेयौ। कादौ सप्त च तेषां वर्णाः पञ्चाद्ययोऽङ्कवर्गाणाम्॥"—के० प्र० र० पृ० ४। प्र० कौ० पृ० ४। प्र० कु० पृ० ३। "अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ ध्वजः सूर्यः ॥१॥ क ख ग घ धूम्रः भौमः।"—ध्व० प्र० पृ० १। २ पञ्चसु वर्गेषु इतीति पाठो नास्ति क० मू०। ३ इ ओ ग ज ड ब ल स्ताः तृतीय.—क० मू०। ४ स्वरांश्च क० मू०। ५ तुलना—के० प्र० सं० पृ० ४। संयुक्तादीनां विशेषविवेचनं चन्द्रोन्मीलनप्रश्नस्यैकोनविंशतिश्लोके द्रष्टव्यम्। के० प्र० र० पृ० १२। ध्व० प्र० प० १।

विवेचन—ज्योतिष शास्त्र में बिना जन्मकुण्डली के तात्कालिक फल बतलाने के लिये तीन सिद्धान्त प्रचलित हैं—प्रश्नाक्षर-सिद्धान्त, प्रश्नलग्न-सिद्धान्त और स्वर विज्ञान-सिद्धान्त। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रश्नाक्षर सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इस सिद्धान्त का मूलाधार मनोविज्ञान है, क्योंकि बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनों प्रकार की विभिन्न परिस्थितियों के आधीन मानव मन की भीतरी तह में जैसी भावनाएँ छिपी रहती हैं वैसे ही प्रश्नाक्षर निकलते हैं। सुप्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता फ्रायडे का कथन है कि अबाधभावानुषङ्ग से हमारे मन के अनेक गुप्तभाव भावी शक्ति, अशक्ति के रूप में प्रकट हो जाते हैं तथा उनसे समझदार व्यक्ति सहज में ही मन की धारा और उससे घटित होने वाले फल को समझ लेता है। इनके मतानुसार मन की दो अवस्थाएँ हैं—सज्ञान और निर्ज्ञान। सज्ञान अवस्था अनेक प्रकार से निर्ज्ञान अवस्था के द्वारा ही नियन्त्रित होती रहती है। प्रश्नों की छान-बीन करने पर इस सिद्धान्त के अनुसार पूछने पर मानव निर्ज्ञान अवस्था विशेष के कारण ही झट उत्तर देता है और उसका प्रतिबिम्ब सज्ञान मानसिक अवस्था पर पड़ता है। अतएव प्रश्न के मूल में प्रवेश करने पर संज्ञात इच्छा, असंज्ञात इच्छा, अन्तर्ज्ञात इच्छा और निर्ज्ञात इच्छा ये चार प्रकार की इच्छाएँ मिलती हैं। इन इच्छाओं में से संज्ञात इच्छा बाधा पाने पर नाना प्रकार से व्यक्त होने की चेष्टा करती है तथा इसीके द्वारा रुद्ध या अवदमित इच्छा भी प्रकाश पाती है। यद्यपि हम सज्ञात इच्छा का प्रकाश काल में रूपान्तर जान सकते हैं, किन्तु असज्ञात या अज्ञात इच्छा के प्रकाशित होने पर भी बिना कार्य देखे उसे नहीं जान सकते। विशेषज्ञ प्रश्नाक्षरों के विश्लेषण से ही असज्ञात इच्छा का पता लगा लेते हैं। साराश यह है कि सज्ञात इच्छा प्रत्यक्षरूप से प्रश्नाक्षरों के रूप में प्रकट होती है और इन प्रश्नाक्षरों में छिपी हुई असंज्ञात और निर्ज्ञात इच्छाओ को उनके विश्लेषण से अवगत किया जाता है। अत: प्रश्नाक्षर सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक है तथा आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिष के विकसित सिद्धान्तो के समान तथ्यपूर्ण है।

प्रश्न करनेवाला आते ही जिस वाक्य का उच्चारण करे उसके अक्षरों का विश्लेषण कर प्रथम, द्वितीय इत्यादि पाँचों वर्गों में विभक्त कर लेना चाहिये, अनन्तर आगे बताई हुई विधि के अनुसार संयुक्त, असंयुक्तादि का भेद स्थापित कर फल बतलाना चाहिये। अथवा प्रश्नकर्त्ता से पहले किसी पुष्प, फल, देवता, नदी और पहाड़ का नाम पूछकर अर्थात्—प्रातःकालमें पुष्प[1] का नाम, मध्याह्न में फल का नाम, अपराह्न में—दिन के तीसरे पहर में देवता का नाम और सायङ्काल में नदी का नाम या पहाड़ का नाम पूछकर प्रश्नाक्षर ग्रहण करने चाहिये। पृच्छक के प्रश्नाक्षरों का विश्लेषण कर सयुक्त, असंयुक्त, अभिहित आदि आठ प्रश्न-श्रेणियों विभाजित कर प्रश्न का उत्तर देना चाहिये। अथवा उपर्युक्त पाँचों वर्गों को पृथक् स्थापित कर प्रश्न-कर्त्ता से अक्षरों का स्पर्श कराके, स्पर्श किये हुए अक्षरों को प्रश्नाक्षर मानकर संयुक्त, असंयुक्तादि प्रश्न श्रेणियों में विभाजित कर फल बतलाना चाहिये। प्रश्नकुतूहलादि प्राचीन ग्रन्थों में पिङ्गल शास्त्र के अनुसार प्रश्नाक्षरों के मगण, यगण, रगण, तगण, जगण, भगण, नगण, गुरु और लघु ये विभाग कर उत्तर दिये गये हैं। इनका विचार छन्दशास्त्र के अनुसार ही गुरु, लघु क्रम से किया गया है अर्थात् मगण में तीन गुरु, यगण में आदि लघु और दो-गुरु, रगण में मध्य लघु और शेष दो गुरु, सगण में अन्त गुरु और शेष दो लघु, तगण में अन्त लघु और शेष दो गुरु, जगण में मध्य गुरु और शेष दो लघु, भगण में आदि गुरु और शेष दो लघु और नगण में तीन लघु वर्ण होते हैं। यदि प्रश्नकर्त्ता के उच्चारित वर्णों में प्रारम्भ के तीन वर्ण लघु मात्रा वाले हों तो नगण समझना चाहिये। इसी प्रकार उच्चरित वर्णों के क्रम से मगण, यगणादि का विचार करना चाहिये।

---

[1] "···पृच्छकस्य वाक्याक्षराणि स्वरसंयुक्तानि ग्राह्याणि। यदि च प्रश्नाक्षराण्यधिकान्यस्पष्टानि भवेयुस्तदायं विधिः। यदि प्रश्नकर्त्ता ब्राह्मणस्तदा तन्मुखात्पुष्पस्य नाम ग्राहयेत्। यदि प्रश्नकर्त्ता क्षत्रियस्तदा कस्याश्चिन्नद्या नाम ग्राहयेत्। यदि प्रश्नकर्त्ता वैश्यस्तदा देवानां मध्ये कस्यचिद्देवस्य नाम ग्राहयेत्। यदि प्रश्नकर्ता शूद्रस्तदा कस्यचित् फलस्य नाम ग्राहयेत्।"—के० प्र० स० पृ० १२-१३।

मगणादि का स्पष्ट ज्ञान करने के लिये चक्र नीचे दिया जाता है—

मगणादि सम्बन्धी[1]-प्रश्न-सिद्धान्त-चक्र

मगण	यगण	रगण	सगण	तगण	जगण	भगण	नगण	गण
SSS	ISS	SIS	IIS	ISS	ISI	SII	III	लघुगुरु
पृथ्वी	जल	तेज	वायु	आकाश	तमोगुण	सत्त्वगुण	रजोगुण	गुण और तत्त्व
स्थिर	चर	चर	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	चरादि भाव संज्ञा
स्त्री	पुरुष	पुरुष	नपुसक	नपुसक	पुरुष	स्त्री	पुरुष	पुरुषादि सज्ञा
मूल	जीव	धातु	जीव	ब्रह्म	जीव	जीव	जीव	चिन्ता
मित्र	सेवक	शत्रु	शत्रु	सम	सम	सेवक	मित्र	मित्रादि सज्ञा
पीत	श्वेत	रक्त	हरित	नील	ईषद् रक्त	श्वेत	रक्त	रङ्ग
पूर्व	पश्चिम	आग्नेय कोण	वायव्य कोण	ईशानकोण	उत्तर	दक्षिण	नैऋतकोण	दिशा

यदि पृच्छक के प्रश्न वर्णो में पूर्व चक्रानुसार दो मित्र[2] गण हो तो कार्य सिद्धि और मित्रलाभ; मित्र-सेवक सज्ञक गणों के होने पर सफलतापूर्वक कार्य सिद्धि, मित्र-शत्रु संज्ञक गणों के प्रश्नाक्षरो में होने पर प्रिय भाई का मरण; मित्र-सम संज्ञक गणो के होने पर कुटुम्ब में पीड़ा; दो सेवक गणो के होने पर मनोरथ-सिद्धि; भृत्य-शत्रु गणों के होने से शत्रुवृद्धि; मृत्यु-सम गणों के होने से धननाश; शत्रु-मित्र गणो के होने से शारीरिक कष्ट; शत्रु-सेवक गणों के होने से भार्या कष्ट; दो शत्रु गणो के होने से प्रत्यक्ष कार्यहानि; शत्रु-सम गणों के होने से सुख नाश एवं मित्र, मित्र गणो के होने से सुख होता है। दो सम गण निष्फल होते हैं, सम और मित्र गणों के होने से अल्पलाभ; सम और सेवक गणो के होने से उदासीनता एव सम और शत्रु गणों के होने से आपस में विरोध होता है। मगण-[3]यगण के होने पर कार्य सिद्धि, रगण के होने से मृत्यु और कार्य नाश, सगण के होने से क्षय रोग अथवा कार्य विनाश और नगण के होने से प्रश्न निष्फल होता है। यदि प्रश्न[4]कर्ता के प्रश्नाक्षरो में प्रथम मगण हो तो धन-सन्तान की वृद्धि; रगण हो तो मृत्यु या मृत्यु तुल्य कष्ट; सगण हो तो विदेश की यात्रा; जगण हो तो रोग; भगण से निर्मल यश का विस्तार और नगण से अखण्ड सुख प्राप्ति सम्बन्धी प्रश्न जानने चाहिये। इस प्रकार गणो का विचार कर प्रश्नों का फल बत-

१ "पृथिव्यादीनि पञ्चभूतानि यथासख्येन ज्ञेयानि। जेन तमो भेन सत्तो नेन रजोग्रहणम्। त्रयाणा गीतोपनिषद्भिः फलं वाच्यम्।"–प्र० कु० पृ० ६। २ द्रष्टव्यम्–प्र० कु० पृ० ८। ३ द्रष्टव्यम्–प्र० कु० पृ० १०। ४ द्रष्टव्यम्–प्र० कु० पृ० ५–६।

लाना चाहिये। प्रश्नाक्षर सम्बन्धी सिद्धान्त का उपर्युक्त क्रम से विचार करने पर भी चर्या और चेष्टा आदि का भी विचार करना आवश्यक है। क्योंकि मनोविज्ञान के सिद्धान्त से बहुत सी बातें चर्या और चेष्टा से भी प्रकट हो जाती हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि मनुष्य का शरीर यन्त्र के समान है जिसमें भौतिक घटना या क्रिया का उत्तेजन पाकर प्रतिक्रिया होती है। यही प्रतिक्रिया उसके आचरण में प्रदर्शित होती है। मनोविज्ञान के पण्डित पेवलाव ने बताया है कि मनुष्य की समस्त भूत, भावी और वर्तमान प्रवृत्तियाँ चेष्टा और चर्या के द्वारा आभासित होती हैं। समझदार मानव चेष्टाओं से जीवन का अनुमान कर लेता है। अतः प्रश्नाक्षर सिद्धान्त का पूरक अंग चेष्टा-चर्यादि[1] हैं।

दूसरा प्रश्नों के फल का निरूपण करने वाला सिद्धान्त समय के शुभाशुभत्व के ऊपर आश्रित है। अर्थात् पृच्छक के समयानुसार तात्कालिक प्रश्न कुंडली बनाकर उससे ग्रहों के[2] स्थान विशेष द्वारा फल कहा जाता है। इस सिद्धान्त में मूलरूप से फलादेश सम्बन्धी समस्त कार्य समय पर ही अवलम्बित है। अतः सर्व प्रथम इष्टकाल बनाकर लग्न सिद्ध करना चाहिये और फिर द्वादश[3] भावों में ग्रहों का स्थित कर फल बतलाना चाहिये।

इष्टकाल बनाने के नियम

१—सूर्योदय से १२ बजे दिन के भीतर का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना ($२\frac{१}{२}$) करने से घट्यादि रूप इष्टकाल होता है। जैसे—मान लिया कि सं २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया, सोमवार को प्रातःकाल ८ बजकर १५ मिनट पर कोई प्रश्न पूछने आया तो उस समय का इष्टकाल उपर्युक्त नियम के अनुसार; अर्थात् ५ बजकर ३५ मिनट सूर्योदय काल को आने के समय ८ बजकर १५ मिनट में से घटाया तो (८-१५)-(५-३५)=(२-४०) इसको ढाई गुना किया तो ६ घटी ४० पल इष्टकाल हुआ।

२—यदि २ बजे दिन से सूर्यास्त के अन्दर का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्यास्त काल का अन्तर कर शेष को ($२\frac{१}{२}$) ढाई गुना कर दिनमान में से घटाने पर इष्टकाल होता है। उदाहरण—२००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया, सोमवार २ बजकर २५ मिनट पर पृच्छक आया तो इस समय का इष्टकाल निम्न प्रकार हुआ—सूर्यास्त ६-२५ प्रश्नसमय २-२५ = ४-० इसे ढाई गुना किया तो $\frac{४ \times ५}{२}$ = १० घटी हुआ। इसे दिनमान ३२ घड़ी ४ पल में से घटाया गया तो (३२-४)-(१०-०)=२२ घटी ४ पल यही इष्टकाल हुआ।

३—सूर्यास्त से १२ बजे रात्रि के भीतर का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्यास्त काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर दिनमान में जोड़ देने से इष्टकाल होता है। जैसे—सं० २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को रात के १० बजकर ४५ मिनट का इष्टकाल बनाना है। अतः १०-४५ प्रश्न समय-६-२५ सूर्यास्तकाल

$$४\text{-}२० = ४\frac{२०}{६०} = ४\frac{१}{३} = \frac{१३}{३} \times \frac{५}{२} = \frac{६५}{६} = १०\frac{५}{६} \times \frac{६०}{१} = ५०\text{पल};$$ १० घटी ५० पल हुआ। इसे दिनमान ३२ घटी ४ पल में जोड़ा तो (३२-४)+(१०-५०)=(४२-५४)=४२ घटी ५४ पल इष्टकाल हुआ।

---

१ दे० व० पृ० ५। २ बृ० पा० हो० पृ० ७८१। ३ द्वादशभावों के नाम निम्न प्रकार हैं:—

"तनुकोशसहोदरबन्धुसुतारिपुकामविनाशशुभा विबुधैः। पितृम तत आप्तिरयाय इमे क्रमतः कथिता मिहिरप्रमुखैः।"—प्र० भू० पृ० ५। "होरादयस्तनुकुटुम्बसहोत्थबन्धुपुत्रारिपत्निमरणानि शुभास्पदायाः। रिष्फाख्यमित्युपचयान्यरिकर्मलाभदुश्चिसञ्ज्ञितगृहाणि न नित्यमेके॥ कल्पस्वविक्रमगृहप्रतिभाक्षतानि चित्तोत्थरन्ध्रगुरुमानभवव्ययानि। लग्नाच्चतुर्थनिधने चतुरस्रसञ्ज्ञे द्यूनं च सप्तमगृहं दशमं खमाज्ञा॥"—बृ० जा० पृ० १७-१८।

४—यदि १२ बजे रात के बाद और सूर्योदय के अन्दर का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को ढाईगुना कर ६० घड़ी में से घटाने पर इष्टकाल होता है। उदाहरण—सं० २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया, सोमवार को रात के ४ बजकर १५ मिनट का इष्टकाल बनाना है। अतः उपर्युक्त नियम के अनुसार—५–३५ सूर्योदयकाल − ४–१५ प्रश्न समय $= १-२० = १\frac{२०}{६०} = १\frac{१}{३} = \frac{४}{३} \times \frac{५}{२} = \frac{१०}{३} = ३\frac{१}{३} \times \frac{६०}{१} = २०$, ३ घटी २० पल हुआ, इसे ६० घटी में से घटाया तो $(६०-०) - (३-२०) = (५६-४०)$, ५६ घटी ४० पल इष्टकाल हुआ।

बिना घड़ी के इष्टकाल बनाने की रीति

दिन में जिस समय इष्टकाल बनाना हो, उस समय अपने शरीर की छाया को अपने पाँव से नापे, परन्तु जहाँ खड़ा हो उस पाँव को छोड़ के जो संख्या हो उसमें सात और मिला कर भाजक कल्पना करे। इस भाजक का मकरादि से मिथुनान्त पर्यन्त अर्थात् सौम्यायन जब तक रवि रहे तब तक १४४ में भाग दे, और कर्कादि छः राशियों में रवि हो तो १३५ में भाग दे; जो लब्ध हो, उसमें दोपहर से पहले की इष्टघड़ी इष्टकाल हो तो एक घटा देने से और दोपहर से बाद की इष्ट घड़ी हो तो एक और जोड़ने से घट्यात्मक इष्टकाल होता है।[1]

इष्टकाल पर से लग्न बनाने का नियम

प्रत्येक पञ्चाङ्ग में लग्न सारिणी लिखी रहती है। यदि सायन सारिणी पञ्चाङ्ग में हो तो सायन सूर्य और निरयनसारिणी हो तो निरयनसूर्य के राशि और अंश के सामने जो घट्यादि अंक हैं उनमें इष्टकाल के घटी, पल को जोड़ देना चाहिये। यदि घटी स्थान में ६० से अधिक हो तो अधिक को छोड़कर शेष तुल्य अंक उस सारिणी में जहाँ हो उस राशि, अंश का लग्न समझना चाहिए। परन्तु यह गणित क्रिया-स्थूल है—उदाहरण—पूर्वोक्त ६ घटी ४० पल इष्टकाल का लग्न बनाना है। इस दिन सायनसूर्य मेषराशि के ११ अंश पर है। लग्नसारिणी में मेषराशि के सूर्य के ११ अंश का फल ४ घटी १५ पल ३९ विपल है, इसे इष्टकाल में जोड़ा तो—४–१५–३९ + ६–४०–० संस्कृतफल = १०–५५–३९, इस संस्कृत फल को उसी लग्नसारिणी में देखा तो वृषलग्न के २५ अंश का फल १०–५४–३० और २६ अंश का फल ११–४–४९ मिला। अतः लग्न वृषके २५ और २६ अंश के मध्य में हुआ। इसका स्पष्टीकरण किया तो—

११ –४' –४९"	१०''–५५'–३९
१० –५४–३०	१०''–५४'–३०
$१०'-१९'' = १० + \frac{१९}{६०} = \frac{६१९}{६०}$	$१'-९'' = १ + \frac{९}{६०} = \frac{६९}{६०}$

$$\frac{६१९}{६०} : \frac{६९}{६०} :: ६० \text{ कला} = \frac{६० \times ६९ \times ६०}{६० \times ६१९} = \frac{४१४०}{६१९} = ६\frac{४२६}{६१९}$$

$\frac{४२६}{६१९} \times \frac{६०}{१} = \frac{२५५६०}{६१९} = ४१\frac{१८}{६१९}$ अर्थात् लग्नमान १ राशि २५ अंश ६ कला और ४१ विकला हुआ। इस लग्न को प्रारम्भ में रखकर बारह राशियों को क्रम से स्थापित कर देने से प्रश्नकुण्डली बन जायगी।

---

[1] "भागं वारिधिवारिराशिशशिषु (१४४) प्राहुर्मृगाद्ये बुधाः षट्के बाणकृपीटयोनिविधुषु (१३५) स्यात् कर्कटाद्ये पुनः। पादैः सप्तभिरन्वितैः प्रथमकं मुक्त्वा दिनाद्ये दले। द्वित्वैका घटिका परे च सततं दत्त्वेष्टकालं वदेत् ॥"—भू० दी० पृ० ३९।

लग्न बनाने का सूक्ष्म नियम

जिस समय का लग्न बनाना हो, उस समय के स्पष्ट सूर्य में तात्कालिक स्पष्ट अयनांश जोड़ देने से तात्कालिक सायनसूर्य होता है। उस तात्कालिक सायनसूर्य के भुक्त या भोग्य अंशादि को स्वदेशी उदयमान से गुणा करके ३० का भाग देने पर लब्ध पलादि भुक्त या भोग्यकाल होता है—भुक्तांश को स्वोदयमान से गुणा करके ३० का भाग देने पर भुक्तकाल और भोग्यांश को स्वोदय से गुणा करके ३० का भाग देने पर भोग्यकाल होता है। इस भुक्त या भोग्यकाल को इष्टघटी, पल में घटाने से जो शेष रहे उसमें भुक्त या भोग्य राशियों के उदयमानों को जहां तक घट सके घटाना चाहिये। शेष को ३ से गुणाकर अशुद्धोदय मान—जो राशि घटी नहीं है उसके उदयमान के भाग देने पर जो लब्ध अंशादि आवें उनको क्रमसे अशुद्धराशि में जोड़ने से सायन स्पष्ट लग्न होता है। इसमें से अयनांश घटा देने पर स्पष्ट लग्न आती है।

प्रश्नाक्षरों से लग्न निकालने का नियम

प्रश्न का प्रथम अक्षर अवर्ग हो तो सिंह लग्न, कवर्ग हो तो मेष और वृश्चिक लग्न, चवर्ग हो तो तुला और वृष लग्न, टवर्ग हो तो मिथुन और कन्या, तवर्ग हो तो धन और मीन लग्न, पवर्ग हो तो कुम्भ और मकर लग्न एव यवर्ग अथवा शवर्ग हो तो कर्क लग्न जानना चाहिये। जहाँ एक-एक वर्ग में दो-दो लग्न कहे गये हैं वहाँ विषम प्रश्नाक्षरों के होने पर विषम लग्न और सम प्रश्नाक्षरों के होने पर सम लग्न जानना चाहिये। इस लग्न पर से ग्रहों के अनुसार फल बतलाना चाहिये।

तीसरा स्वरविज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त पृच्छक के अदृष्ट पर आश्रित है। अर्थात् पृच्छक के अदृष्ट का प्रभाव सभी वस्तुओं पर पड़ता है. बल्कि यहाँ तक कि उसके अदृष्ट के प्रभाव से वायु में भी विचित्र प्रकार का प्रकम्पन उत्पन्न होता है जिससे वायु चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर के रूप में परिवर्तित हो पृच्छक के इष्टानिष्ट फल को प्रकट करती है। कुछ लोगों का अभिमत है कि वायु का ही प्रभाव प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न मानवों पर भिन्न-भिन्न प्रकार का पड़ता है। स्वर विज्ञान वायु के द्वारा घटित होने वाले प्रभाव को व्यक्त करता है। सामान्य स्वरविज्ञान निम्न प्रकार है—

मानव हृदय में अष्टदल कमल होता है। उस कमल के के आठों पत्रों पर सदैव वायु चलता रहता है। उस वायु में पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व चलते रहते हैं और इनके संचालन से सब प्रकार का शुभाशुभ फल होता है। किन्तु विचारणीय बात यह है कि इनके संचालन का ज्ञान करना ऋषि, मुनियों को ही सम्भव है, साधारण मानव जिसे स्वराभ्यास नहीं है वह दो चार दिन में इसका ज्ञान नहीं कर सकता है। आजकल स्वरविज्ञान के जानने वालों का प्रायः अभाव है। केवल चन्द्रस्वर और सूर्य स्वर के स्थूल ज्ञान से प्रश्नों का उत्तर देना अनुचित है। स्थूल ज्ञान करने का नियम यह है कि नाक के दक्षिण या वाम किसी भी छिद्र से निकलता हुआ वायु (श्वास) यदि छिद्र के बीच से निकलता हो तो पृथ्वी तत्त्व; छिद्र के अधोभाग से अर्थात् ऊपर वाले ओंठ को स्पर्श करता हुआ निकलता हो तो जल तत्त्व; छिद्र के ऊर्ध्वभाग को स्पर्श करता हुआ निकलता हो तो अग्नितत्त्व; छिद्र से तिरछा हो कर निकलता हो तो वायुतत्त्व और एक छिद्र से बढ़कर

---

१ "तत्कालार्कः सायनः स्योदयघ्ना भोग्याशाखत्र्युद्धृता भोग्यकालः। एव यातांशैर्भवेद्यातकालो भोग्यः शोध्योऽभीष्टनाडीपलेभ्यः ॥ तदनु जहीहि गृहोदयांश्च शेष गगनगुणघ्नमशुद्धहृल्लवाद्यम्। सहितमजादिगृहैरशुद्धपूर्वैर्भवति विलग्नमदोऽयनांशहीनम् ॥ भोग्यतोऽल्पेष्टकालात् खरामाहतात्, स्वोदयाप्तांशयुग्भास्करः स्यात्तनुः। अर्कभोग्यस्तनोर्भुक्तकालान्वितो युक्तमध्योदयोऽभीष्टकालो भवेत् ॥"—प्र० ला० चि० प्र०।

२ "अवर्गे सिंह लग्नं च पवर्गे मेषवृश्चिकौ। चवर्गे यूकवृषभौ टवर्गे युग्मकन्यके ॥ तवर्गे धनुमीनौ च पवर्गे कुम्भनक्रकौ। यशवर्गे कर्कटश्च लग्नं शब्दाक्षरैर्वदेत् ॥"—के० प्र० सं० पृ० ५४।

क्रमसे दूसरे छिद्र से निकलता हो तो आकाश तत्त्व चलता है ऐसा जानना चाहिये। अथवा[1] १६ अंगुलका एक शंकु बनाकर उस पर ४ अंगुल, ८ अंगुल, १२ अंगुल और १६ अंगुल के अन्तर पर रुई या अत्यन्त मन्द वायु से हिल सके ऐसा कुछ और पदार्थ लगा के उस शंकु को अपने हाथ में लेकर नासिका के दक्षिण या वाम किसी भी छिद्र से श्वास चल रहा हो उसके समीप लगा करके तत्त्व की परीक्षा करनी चाहिये। यदि आठ अंगुल तक वायु (श्वास) बाहर जाता हो तो पृथ्वी तत्त्व, सोलह अंगुल तक बाहर जाता हो तो जल तत्त्व, बारह अंगुल तक बाहर जाता हो तो वायु तत्त्व, चार अगुल तक बाहर जाता हो तो अग्नि तत्त्व और चार अंगुल से कम दूरी तक जाता हो अर्थात् केवल बाहर निर्गमन मात्र हो तो आकाश तत्त्व होता है। पृथ्वी तत्त्व के चलने से लाभ, जल तत्त्व के चलने से तत्क्षण लाभ, वायु[2] और अग्नि तत्त्व के चलने से हानि और आकाश तत्त्व के चलने से फल का अभाव होता है। मतान्तर[3] से पृथ्वी और जल तत्त्व के चलने से शुभ फल, वायु और आकाश तत्त्व के चलने से अनिष्ट फल एवं शारीरिक कष्ट तथा अग्नि तत्त्व के चलने से मिश्रित फल होता है।

शरीर के वाम[4] भाग में इड़ा और दक्षिण भाग में पिंगला नाड़ी रहती है। इड़ा में चन्द्रमा स्थित है और पिंगला में सूर्य। नाक के दक्षिण छिद्र से हवा निकलती हो तो सूर्य स्वर और वाम छिद्र से हवा निकलती हो तो चन्द्र स्वर जानना चाहिये। चन्द्र स्वर में राजदर्शन, गृहप्रवेश एवं राज्याभिषेक आदि शुभ कार्यों की सिद्धि और सूर्यस्वर में स्नान, भोजन, युद्ध, मुकद्दमा, वादविवाद आदि कार्योंकी सिद्धि होती है। प्रश्न[5] के समय चन्द्र स्वर चलता हो और पृच्छक वाम भाग में खड़ा हो कर प्रश्न पूछे तो निश्चय से कार्यसिद्धि होती है। सूर्यस्वर चलता हो और पृच्छक दक्षिण भाग में खड़ा होकर प्रश्न पूछे। तो कष्ट से कार्य सिद्धि होती है। जिस तरफ का स्वर नहीं चलता हो उस ओर खड़ा होकर प्रश्न पूछे तो कार्य हानि होती है। यदि सूर्य (दक्षिण) नाड़ी में विषमाक्षर और चन्द्र (वाम) नाड़ी में पृच्छक समाक्षरों का उच्चारण करे तो अवश्य कार्य सिद्धि होती है। किसी-किसी के मत में दक्षिण स्वर चलने पर प्रश्न कर्त्ता के सम प्रश्नाक्षर हो तो धनहानि रोगवृद्धि, कौटुम्बिक कष्ट एवं अपमान आदि सहन करने पड़ते हैं और यदि दक्षिण स्वर चलने पर विषम प्रश्नाक्षर हो तो सन्तानप्राप्ति, धनलाभ, मित्रसमागम, कौटुम्बिक सुख एवं स्त्रीलाभ होता है। जिस समय श्वास भीतर जा रहा हो उस समय पृच्छक प्रश्न करे तो जय और बाहर आ रहा हो उस समय प्रश्न करे तो हानि होती है। जिस ओर का स्वर चल रहा हो उसी ओर आकर पृच्छक प्रश्न करे तो मनोरथसिद्धि और विपरीत ओर पृच्छक खड़ा हो तो कार्य हानि होती है। स्वर का विचार सूक्ष्म रीति से जानने के लिये शरीर में रहने वाली ७२ हजार[6] नाड़ियों का परिज्ञान करना अत्यावश्यक है। इन नाड़ियों के सम्यक् ज्ञान से ही चन्द्र और सूर्य स्वर का पूर्ण परिज्ञान हो सकता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रश्नाक्षर वाले सिद्धान्त का ही निरूपण किया गया है। समस्त वर्णमाला के स्वर और व्यञ्जनों को पाँच वर्गों में विभक्त किया है, तथा इसी विभाजन पर से संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित, अनभिहित, अभिघातित, आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध ये आठ विशेष संज्ञाएँ निर्धारित की हैं। केरल प्रश्न संग्रह में उपर्युक्त संज्ञाएँ प्रश्नाक्षरों की न बताकर चर्या-चेष्टा की बताई गयी हैं। गर्गमनोरमा, केरल प्रश्न रत्न आदि ग्रन्थों में ये संज्ञाएँ समय विशेष की बताई गयी हैं। फलाफल का विवेचन प्रायः समान है। केरलीय प्रश्नरत्न में ४५ वर्णों के नौ वर्ग निश्चित किये हैं:—

अ आ इ ई उ ऊ इन वर्णों की अवर्ग संज्ञा; ए ऐ ओ औ अं अः की एवर्ग; क ख ग घ ङ की कवर्ग; च छ ज झ ञ की चवर्ग, ट ठ ड ढ ण की टवर्ग; त थ द ध न की तवर्ग, प फ ब भ म की पवर्ग, य र

१—"वामे वा दक्षिणे वापि धाराष्टाङ्गुलदीर्घिका। षोडशाङ्गुलमापः स्युस्तेजश्च चतुरङ्गुलम्॥ "द्वादशाङ्गुलदीर्घः स्याद्वायुर्व्योमाङ्गुलेन हि।"—स० सा० पृ० ७३। तत्त्वानां विवेचनं शिवस्वरोदये पृ० ४२–६० तथा समरसारे पृ० ७०-९० इत्यादिषु द्रष्टव्यम्। २ शि० स्व० पृ० ४४-४५। ३ स० सा० पृ० ७६। ४ शि० स्व० पृ० १५-१६। ५ स० सा० पृ०—८३। ६ शि० स्व० पृ० ९।

ल व की यवर्ग और श ष स ह की शवर्ग संज्ञा बताई है। वर्ग विभाजन क्रम में अन्तर रहने के कारण संयुक्त, असंयुक्तादि प्रश्न संज्ञाओं में भी अन्तर है।

पाँचों वर्गों के योग और उनके फल—

तथाहि—पञ्चवर्गानपि[1] क्रमेण प्रथमतृतीयवर्गाश्च[3] परस्परं दृष्ट्वा योजयेत्[4]। प्रथमतृतीययोः द्वितीयचतुर्थाभ्यां योगः[5], पृथग्भावात् पञ्चमवर्गोऽपि (वर्गस्यापि) प्रथमतृतीयाभ्यां[6] योगः। यत्र यत्किञ्चित् पृच्छति तत्सर्वमपि लभते। तत्र स्वकाययोगे[7] स्वकीयचिन्ता; परकाययोगे परकीयचिन्ता। स्ववर्गसंयोगे स्वकीयचिन्ता[8] परवर्गसंयोगे परकीयचिन्ता इत्यर्थः। कण, चण, उणि इत्यादि।

अर्थ—पाँचों वर्गों को क्रम से प्रथम, तृतीय वर्ग के साथ मिलाकर फल की योजना करनी चाहिये। प्रथम और तृतीय का द्वितीय और चतुर्थ के साथ योग तथा पृथक् होने के कारण—पञ्चम वर्ग को दो भागों मे विभक्त करने के कारण, पञ्चम वर्ग का प्रथम और तृतीय वर्ग के साथ योग करना चाहिये। उपर्युक्त संयोगी वर्गों के प्रश्नाक्षर होने पर पूछने वाला जिन वस्तुओं के सम्बन्ध में प्रश्न करता है, उन सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है। यदि पूछने वाला अपने शरीर को स्पर्श कर अर्थात् स्वशरीर को खुजलाते हुए या अन्य प्रकार से स्पर्श करते हुए प्रश्न करे तो स्वसम्बन्धी चिन्ता और दूसरे के शरीर को छूते हुए प्रश्न करे तो परसम्बन्धी चिन्ता—प्रश्न, कहना चाहिये। यदि प्रथम, द्वितीयादि वर्गों में से प्रश्नाक्षर स्ववर्ग संयुक्त हों तो स्वसम्बन्धी चिन्ता अर्थात् पृच्छक अपने शरीरादि के सम्बन्ध मे प्रश्न और भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रश्नाक्षर हों तो परसम्बन्धी चिन्ता अर्थात् पृच्छक अपने से भिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध मे प्रश्न पूछना चाहता है। जैसे कण, चण, उणि इत्यादि।

विवेचन—प्रश्न का फल बतलाने वाले गणक को प्रश्न का फल निकालने के लिये सबसे पहले पूर्वोक्त पाँचों वर्गों को एक कागज या स्लेट पर लिख लेना चाहिये, फिर संयुक्त वर्ग बनाने के लिये प्रथम और द्वितीय का अर्थात् प्रथम वर्ग में आये हुए अ क च ट त प य श इन अक्षरों का द्वितीय वर्ग वाले आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष इन अक्षरों के साथ योग करना चाहिये। वर्गाक्षरों मे पञ्चम वर्ग के अक्षर पृथक् होने के कारण उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः इन अक्षरों का प्रथम और तृतीय वर्ग वाले अक्षरों के साथ योग करना चाहिये। जैसे चण, गण, उण इत्यादि।

उदाहरण—मोतीलाल नामक कोई व्यक्ति दिन के ११ बजे प्रश्न पूछने आया। फल बतलाने वाले ज्योतिषी को सर्वप्रथम उसकी चर्या, चेष्टा, उठन, बैठन, बात-चीत आदि का सूक्ष्म निरीक्षण करना चाहिये। मनोगतभावों के अवगत करने में उपर्युक्त चेष्टा, चर्यादि से पर्याप्त सहायता मिलती है, क्योंकि मनोविज्ञान-सम्मत अबाधभावानुषङ्ग के क्रम से भविष्यत् मे घटित होनेवाली घटनाएँ भी प्रतीकों द्वारा प्रकट हो जाती हैं। चतुर गणक चेहरे की भावभङ्गी से भी बहुत-सी बातों का ज्ञान कर सकता है। अतः प्रश्नशास्त्र के साथ लक्षण शास्त्र का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसे लक्षणशास्त्र का अच्छा ज्ञान है वह बिना गणित क्रिया के फलित ज्योतिष की सूक्ष्म बातों का जान सकता है।

---

१ "प्रथमं च तृतीयं च सयुक्त पञ्चमेव च। द्विचतुर्थमसंयुक्त क्रमादभिहितं भवेत्॥" च० प्र० श्लो० ३४, प्रश्नाक्षराणां पक्षिरूपविभाजनं तद्विशेषफलञ्च पञ्चपक्षीनाम्न. ग्रन्थस्य तृतीय-चतुर्थपृष्टयोः द्रष्टव्यम्। प्रश्नाक्षराणा नववर्गक्रमेणसयुक्तादिविभागः केरलप्रश्नरत्नग्रन्थस्य सप्तविंशतितमपृष्ठे द्रष्टव्यः। इय योजनापि तत्र प्रकारान्तरेण दृश्यते। २ पञ्चमवर्ग्योऽपि क० मू०। ३ वर्ग्याश्च—क० मू०। ४ योजनीयाः—क० मू०। ५ योगः, इति पाठो नास्ति—क० मू०। ६ प्रथमतृतीयवर्गाभ्या—क० मू०। ७ स्वकायसंयागे—क० मू०। ८—'स्ववर्गसयोगे स्वकीयचिन्ता'—इति पाठो नास्ति—क० मू०।

पृच्छक अकेला आवे और आते ही तिनके, घास आदि को तोड़ने लगे तो समझना चाहिये कि उसका कार्य सिद्ध नहीं होगा, यदि वह अपने शरीर को खुजलाते हुए प्रश्न पूछे तो समझना चाहिये कि इसका कार्य चिन्ता सहित सिद्ध होगा। अतः मोतीलाल की चर्या, चेष्टा का निरीक्षण करने के बाद मध्याह्न काल का प्रश्न होने के कारण उससे किसी फल का नाम पूछा, तो मोतीलाल ने आम का नाम बताया। अब गणक को विचार करना चाहिये कि 'आम' इस प्रश्न वाक्य में किस किस वर्ग के अक्षर संयुक्त हैं ? विश्लेषण करने पर मालूम हुआ कि 'आ' प्रथम वर्ग का प्रथमाक्षर है और म पञ्चम वर्ग का सप्तम अक्षर है। अतः प्रश्न में पञ्चम और प्रथम वर्ग का संयोग पाया जाता है, इसलिए पृच्छक के अभीष्ट कार्य की सिद्धि होगी। प्रश्न का फल बतलाने का दूसरा नियम यह है कि पृच्छक से पहले उसके आने का हेतु पूछना चाहिये और उसी वाक्य को प्रश्नवाक्य मानकर उत्तर देना चाहिये। जैसे–मोतीलाल से उसके आने का हेतु पूछा तो उसने कहा कि मैं 'मुकद्दमे की हार-जीत' के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने आया हूँ। अब गणक को मोतीलाल के मुख से कहे गये 'मुकद्दमे की हार जीत' इस प्रश्न वाक्य पर विचार करना चाहिये। इस वाक्य के प्रथम अक्षर 'मु' में पञ्चम वर्ग के म् और उ का सम्बन्ध है, द्वितीय अक्षर 'क' में द्वितीय वर्ग के क् और प्रथम वर्ग के अ का संयोग है, तृतीय अक्षर 'द्' में तृतीय वर्ग के द्+द् और प्रथम वर्ग के अ का संयोग है और चतुर्थ अक्षर 'मे' में पञ्चम वर्ग के अक्षर म् और प्रथम वर्ग के ए का संयोग है। अतः इस वाक्य में प्रथम, तृतीय और पञ्चम वर्ग का योग है, इसलिये मुकद्दमा में जीत होगी। इसी प्रकार अन्य प्रश्नों के उत्तर निकालने चाहिये। अथवा सबसे पहले प्रश्नकर्ता जिस वाक्य से बात-चीत आरम्भ करे उसी को प्रश्नवाक्य मानकर उत्तर देना चाहिये।

प्रश्नलग्नानुसार प्रारम्भिक फल निकालने के लिये द्वादशभावों से निम्न प्रकार विचार करना चाहिये। लग्न से[1] आरोग्य, पूजा, गुण, वर्त्तन, आयु, अवस्था, जाति, निर्दोषता, सुख, क्लेश, आकृति एवं शारीरिक स्थिति आदि बातों का विचार, धनभाव–द्वितीय भाव से माणिक्य, मोती, रत्न, धातु, वस्त्र, सुवर्ण, चाँदी, धान्य, हाथी, घोड़े आदि के क्रयविक्रय का विचार, तृतीय भाव से भाई, नौकर, दास, शूरकर्म, भ्रातृचिन्ता एवं सद्बुद्धि लाभ आदि बातों के सम्बन्ध में विचार, चतुर्थ भाव से घर, निधि, औषध, खेत, बगीचा, मिल, स्थान, हानि, लाभ, गृहप्रवेश, वृद्धि, माता, पिता, एवं देश सम्बन्धी कार्य इत्यादि बातों का विचार; पंचम भाव से विनय, प्रबन्ध पटुता, विद्या, नीति, बुद्धि, गर्भ, पुत्र, प्रज्ञा, मन्त्रसिद्धि, वाक्चातुर्य एवं माताकी स्थिति इत्यादि बातों का विचार; छठवें भाव से अस्वस्थता, खोटी दशा, शत्रु-स्थिति, उग्रकर्म, क्रूरकर्म, शंका, युद्ध की सफलता, असफलता, मामा, भैंसादि पशु, रोग एवं मुकद्दमे की हार-जीत आदि बातों का विचार; सातवें भाव से स्वास्थ्य, काम विकार, भार्या सम्बन्धी विचार, भानजे सम्बन्धी कार्यों का विचार, चौरकर्म, बड़े कार्यों की सफलता और असफलता का विचार एवं सौभाग्य आदि बातों का विचार, अष्टम भाव से आयु, विरोध, मृत्यु, राज्य-भेद, बन्धुजनों का छिद्र, गढ़, किला आदि की प्राप्ति, शत्रु-वध, नदी-तैरना, कठिन कार्यों में सफलता प्राप्त करना एवं अल्पायु सम्बन्धी बातों का विचार, नौवें भाव से धार्मिक शिक्षा, दीक्षा, देवमन्दिर का निर्माण, यात्रा, राज्याभिषेक, गुरु, धर्मकार्य, बावड़ी, कुआँ, तालाब आदि के निर्माण का विचार, साला, देवर और भावज के सुख-दुख का विचार एवं जीवन में सुख, शान्ति आदि बातों का विचार, दसवें भाव से जल की वृष्टि, मान, पुण्य, राज्याधिकार, पितृ-कार्य, स्थान-भ्रष्टता एवं सम्मान प्राप्ति आदि बातों का विचार, ग्यारहवें भाव से कार्य की वृद्धि, लाभ, सवारी के सुख का विचार, कन्या, हाथी, घोड़ा, चांदी, सोना आदि द्रव्यों के लाभालाभ का विचार एवं श्वशुर की चिन्ता इत्यादि बातों का विचार और बारहवें भाव से त्याग, भाग, विवाह, खेती, व्यय, युद्ध सम्बन्धी जय-पराजय, काका, मौसी, मामी के सम्बन्ध और उनके सुख दुख इत्यादि बातों का विचार करना चाहिये।

उपर्युक्त बारह भावों में ग्रहों की स्थिति के अनुसार घटित होने वाले फल का निर्णय करना चाहिये। ग्रहों की दीप्त,[2] दीन, स्वस्थ, मुदित, सुप्त, प्रपीड़ित, मुषित, परिहीयमानवीर्य, प्रवृद्धवीर्य, अधिकवीर्य ये दस

१ दै० व० पृ० ७–१०। २ दै० व० पृ० ३–४।

अवस्थाएँ कही गयी हैं। उच्चराशि का ग्रह दीप्त, नीच राशि का दीन, स्वगृह का स्वस्थ, मित्रगृह का मुदित, शत्रुगृह का सुप्त, युद्ध में अन्य ग्रहों के साथ पराजित हुआ हुआ निपीड़ित, अस्तंगत ग्रह मुषित, नीच राशि के निकट पहुँचा हुआ परिहीयमानवीर्य, उच्चराशि के निकट पहुँचा ग्रह प्रवृद्धवीर्य और उदित होकर शुभ ग्रहों के वर्ग में रहनेवाला ग्रह अधिकवीर्य कहलाता है। दीप्त अवस्था का ग्रह हो तो उत्तम सिद्धि; दीन अवस्था का ग्रह हो तो दीनता, स्वस्थ अवस्था का ग्रह हो तो अपने मन का कार्य, सौख्य एवं श्रीवृद्धि; मुदित अवस्था का ग्रह होने से आनन्द एव इच्छित कार्यों की सिद्धि; प्रसुप्त अवस्था का ग्रह हो तो विपत्ति; प्रपीड़ित अवस्था का ग्रह हो तो शत्रुकृत पीड़ा; मुषित अवस्था का ग्रह हो तो धनहानि; प्रवृद्धवीर्य हो तो अश्व, गज, सुवर्ण एव भूमि लाभ और अधिकवीर्य ग्रह होने से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का विकास एव विपुल सम्पत्ति लाभ होता है। पहले बारह भावों से जिन-जिन बातों के सबन्ध में विचार करने के लिये बताया गया है, उन बातों को ग्रहों के बलाबल के अनुसार तथा दृष्टि, मित्रामित्र सम्बन्ध आदि विषयों को ध्यान में रखकर फल बतलाना चाहिये। किसी-किसी आचार्य[1] के मत से प्रश्नकाल में ग्रहों के उच्च नीच, मित्र, सम, शत्रु, शयनादिमान, बलाबल, स्वभाव और दृष्टि आदि बातों का विचार कर प्रश्न का फल बतलाना चाहिये। गणक को प्रश्न सम्बन्धी अन्य आवश्यक बातों पर विचार करने के साथ ही यह भी विचार कर लेना चाहिये कि पृच्छक दुष्टभाव से प्रश्न तो नहीं कर रहा है। यदि दुष्टभाव से प्रश्न करता है तो उसे निष्फल समझकर उत्तर नहीं देना चाहिये। प्रश्न का सम्यक् फल तभी निकलता है जब पृच्छक अपनी अन्तरंग प्रेरणा से प्रेरित हो प्रश्न करता है, अन्यथा प्रश्न का फल साफ नहीं निकलता। दुष्टभाव से किये गये प्रश्न की पहचान यह है कि यदि प्रश्न लग्न में चन्द्रमा और शनि हो, सूर्य कुम्भ राशि में हो और बुध प्रभाहीन हो तो दुष्टभाव से किया गया प्रश्न समझना चाहिये।

संयुक्त प्रश्नोत्तर और उनका फल

अथ संयुक्तानि[2] कादिगादीनि संयुक्तानि प्रश्नाक्षराणि प्रश्ने लाभः पुत्रादिवस(श) क्षेमकराणि[3]। जादिगादीनि[4] प्रश्नाक्षराणि लाभकराणि स्त्रीजनकारीणि।

अर्थ—संयुक्तों को कहते हैं—कादि—क च ट त प य श इन प्रथम वर्ग के अक्षरों को गादि—ग ज ड द ब ल स इन तृतीय वर्ग के अक्षरों के साथ मिलाने से संयुक्त प्रश्न बनते हैं। संयुक्त प्रश्न होने पर लाभ होता है और पुत्रादि के कारण कल्याण होता है। यदि प्रश्नाक्षर जादि, गादि अर्थात् तृतीय वर्ग के ज ग ड द ब ल स हों तो लाभ कराने वाले तथा स्त्री पुत्रादि की प्राप्ति कराने वाले होते हैं।

विवेचन—पहले आचार्य ने सयुक्त, असयुक्त, अभिहित, अनभिहत, अभिघातित, आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध ये आठ भेद प्रश्नों के कहे हैं। इन आठ प्रश्नभेदों का लक्षण और फल बतलाते हुए सर्व प्रथम संयुक्त का फल और लक्षण बताया है प्रथम और तृतीय वर्ग के अक्षरों के सयोगवाले प्रश्न सयुक्त कहलाते हैं, सयुक्त प्रश्न होने पर लाभ होता है। केरलसंग्रहादि कतिपय ज्योतिष ग्रन्थों में अपने शरीर को स्पर्श करते हुए प्रश्न करने का नाम ही सयुक्त प्रश्न कहा है। इस मत के अनुसार भी सयुक्त प्रश्न होने पर लाभ होता है। उदाहरण—जैसे देवदत्त प्रश्न पूछने आया कि मैं परीक्षा में पास होऊँगा या नहीं? गणक ने किसी अबोध बालक से फल का नाम पूछा तो उसने 'लौका' का नाम लिया। अब प्रश्नवाक्य 'लौका' का विश्लेषण किया

---

१ प्र० भू० पृ० १३। २ "प्रथमतृतीयाक्षरयोः संयुक्तेति स्वतो मिथश्चाख्याः। कग, चज, टड, तद, पब, यल, शस, कज, चग, टग, तग, पग, यग, शग, टज, तज, पज, यज, शज, कड, चड, तड, पड, यड, शड, कद, चद, टद, पद, तद, शद, यद, कब, चब, टब, तब, पब, यब, शब, कल, चल, टल, तल, पल, यल, शल, कस, चस, टस, तस, पस, यस इत्याद्यनन्तभेदाः भवन्ति।"—के. प्र. र. पृ० २७–२९। चन्द्रो० श्लो० ३४–३७। के. प्र. सं० पृ० ४। नरपतिज० पृ० ११। ३ संयुक्तादीनि क० म०। ४ चादिगादीनि क० मू०।

तो प्रथमाक्षर 'लो' में तृतीयवर्ग का 'ल्' और चतुर्थवर्ग का 'ओ' संयुक्त है तथा द्वितीय वर्ण 'का' में प्रथमवर्ग के क् और आ दोनों ही वर्ण सम्मिलित हैं। अतः प्रश्न में प्रथम, तृतीय और चतुर्थ वर्ग का संयोग है। उपर्युक्त विश्लेषित वर्गों में अधिकांश वर्ण प्रथम और तृतीय वर्ण के हैं, अतः यह संयुक्त प्रश्न है। इसका फल परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त करना है। प्रस्तुत ग्रन्थ में यह एक विशेषता है कि केवल तृतीयवर्ग के वर्णों की भी संयुक्त संज्ञा बताई गई है। संयुक्त संज्ञक प्रश्न धन लाभ कराने वाले एवं स्त्री, पुत्रादि की प्राप्ति कराने वाले होते हैं।

प्रश्नकुतूहलादि जिन ग्रन्थों में प्रश्नाक्षरों के मगण, यगणादि भेद किये गये हैं, उनके मतानुसार प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षर मगण, नगण, भगण और यगण इन चारों गणों से संयुक्त[1] हो तो लाभ होता है। यदि मगण और नगण इन दो गणों से संयुक्त प्रश्नाक्षर हों तो दिन में लाभ और भगण एवं यगण इन दो गणों से संयुक्त प्रश्नाक्षर हो तो रात में लाभ होता है। यदि जगण और रगण इन दो गणों से संयुक्त प्रश्नाक्षर हो तो दिन में हानि एवं सगण और तगण इन दो गणों से संयुक्त प्रश्नाक्षर हों तो रात में हानि होती है। जगण, रगण, सगण और तगण इन चार गणों से संयुक्त प्रश्नाक्षर हो तो कार्यहानि समझनी चाहिये।

लग्नानुसार प्रश्नों का फल निकालने का प्राचीन नियम इस प्रकार है कि ज्योतिषी को पूर्व[2] की ओर मुख कर मेष, वृष आदि १२ राशियों की कल्पना कर लेनी चाहिये और पृच्छक जिस दिशा में हो उस दिशा की राशि को आरूढ़ लग्न मानकर फल कहना चाहिये। उपर्युक्त नियम का संक्षिप्त सार यह है— मेष, वृष आदि बारह राशियों को लिखकर उनकी पूर्वादि दिशाएँ मान लेनी चाहिये अर्थात् मेष और वृष पूर्व, मिथुन कर्क सिंह और कन्या दक्षिण, तुला और वृश्चिक पश्चिम एवं धनु मकर कुम्भ और मीन उत्तर संज्ञक हैं। निम्न चक्र से आरूढ़ लग्न का ज्ञान अच्छी तरह हो सकता है।

आरूढ़ राशि बोधक चक्र

पूर्व

उत्तर	१२	१	२	३	दक्षिण
	११			४	
	१०			५	
	९	८	७	६	

पश्चिम

उदाहरण—मोतीलाल प्रश्न पूछने आया और वह पूर्व की ओर ही बैठ गया। अब यहाँ विचार करना है कि पूर्व दिशा की मेष और वृष इन दो राशियों में से कौनसी राशि को आरूढ़ लग्न माना जाय? यदि मोतीलाल उत्तर-पूर्व के कोने के निकट है तो मेष और दक्षिण-पूर्व के कोने के निकट है तो वृष राशि को आरूढ़ लग्न मानना चाहिये। विचारने से पता लगा कि मोतीलाल दक्षिण और पूर्व के कोने के निकट है अतः उसको आरूढ़ लग्न वृष मानना चाहिये। आरूढ़ लग्न निकालने के सम्बन्ध में मेरा निजी मत यह है कि उपर्युक्त चक्र के अनुसार बारह राशियों को स्थापित कर लेना चाहिये फिर पृच्छक से किसी भी राशि का स्पर्श कराना चाहिये, जिस राशि को पृच्छक छुए उसी को आरूढ़ लग्न मानकर फल बताना चाहिये। फल प्रतिपादन करने के लिये आरूढ़ लग्न के साथ लग्न का भी विचार करना आवश्यक है। अतः छत्र लग्न का ज्ञान करने के लिये मेषादि वीथियों को जान लेना चाहिये। वृष,[3] मिथुन, कर्क और सिंह इन चार

१ प्र० कु० प० १२। २ बृ० पा० हो० पृ० ७४०। ३ बृ० पा० हो० पृ० ७४१।

राशियों की मेष वीथी; वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ इन चार राशियों की मिथुन वीथी और मेष, मीन, कन्या और तुला इन चार राशियों की वृषभ वीथी जाननी चाहिये। आरूढ़लग्न से वीथी की राशि जितनी संख्यक हो प्रश्नलग्न से उतनी ही संख्यक राशि छत्रलग्न कहलाती है। ज्ञानप्रदीपिकाकार[1] के मतानुसार मेष प्रश्न लग्न की छत्र राशि वृष; वृष की मेष, मिथुन, कर्क और सिंह की छत्र राशि मेष; कन्या और तुला की मेष; वृश्चिक और धनु की मिथुन; मकर की मिथुन, कुम्भ की मेष और मीन की वृष छत्र राशि है। प्रश्नसमय में आरूढ़, छत्र और प्रश्न लग्न के बलाबल से प्रश्न का उत्तर देना चाहिये। प्रश्न का विशेष विचार करने के लिये भूत,[2] भविष्य, वर्तमान, शुभाशुभ दृष्टि, पाँच मार्ग, चार केन्द्र, बलाबल, वर्ग, उदय-बल, अस्तबल, क्षेत्र, दृष्टि, नर, नारी, नपुंसक, वर्ण, मृग तथा नर आदि रूप, किरण, योजन, आयु, रस एवं उदयमान आदि बातों की परीक्षा करना अत्यावश्यक है। यदि प्रश्न [3] करने वाला एक ही समय में बहुत से प्रश्न पूछे तो पहला प्रश्न लग्न से, दूसरा चन्द्रमा से, तीसरा सूर्य के स्थान से, चौथा बृहस्पति के स्थान से, पाँचवा प्रश्न बुध के स्थान से और छठवाँ बली शुक्र या बुध इन दोनों में जो अधिक बलवान् हो उसी के स्थान से बतलाना चाहिये। ग्रह अपने क्षेत्र में, मित्रक्षेत्र में, अपने और मित्र के षड्वर्गों में, उच्चराशि में, मूलत्रिकोण में, नवांश में, शुभ ग्रह से दृष्ट होने पर बलवान् होते हैं। चन्द्रमा और शुक्र स्त्रीराशि–वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन इन राशियों में, सूर्य, मंगल, बुध, गुरु और शनि पुरुष राशियों में—मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ इन राशियों में बलवान् होते हैं। बुध और बृहस्पति लग्न में स्थित रहने से पूर्व दिशा में, सूर्य और मंगल चौथे स्थान में रहने से दक्षिण दिशा में, शनि सातवें भाव में रहने से पश्चिम दिशा में और शुक्र दसवें भाव में रहने से उत्तर दिशा में दिग्बली होते हैं तथा चन्द्रमा और सूर्य उत्तरायण में अन्य भौमादि पाँच ग्रह वक्री, उज्ज्वल एवं पुष्ट रहने से बलवान् होते हैं। सूर्य, शुक्र और बृहस्पति दिन में; मंगल और शनि रात्रि में; बुध दिन और रात्रि दोनों में; शुभ ग्रह शुक्लपक्ष में और अपने-अपने दिन, मास, ऋतु, अयन, वर्ष और काल होरा में एवं पाप ग्रह कृष्णपक्ष और अपने-अपने दिन, मास, ऋतु, अयन, वर्ष और काल होरा में बली होते हैं। इस प्रकार ग्रहों के कालबल का विचार करना चाहिये। प्रश्नकाल में स्थानबल और सम्बन्धबल का विचार करना भी परमावश्यक है। तथा लग्न से विचार करने वाले ज्योतिषी को भावविचार निम्न प्रकार से करना चाहिये। जो भाव अपने स्वामी से युत हो या देखे जाते हों अथवा बुध, गुरु और पूर्णचन्द्र से युक्त हो तो उनकी वृद्धि होती है और पापग्रह संयुक्त बुध, क्षीण चन्द्रमा, शनि, मंगल और सूर्य से युत या देखे जाते हों तो हानि होती है।

असंयुक्त प्रश्नाक्षर

अथासंयुक्तानि[4] प्रथमद्वितीयौ कख, चछ इत्यादि; द्वितीयचतुर्थौ[5] खग, छज इत्यादि; तृतीयचतुर्थौ गघ, जझ इत्यादि; चतुर्थपञ्चमौ घङ, झञ इत्यादि।

अर्थ—असंयुक्त प्रश्नाक्षर प्रथम-द्वितीय, द्वितीय-चतुर्थ, तृतीय-चतुर्थ और चतुर्थ-पञ्चम वर्ग के संयोग से बनते हैं। १–प्रथम और द्वितीय वर्गाक्षरों के संयोग से–कख, चछ, टठ, तथ, पफ, यर इत्यादि; २–द्वितीय और चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से–खघ, छझ, ठढ, थध, फभ, रव इत्यादि; ३–तृतीय और चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से–गघ, जझ, डढ, दध, बभ, यल इत्यादि एवं चतुर्थ और पञ्चम वर्गाक्षरों के संयोग से–घङ, झञ, ढण, धन, भम इत्यादि विकल्प बनते हैं।

---

१ ज्ञा० प्र० पृ० ८। २ ज्ञा० प्र० पृ० १। ३ ता० नी० पृ० २५४। ज्ञा० प्र० पृ० १। ४–"समवर्णयोश्च तद्वगवर्गाणामसंयुक्ताः।"–के० प्र० र० पृ० २७। ५ द्वितीयतृतीयो क० मू०

विवेचन—प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षर प्रथम-द्वितीय, द्वितीय-चतुर्थ, तृतीय-चतुर्थ और चतुर्थ-पचम वर्ग के हो तो असंयुक्त प्रश्न समझना चाहिये। प्रश्नवाक्य में असंयुक्त प्रश्नों का निर्णय करने के लिये वर्गों का सम्बन्ध क्रम से लेना चाहिये। असंयुक्त प्रश्न होने से फल की प्राप्ति बहुत दिनों के बाद होती है। यदि प्रथम-द्वितीय वर्गों के अक्षर मिलने से असयुक्त प्रश्न हो तो धन-लाभ, कार्य-सफलता और राज-सम्मान; द्वितीय-चतुर्थ वर्गाक्षरों के सयोग से असयुक्त प्रश्न हो तो मित्रप्राप्ति, उत्सववृद्धि और कार्य-साफल्य; तृतीय-चतुर्थ वर्गाक्षरों के सयोग से असयुक्त प्रश्न हो तो अल्पलाभ, पुत्रप्राप्ति, माङ्गल्यवृद्धि और प्रियजनों से विवाद एव चतुर्थ-पंचम वर्गाक्षरो के सयोग से असयुक्त प्रश्न हो तो घर में विवाहादि माङ्गलिक उत्सवों की वृद्धि, स्वजन-प्रेम, यशप्राप्ति, महान् कार्यों में लाभ और वैभव-वृद्धि इत्यादि फलों की प्राप्ति होती है। यदि प्रश्नकर्ता का वाचिक प्रश्न हो और उसके प्रश्नवाक्य के अक्षर असयुक्त हो तो पृच्छक को कार्य में सफलता मिलती है। आचार्यप्रवर गर्ग के मतानुसार असयुक्त प्रश्नों का फल पृच्छक के मनोरथ को पूरण करनेवाला होता है। कुछ ग्रन्थों में बताया गया है कि यदि पृच्छक[1] रास्ते में हो, शयनागार में हो, पालकी में बैठा हो या मोटर, साइकिल, घोड़ा, हाथी अथवा अन्य किसी सवारी पर सवार हो, भावरहित हो और फल या द्रव्य हाथ में न लिये हो तो असयुक्त प्रश्न होता है, इस प्रश्न में बहुत दिनों के बाद लाभादि सुख होता है। कहीं-कहीं यह भी बताया गया है कि पृच्छक पश्चिम दिशा की ओर मुँह कर प्रश्न करे तथा प्रश्न समय में आकर कुर्सी, टेबुल, बेंच या अन्य काष्ठ की चीजों को छूता हुआ या नोचता हुआ बात-चीत आरम्भ करे और पृच्छक के मुख से निकला हुआ प्राथमिक वाक्य दीर्घाक्षरों से शुरू हुआ हो तो असयुक्त प्रश्न होता है। इसका फल प्रारम्भ में कार्यहानि और अन्त में कार्य-साफल्य समझना चाहिये। चन्द्रोन्मीलन एव केरलसंग्रहादि कुछ प्रश्नग्रन्थों के अनुसार असयुक्त प्रश्नों का फल अच्छा नहीं है अर्थात् धनहानि, शोक, दुःख, चिन्ता, अपयश एव कलह-वृद्धि इत्यादि अनिष्ट फल समझना चाहिये।

असंयुक्त एवं अभिहत प्रश्नाक्षर और उनका फल

असंयुक्तानि द्वितीयवर्गाक्षराण्यूर्ध्वम्, प्रथमवर्गाक्षराण्यधः परिवर्तनतः प्रथम-द्वितीयान्यसंयुक्तानि भवन्ति खक, छच इत्यादि; तृतीयवर्गाक्षराण्यूर्ध्वं द्वितीयवर्गाक्षराण्यधः पतितान्यभिहतानि भवन्ति गख इत्यादि; एवं चतुर्थान्युपरि तृतीयान्यधः, घग इत्यादि। पञ्चमाक्षराण्यधः, उपरि चतुर्थाक्षराणि चेदप्यभिहतानि भवन्ति ङघ, ञझ इत्यादि; स्ववर्गे स्वकीयचिन्ता परवर्गे परकीयचिन्ता।[2][3]

अर्थ—असंयुक्त प्रश्नाक्षरों को कहते हैं—द्वितीय वर्गाक्षर के वर्ण ऊपर और प्रथम वर्गाक्षर के वर्ण नीचे रहने पर उनके परिवर्तन से प्रथम-द्वितीय वर्ग जन्य असयुक्त होते हैं—जैसे द्वितीय वर्गाक्षर 'ख' को ऊपर रखा और प्रथम वर्गाक्षर 'क' को नीचे रखा और इन दोनों का परिवर्तन किया अर्थात् प्रथम के स्थान पर द्वितीय को और द्वितीय के स्थान पर प्रथम को रखा तो खक, छच इत्यादि विकल्प बने। तृतीय वर्ग के वर्ण के ऊपर और द्वितीय वर्ग के वर्ण नीचे हो तो उनके परिवर्तन से द्वितीय तृतीय वर्गजन्य अभिहत होते हैं—जैसे तृतीय वर्ग के वर्ण ग को ऊपर रक्खा और द्वितीय वर्ग के वर्ण ख को नीचे अर्थात् ख ग इस प्रकार रक्खा, फिर इनका परिवर्तन किया तो तृतीय के स्थान पर द्वितीय वर्ण को रखा और द्वितीय वर्ग के वर्ण के स्थान पर तृतीय वर्ग के वर्ण को रखा तो ग ख, ज छ, ड ठ इत्यादि विकल्प बने। इसी प्रकार चतुर्थ वर्ग के

---

१ के० प्र० स० पृ० ४। २ "प्रश्नार्णो चेत् क्रमगावभिहितसञ्ज्ञम"-के० प्र० र० पृ० २७। "यदि प्रष्टा प्रश्नसमये वामहस्तेन वामाङ्गं स्पृशति तदाऽभिहतः प्रश्नः। अलाभकरो भवति।"-के० प्र० सं० ५। ३ पञ्चमाक्षराण्युपरि चतुर्थाक्षराण्यधः क० मू०।

वर्ण ऊपर और तृतीय वर्ग के वर्ण नीचे हों तो उनके परिवर्तन से तृतीय-चतुर्थ वर्गजन्य अभिहत होते हैं— जैसे चतुर्थ वर्ग का वर्ण 'घ' ऊपर और तृतीय वर्ग का ग नीचे हो अर्थात् ग घ इस प्रकार की स्थिति हो तो इसके परस्पर परिवर्तन से अर्थात् चतुर्थ वर्गाक्षर के स्थान पर तृतीय वर्गाक्षर के पहुँचने से और तृतीय वर्गाक्षर के स्थान पर चतुर्थ वर्गाक्षर के पहुँचने से तृतीय-चतुर्थ वर्ग जन्य अभिहत घ ग, झ ज, ढ ड इत्यादि विकल्प बनते हैं। पञ्चम वर्ग के अक्षर ऊपर और चतुर्थ वर्ग के अक्षर नीचे हो तो इनके परिवर्तन से चतुर्थ-पञ्चमवर्गजन्य अभिहत होते हैं जैसे ङ घ, ञ झ इत्यादि। स्ववर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर स्वकीय चिन्ता और परवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर परकीय चिन्ता होती है। यहाँ स्ववर्ग के सयोग से तात्पर्य कवर्ग, चवर्ग आदि वर्गों के वर्णों के सयोग से है अर्थात् खक, छच, जछ, ङ घ, घग, ञझ, झज इत्यादि सयोगी वर्ण स्ववर्ग सयोगी कहलायेंगे और भिन्न-भिन्न वर्गों के वर्णों के संयोगी विकल्प परवर्ग कहलाते हैं अर्थात् ख च, छक, जख, ञघ, झग; ङझ, घञ इत्यादि विकल्प परवर्ग माने जायेंगे।

विवेचन—प्रश्नकर्त्ता के प्रश्नाक्षरो में—कख, खग, गघ, घङ, चछ, छज, जझ, झञ, टठ, ठड, डढ, ढण, तथ, थद, दध, धन, पफ, फब, बभ, भम, यर, रल, लव, शष, षस और सह इन वर्णों के क्रमशः विपर्यय होने पर परस्पर में पूर्व और उत्तरवर्ती हो जाने पर अर्थात् खक, गख, घग, ङघ, छच, जछ, झज, ञझ, ठट, डट, ढड, णढ, थत, दथ, धद, नध, फप, बफ, भब, मभ, रय, लर, वल, षश, सष एवं हस होने पर अभिहत प्रश्न होता है। इस प्रकार के प्रश्न में प्रायः कार्यसिद्धि नहीं होती है। केवल अभिहित प्रश्न से ही फल नहीं बतलाना चाहिये, बल्कि पृच्छक की चर्या और चेष्टा पर ध्यान देते हुए लग्न बना कर लग्न के स्वामियों के अनुसार फल बतलाना चाहिये। यदि लग्न का स्वामी बलवान् हो तथा शुभ एव बली ग्रहों के साथ हो या शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो इस प्रकार की प्रश्नलग्न की स्थिति में कार्यसिद्धि कहनी चाहिये। लग्न के स्वामी[1] पाप ग्रह (क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल, शनि एव इन ग्रहों से युक्त बुध) हो, कमजोर हो, शत्रु स्थान[2] में हों तथा अशुभ ग्रहों से (सूर्य, मङ्गल, शनि, राहु और केतु से) दृष्ट एव युत हो तो प्रश्नलग्न निर्बल होती है, ऐसी लग्न में किया गया प्रश्न कदापि सिद्ध नहीं हो सकता है। लग्न और लग्नेश के साथ कार्यस्थान और कार्येश का भी विचार करना आवश्यक होता है।

किसी-किसी[3] का मत है कि प्रश्नलग्नेश लग्न को और कार्येश कार्यस्थान को देखे तो कार्य सिद्ध होता है। यदि लग्नेश कार्यस्थान को और कार्येश लग्नस्थान को देखे तो भी कार्य सिद्ध होता है अथवा लग्नस्थान में रहनेवाला लग्नेश कार्य स्थान में रहनेवाले कार्येश को देखे तो भी कार्य सिद्ध होता है। यदि प्रश्नकुण्डली में ये तीनों बली योग हों और लग्न या कार्यस्थान के ऊपर पूर्णबली चन्द्रमा की दृष्टि हो तो अति शीघ्र अल्प परिश्रम से ही कार्य सिद्ध होता है। कार्यसिद्धि का एक अन्य योग यह भी है कि यदि प्रश्नलग्न शुभ ग्रह के षड्वर्ग में हो या शुभग्रह से युत हो, अथवा मेषादि विषमराशि लग्न हो तो शीघ्र ही कार्य सिद्ध होता है।

मूर्ध्वोदय अर्थात् [4]मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुम्भ प्रश्नलग्न हों और शुभग्रह—बुध, शुक्र, गुरु और चन्द्रमा लग्न में हो तो प्रश्न का फल शुभ और पृष्ठोदय अर्थात् मेष, वृष, कर्क, धनु और मकर प्रश्नलग्न हो और लग्न में पापग्रह हो तो अशुभ फल कहना चाहिये। केन्द्र (१।४।७।१०) और नवम, पञ्चम स्थान

---

१ "सिंहस्याधिपतिः सूर्यः कर्कटस्य निशाकरः। मेषवृश्चिकयोर्भौमः कन्यामिथुनयोर्बुधः॥ धनुमीनयोर्मंत्री तुलावृषभयोर्भृगुः। शनिर्मकरकुम्भयोश्च राशीनामधिपा इमे॥"–ज्ञानप्रदीपिका पृ० ३। २ शत्रुवर्ग–"बुधस्य वैरी दिनकृत् चन्द्रादित्यौ भृगोररी। बृहस्पते रिपुर्भौमः शुक्रसोमात्मजौ विना। शनैश्च रिपवः सर्वे तेषां तत्तद्ग्रहाणि च॥" मित्रवर्ग–"भौमस्य मित्रे शुक्रज्ञौ भृगोर्ज्ञरार्किमन्त्रिणः। अङ्गारक विना सर्वे ग्रहमित्राणि मन्त्रिणः। आदित्यस्य गुर्मित्रं शनेर्विद्गुरुभार्गवाः। भास्करेण बिना सर्वे बुधस्य सुहृदस्तथा॥ चन्द्रस्य मित्र जीवज्ञौ मित्रवर्गं उदाहृतः॥"–ज्ञानप्रदीपिका पृ० २–४। ३ प्र० मू० पृ० १४। ४ दै० व० पृ० ११–१२।

में शुभ ग्रह हों और केन्द्र तथा अष्टम स्थान को छोड़कर तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में अशुभ ग्रह हों तो पूछने वाले के मनोरथों की सिद्धि होती है। केन्द्र का स्वामी लग्न में हो अथवा उसका मित्र केन्द्र में हो और पाप ग्रह केन्द्र और बारहवें भाव के अतिरिक्त अन्य स्थानों में हों तो कार्यसिद्धि होती है। पुरुष राशि अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ प्रश्नलग्न हों और लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान में शुभ ग्रह हों तो भी कार्य की सिद्धि होती है। कन्या, तुला, मिथुन, कुम्भ और नर सज्ञक राशियां प्रश्नलग्न हों और लग्न में शुभग्रह हों तथा पाप ग्रह ग्यारहवें और बारहवें स्थान में हों तो भी कार्य की सिद्धि समझनी चाहिये। चतुष्पद अथवा द्विपद राशियाँ लग्न में हों और पापग्रह से युक्त हों, उन पाप ग्रहों से दृष्ट शुभ ग्रहों की लग्न पर दृष्टि होने से नर राशि का लग्न हो तो शुभ फल होता है। लग्न और चन्द्रमा के ऊपर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो शुभ और पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो अशुभ फल जानना चाहिये। यदि लग्न का स्वामी चतुर्थ को और कार्यभाव का स्वामी कार्यभाव को त्रिपाद दृष्टि से देखें अथवा दोनों की परस्पर दृष्टि हो एवं चन्द्रमा लग्नेश और कार्येश इन दोनों को देखता हो तो पूर्वरीति से कार्य की सिद्धि कहनी चाहिये।

अनभिहत प्रश्नाक्षर और उनका फल

इदानीमनभिहतानाह[1]—अकारास्वरसंयुक्तान्[2]न्यस्वरसंयोगवर्जितान् अक च ट त प य शादीन् ङ ञ ण न मांश्च प्रश्ने पतिताननभिहतान् ब्रुवन्ति। व्याधिपीडां[3] परवर्गे शोकसन्तापदुःखभयपीडांश्च निर्दिशेत्।

अर्थ—अब अनभिहत प्रश्नाक्षरों को कहते हैं—अकार स्वरसहित और अन्य स्वरों से रहित अ क च ट त प य श ङ ञ ण न म ये प्रश्नाक्षर हों तो अनभिहत प्रश्न होता है। यह अनभिहत प्रश्न स्ववर्गाक्षरों में हो तो व्याधि और पीड़ा एवं अन्य वर्गाक्षरों में हो तो शोक, सन्ताप, दुःख, भय और पीड़ा फल जानना चाहिये।

विवेचन—किसी-किसी के मत से प्रथम-पंचम, प्रथम चतुर्थ, द्वितीय-पंचम और तृतीय-पंचम वर्ग से संयुक्त वर्णों की अनभिहत संज्ञा बतायी गई है। चन्द्रोन्मीलन प्रश्न के अनुसार पूर्व और उत्तर वर्ग सयुक्त वर्णों की अनभिहत सज्ञा होती है और जब प्रश्नाक्षरों में केवल पंचमवर्ग के वर्ण हों तो उसे अघातन कहते हैं। अघातन प्रश्न का फल अत्यन्त अनिष्टकारक होता है। इस ग्रन्थ के अनुसार अनभिहत प्रश्न का फल रोग, शोक, दुःख, भय, धनहानि एवं सन्तानकष्ट होता है। जैसे—मोतीलाल प्रश्न पूछने आया, ज्योतिषीने उससे किसी फूल का नाम पूछा तो उसने चमेली का नाम लिया। चमेली प्रश्न वाक्य में अनभिहत प्रश्नाक्षर है या नहीं? यह जानने के लिये उपर्युक्त वाक्य का विश्लेषण किया तो प्रश्न वाक्य का प्रारम्भिक अक्षर 'च' है, इसमें अ स्वर और च् व्यञ्जन का संयोग है, द्वितीय अक्षर 'मे' में ए स्वर और म् व्यञ्जन का सयोग है तथ तृतीयाक्षर 'ली' में ई स्वर और ल् व्यञ्जन का सयोग है। इस विश्लेषण में अ+च+म् ये तीन वर्ण अनभिहत, ई अभिधूमित, ए आलिंगित और 'ल्' अभिहतसंज्ञक हैं। "परस्परम् अक्षराणि शोधयित्वा योऽधिकः स एव प्रश्नः" इस नियम के अनुसार यह प्रश्न अनभिहत हुआ, क्योंकि सबसे अधिक वर्ण अनभिहत वर्ग के हैं। किसी-किसी के मत से प्रथम वर्ण जिस प्रश्न का हो, वही प्रधान रूप से ले लिया जाता है। जैसे उपर्युक्त प्रश्न वाक्य में 'च' अक्षर में स्वर और व्यञ्जन दोनों ही अनभिहत प्रश्न के हैं अत. आगे वाले विश्लेषण पर विचार न कर उसे अनभिहत ही मान लिया जायगा।

---

१ तुलना—के० प्र० र० पृ० २८। के० प्र० स० पृ० ५। च० प्र० श्लो० ३५। केरलस० पृ० ५। ज्योतिषसं० पृ० ४ २ युक्त नि क० मु०। ३ स्ववर्गे परवर्गे व्याधिपीडितानां शोकसन्ताप दुःखभयपीडा निर्दिशेत क० मु०

अभिघातित प्रश्नाक्षर और उनका फल

अथाभिघातितानि—चतुर्थवर्गाक्षराण्युपरि प्रथमवर्गाक्षराण्यधः पातितान्यभिघातितानि भवन्ति घक, झच इत्यादि। पञ्चमवर्गाक्षराण्युपरि द्वितीयवर्गाक्षराण्यधः पातितान्यभिघातितानि भवन्ति ङ ख, ञ छ इत्यादि। अनेन पितृचिन्ता मृत्यु च निर्दिशेत्।

अर्थ—अभिघातित प्रश्नाक्षर कहते हैं। चतुर्थ वर्गाक्षर के ऊपर और प्रथम वर्गाक्षर के नीचे रहने पर परस्पर में परावर्तन हो जाने से अर्थात् चतुर्थ वर्गाक्षर के पूर्ववर्त्ती और प्रथम वर्गाक्षर के परवर्त्ती होने से अभिघातित प्रश्न होते हैं। जैसे घक, झच, ढट, भप, धत, वय इत्यादि। पचम वर्गाक्षर के ऊपर और द्वितीय वर्गाक्षर के नीचे रहने पर परस्पर में परावर्तन हो जाने से अर्थात् पचम वर्गाक्षर के पूर्ववर्त्ती और द्वितीय वर्गाक्षर के उत्तरवर्त्ती होने से अभिघातित प्रश्न होते हैं। जैसे ङख, ञच, णठ इत्यादि। इन अभिघातित प्रश्नों का फल पितासम्बन्धी चिन्ता और मृत्यु कहना चाहिये।

विवेचन—अभिघातित प्रश्न अत्यन्त अनिष्टकर होता है। इसका लक्षण भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न भिन्न प्रकार का बताया है। कोई चतुर्थ-प्रथम, तृतीय-द्वितीय और चतुर्थ-तृतीय वर्ग के वर्णों के प्रश्न श्रेणी में रहने पर अभिघातित प्रश्न कहते हैं, तथा अन्य किसी के मत से प्रश्नकर्त्ता कमर, हृदय, हाथ, पैर को मलता हुआ प्रश्न करे तो भी अभिघातित प्रश्न होता है। इस ग्रन्थानुसार यदि प्रश्नश्रेणी के सभी वर्ग चतुर्थ वर्गाक्षर और प्रथम वर्गाक्षर के हो अथवा पचम वर्गाक्षर और द्वितीय वर्गाक्षर के हो तो अभिघातित प्रश्न समझना चाहिये। जैसे मोहन प्रश्न पूछने आया, ज्योतिषी ने उससे किसी कपड़े का नाम पूछा तो उसने धोती का नाम बताया। मोहन के इस प्रश्न वाक्य में 'धो' वर्ग चतुर्थ वर्ग का और त प्रथम वर्ग का है अतः यह अभिघातित प्रश्न हुआ, इसका फल पिता की मृत्यु या पृच्छक की मृत्यु समझना चाहिये।

प्रश्नलग्नानुसार मृत्यु ज्ञात करने की विधि यह है कि प्रश्नलग्न[६] मेष, वृष, कर्क, धनु और मकर इन राशियों में से कोई हो और पाप ग्रह-क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मगल, शनि चौथे, सातवें और बारहवें भाव में हो अथवा मङ्गल, दूसरे और नौवें भाव में हो एव चन्द्रमा अष्टम भाव में हो तो पृच्छक की मृत्यु होती है। ज्योतिषी को प्रश्न का फल बतलाते समय केवल एक ही योग से मृत्यु का निर्णय नहीं करना चाहिए, बल्कि दो-चार योगों को विचार कर ही फल बतलाना चाहिये। यहा विशेष जानकारी के लिये दो-चार योगों के लक्षण दिये जाते हैं। प्रश्नलग्न में पापग्रहों का दुरुधरा योग हो, चन्द्रमा सातवें और चौथे भाव में स्थित हो सूर्य प्रश्नलग्न में स्थित हो और प्रश्न समय में राहुकाल समायोग[७] हो तो पृच्छक जिसके सम्बन्ध में प्रश्न पूछता है उसकी मृत्यु होती है। यदि प्रश्नकाल मे वैधृति, व्यतीपात, आश्लेषा, रेवती, कर्काश, विषघटी, दिन-मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि, पापग्रह युक्त नक्षत्र, सायङ्काल, प्रातःकाल और मध्याह्नकाल की सन्ध्या का समय, मासशून्य, तिथिशून्य, नक्षत्रशून्य हो तथा प्रश्नलग्न से क्षीणचन्द्रमा बारहवें और आठवें भाव में हो अथवा बारहवें और आठवें भाव पर शत्रुग्रह की दृष्टि हो एव राहु आठवी राशि को स्पर्श करे तो पृच्छक जिसके सम्बन्ध में पूछता है उसकी मृत्यु होती है। लग्नेश[८] और अष्टमेश का इत्थशाल योग हो, पापग्रह लग्नेश और अष्टमेश को देखते हों, अष्टम स्थान का स्वामी केन्द्र में हो, लग्नेश अष्टम स्थान में हो, चन्द्रमा छठवें स्थान में हो और सप्तमेश के साथ चन्द्रमा का इत्थशाल हो अथवा सप्तमेश छठवें स्थान में हो तो रोगी पुरुष के विषय में पूछे जाने पर उसकी मृत्यु होती है। यदि लग्नेश और चन्द्रमा का अशुभ ग्रहो के साथ

---

१ तुलना—के० प्र० स० पृ० ५। २ अभिघातित क० मू०। ३ वर्गाणि क० मू०। ४ पातितानीति पाठो नास्ति क० मू०। ५ अनेनेति पाठो नास्ति क० मू०। ६ बृ० पा० हो० पृ० ७४०। ७ बृ० पा० हो० पृ० ७४३-७४४। ८ प्र० वै० शा० पृ० ७।

इत्थशाल योग हो अथवा चन्द्रमा और लग्नेश केन्द्र और अष्टम स्थान में स्थित हों और चन्द्रमा शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तथा चन्द्रमा के साथ कोई शुभग्रह भी नहीं हो और लग्नेश अस्त हो अथवा लग्न का स्वामी सातवें भाव में स्थित हो तो रोगी की मृत्यु कहनी चाहिये। यदि लग्न में चन्द्रमा हो, बारहवें भाव में शनि हो, सूर्य आठवें भाव में और मङ्गल दसवें भाव में स्थित हों और बलवान् बृहस्पति लग्न में नहीं हों तो पृच्छक जिस रोगी के सम्बन्ध में प्रश्न करता है उसकी मृत्यु होती है। लग्न, चतुर्थ, पञ्चम और द्वादश इन स्थानों में पापग्रह हों तो रोग के नाश करनेवाले होते हैं। पर छठवें, लग्न, चौथे, सातवें और दसवें भाव में पापग्रहों के रहने से रोगी की मृत्यु होती है।

आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध प्रश्नोत्तर

अथालिङ्गितादीनि–अ इ ए ओ एते स्वरा उपरितः संयुक्ताक्षराण्यधः[1] क कि के को इत्याद्यालिङ्गितानि[2] भवन्ति। आ ई ऐ औ[3] एते चत्वार एतद्युक्त[4]व्यञ्जनाक्षराण्यभिधूमितानि[5] भवन्ति। उ ऊ अं अः, एतद्युक्तव्यञ्जनाक्षराणि[6] दग्धानि[7]।

अर्थ—अ इ ए ओ ये चार स्वर पूर्ववर्त्ती हों और सयुक्ताक्षर–व्यञ्जन परवर्ती हो तो आलिङ्गित प्रश्न होता है, जैसे क कि के को इत्यादि। आ ई ऐ औ ये चार स्वर व्यञ्जनों में संयुक्त हो तो अभिधूमित प्रश्न होता है और उ ऊ अ अः इन चार स्वरो से सयुक्त व्यञ्जन दग्धाक्षर कहलाते हैं।

विवेचन—प्रश्नाक्षर सिद्धान्त के अनुसार आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध प्रश्नो का ज्ञान तीन प्रकार से किया जाता है—प्रश्नवाक्य के स्वरो से, चर्या-चेष्टा से और प्रारम्भ के उच्चरित वाक्य से। यदि प्रश्नवाक्य के प्रारम्भ में या समस्त प्रश्नवाक्य में अधिकांश अ इ ए ओ ये चार स्वर हों तो आलिङ्गित प्रश्न, आ ई ऐ औ ये चार स्वर हो तो अभिधूमित प्रश्न और उ ऊ अ अः ये चार स्वर हो तो दग्ध प्रश्न होता है। आलिङ्गित प्रश्न होने पर कार्यसिद्धि, अभिधूमित होने पर धनलाभ, कार्यसिद्धि, मित्रागमन एव यशलाभ और दग्ध प्रश्न होने पर दुःख, शोक, चिन्ता, पीड़ा एव हानि होती है। जब पूछने वाला दाहिने हाथ से दाहिने अङ्ग को खुजलाते हुए प्रश्न करे तो आलिङ्गित प्रश्न; दाहिने अथवा बाँये हाथ से समस्त शरीर को खुजलाते हुए प्रश्न करे तो अभिधूमित प्रश्न और रोते हुए नीचे की ओर दृष्टि किये हुए प्रश्न करे तो दग्ध प्रश्न होता है। चर्या-चेष्टा का अन्तर्भाव प्रश्नाक्षर वाले सिद्धात में होता है, अतः प्रश्नवाक्य या प्रारम्भिक उच्चरित वाक्य से विचार करते समय चर्या–चेष्टा का विचार करना भी नितान्त आवश्यक है। इन आलिङ्गित, अभिधूमित इत्यादि प्रश्नों का सम्बन्ध प्रश्नशास्त्र से अत्यधिक है। आगे वाला समस्त विचार इन प्रश्नो से सम्बन्ध रखता है। गर्ग-मनोरमादि कतिपय प्रश्नग्रन्थों में आलिङ्गित काल, अभिधूमित काल और दग्ध काल इन तीन प्रकार के समयों पर से ही पिण्ड बनाकर प्रश्नो के उत्तर दिये गये हैं। यदि पूर्वाह्न[8] काल में प्रश्न किया जाय तो आलिङ्गित, मध्याह्न काल में किया जाय तो अभिधूमित और अपराह्न काल में किया जाय तो दग्ध प्रश्न कहलाता है। समय की यह संज्ञा भी प्रश्नाक्षर वाले सिद्धान्त से सम्बद्ध है। अतः विचारक को आलिङ्गितादि प्रश्नों के ऊपर विचार करते हुए पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न के सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिये। प्रधानरूप से फल बतलाने के लिये प्रश्नवाक्य के सिद्धान्त का ही अनुसरण करना चाहिये। उदाहरण—जैसे मोहन ने आकर पूछा कि 'मेरा कार्य सिद्ध होगा या नहीं? इस प्रारम्भिक उच्चरित वाक्य को प्रश्न-

१ अधः पाठो नास्ति–ता० मू०। २ चं० प्र० श्लो० ३६। के० प्र० र० पृ० २८। के० प्र० सं० पृ० ५। ३ आ इ ए ऐ–ता० मू०। ४ एत·····अक्षराणि–क० मू०। ५ के० प्र० र० पृ० २८। के० प्र० स० पृ० ६। ग० म० पृ० १। ६ व्यञ्जनानि–क० मू०। ७ के० प्र० र० पृ० २८। चं० प्र० श्लो० ३७–३८। के० प्र० सं० पृ० ६। ८ ग० म० पृ० १।

वाक्य मान कर इसका विश्लेषण किया तो—म्+ए+र्+आ+क्+आ+र्+य्+अ+स्+इ+द्+ध्+अ+ह्+ओ+ग्+आ यह स्वरूप हुआ। इसमें ए अ ह अ और ओ ये पाँच मात्राएँ आलिङ्गित और आ आ एवं आ ये तीन मात्राएँ अभिधूमित प्रश्न की हुई। पूर्वोक्त नियमानुसार परस्पर मात्राओं का संशोधन करने पर आलिङ्गित प्रश्न की मात्राएँ अधिक हैं अतः इसे आलिङ्गित प्रश्न समझना चाहिये। इस प्रश्न का धनलाभ एवं कार्यसिद्धि आदि फल बतलाना चाहिये।

प्रश्नलग्नानुसार लग्नेश और एकादशेश के सम्बन्ध का नाम ही आलिङ्गित प्रश्न है, क्योंकि लग्न[1] का स्वामी लेने वाला होता है और ग्यारहवें भाव का स्वामी देने वाला होता है अतः जब दोनों ही ग्रह एक स्थान में हो जायें तो लाभ और कार्यसिद्धि होती है। परन्तु इतना स्मरण रखना चाहिये कि पूर्वोक्त योग तभी सफल होगा जब ग्यारहवें भाव को चन्द्रमा देखता हो क्योंकि सभी राजयोगादि उत्कृष्ट योग चन्द्रमा की दृष्टि के बिना सफल नहीं हो सकते हैं। ग्यारहवें भाव[2] का स्वामी, दसवें भाव का स्वामी, सातवें भाव का स्वामी और आठवें भाव का स्वामी, इन ग्रहों के एवं लग्न भाव के स्वामी के सम्बन्ध का नाम अभिधूमित प्रश्न है। उपर्युक्त ग्रहों के बलाबल से उक्त स्थानों का वृद्धि-ह्रास अवगत करना चाहिये।

यदि लग्न का स्वामी छठवें भाव में अवस्थित हो और छठवें भाव का स्वामी आठवें भाव में स्थित हो तो दग्ध प्रश्न होता है। इसका फल अत्यन्त अनिष्टकर होता है।

उत्तर और अधर प्रश्नाक्षरों का फल

गाथा—

जे अक्खराणि भिहियाँ[3] पण्हादि सत्ति उत्तरा चाहु।
याता जाण सयललाहो अहरो हंसज्जुए विद्धिं[4] ॥

अर्थ—पहले उत्तरोत्तरोत्तरोत्तर, उत्तरोत्तरोत्तर, उत्तरोत्तर, उत्तरोत्तराधर आदि जो दस भेद प्रश्नों के कहे गये हैं, उनमें उत्तर प्रश्नाक्षर वाले प्रश्न में सब प्रकार से लाभ होता है और अधर प्रश्नाक्षर वाले प्रश्न में हानि–अशुभ होता है।

विवेचन—पृच्छक के प्रश्नाक्षरों के आदि में उत्तर स्वरवर्ण हो तो वर्तमान में शुभ, अधर हो तो अशुभ; उत्तरोत्तर स्वर वर्ण हो तो राजसम्मानप्राप्ति, अधराधर स्वर वर्ण हो तो रोगप्राप्ति, उत्तराधर स्वर वर्ण हो तो सामान्यतः सुखप्राप्ति, उत्तराधिक स्वर वर्ण हो तो धन धान्य की प्राप्ति; अधराधिक स्वर वर्ण हो तो धन-हानि एव अधराधराधर स्वर वर्ण हो तो महाकष्ट कहना चाहिये। आचार्य ने उपर्युक्त गाथा में 'उत्तरा' शब्द के द्वारा पाँचों प्रकार के उत्तरप्रश्नों का ग्रहण कर शुभ फल बताया है और 'अहरो' शब्द के द्वारा पाँचों प्रकार के अधरप्रश्नों का ग्रहण कर निकृष्ट फल कहा है। तात्पर्य यह है कि यहाँ सामान्यतः एक ही उत्तर से उत्तर शब्द संयुक्त सभी उत्तरों का ग्रहण किया है, इसी प्रकार अधर प्रश्नों को भी समझना चाहिये।

प्रश्नशास्त्र के अन्य ग्रन्थों में उत्तर और अधर प्रश्नों के भेद-प्रभेद कर विभिन्न प्रकारों से फलों का निरूपण किया गया है। तथा गमनागमन, हानि-लाभ, जय-पराजय, सफलता-असफलता, आदि प्रश्नों के उत्तरों में उत्तर स्वर सयुक्त प्रश्नों को श्रेष्ठ और अधर स्वर सयुक्त प्रश्नों को निकृष्ट कहा है।

उपसंहार

एभिरष्टभिः प्रकारैः प्रश्नाक्षराणि शोधयित्वा पुनरुत्तराधरविभागं कुर्यात्।

अर्थ—इन सयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत आदि आठ प्रकार के प्रश्नों का शोधकर उत्तर, अधर और अधरोत्तरादि का विभाग कर प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये।

---

१ भु० दी० पृ० ५९। २ भु० दी० पृ० ५९। ३ भणिदा–ता० मू०। ४ णिद्धि–क० मू०।

गाथा—

अहरोत्तर-वग्गोत्तर वग्गेण य संयुत्तं अहरं।
जाणइ पण्णायंसो जाणइ ते हावणं सयलं ॥

अर्थ—अधरोत्तर, वर्गोत्तर और वर्गसंयुक्त अधर इन भंगों के द्वारा जो प्रश्न को जानता है वह सभी पदार्थों को जानता है अर्थात् उपर्युक्त तीनों भंगों द्वारा संसार के सभी प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है।

उत्तर के नौ भेद और उनके लक्षण

उत्तरा नवविधाः[1]—उत्तरोत्तरः, उत्तराधरः, अधरोत्तरः, अधराधरः, वर्गोत्तरः, अक्षरोत्तरः, स्वरोत्तरः, गुणोत्तरः, आदेशोत्तरश्चेति। अकवर्गावुत्तरोत्तरौ। चटवर्गावुत्तराधरौ। तपवर्गावधरोत्तरौ। यशवर्गावधराधरौ। अथ वर्गोत्तरौ प्रथमतृतीयवर्गौ। द्वितीयचतुर्थवर्गावक्षरोत्तरौ[3]। पञ्चमवर्गोऽप्युभयपक्षाभ्यामेकान्तरितभेदेन वर्गोत्तरौ वर्गाधरौ च ज्ञातव्यौ। क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श सा एतान्येकोनविंशत्यक्षराण्युत्तराणि भवन्ति।

शेषाः ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष हाश्चतुर्दशाक्षराण्यधराणि भवन्ति। अ[4] इ उ ए ओ अं एतानि षडक्षराणि स्वरोत्तराणि भवन्ति। आ ई ऊ ऐ औ अः, एतानि षडक्षराणि स्वराधराणि भवन्ति। अ च त याः[6] गुणोत्तराः। क ट प य शाः गुणाधराः[7]। ङ ज द लाः गुणोत्तराः[8]। ग ड ब हाः गुणाधराः[9] भवन्तीति गुणोत्तराः।

अर्थ—उत्तर के नौ भेद हैं—उत्तरोत्तर, उत्तराधर, अधरोत्तर, अधराधर, वर्गोत्तर, अक्षरोत्तर, स्वरोत्तर, गुणोत्तर और आदेशोत्तर। अ और चवर्ग उत्तरोत्तर; चवर्ग और टवर्ग उत्तराधर; तवर्ग और पवर्ग अधरोत्तर और यवर्ग और शवर्ग अधराधर होते हैं। प्रथम और तृतीय वर्गवाले अक्षर वर्गोत्तर, द्वितीय और चतुर्थ वर्गवाले अक्षर अधरोत्तर एव पञ्चम वर्गवाले अक्षर दोनों—प्रथम और तृतीय के साथ मिला देने से क्रमशः वर्गोत्तर और वर्गाधर होते हैं। क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स ये १९ वर्ण उत्तरसज्ञक, शेष ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह ये १४ वर्ण अधर सज्ञक, अ इ उ ए ओ अं ये ६ वर्ण स्वरोत्तरसंज्ञक; अ च त य ङ ज द ल ये ८ वर्ण गुणोत्तर सज्ञक और क ट प श ग ड ब ह ये ८ वर्ण गुणाधरसज्ञक होते हैं।

विवेचन—प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षरों का पहले कहे गये संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत, अभिघातित, आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध इन आठ प्रकारो से विचार करना चाहिये। किन्तु इनमें भी सूक्ष्म रीति से प्रश्न का विचार करने के लिये उत्तरोत्तर, उत्तराधर, अधरोत्तर आदि उपर्युक्त नौ भेदो के अनुसार प्रश्नाक्षरों का विचार करना परमावश्यक है। प्रश्न का वास्तविक उत्तर निकालने के लिये आलिङ्गित (पूर्वाह्णकाल), अभिधूमित (मध्याह्न) और दग्ध (अपराह्ण) इन तीनो कालो में गणित क्रिया द्वारा निम्न प्रकार से पिण्ड बनाकर उत्तर देना चाहिये।

---

१ "उत्तरा विषमा वर्गाः समा वर्गाष्टकेऽधराः। स्वेषूत्तरोत्तरौ ज्ञेयौ पूर्ववच्चाधराधरौ॥"—के० प्र० र० पृ० ४। २ के० प्र० र० पृ० ५–६। च० प्र० श्लो० १८, २७–३०। ३ वर्गावधरोत्तरौ—क० मू०। ४ इदानी स्वरोत्तरं वक्ष्यामः-अ इ उ ए ओ अं ६ उत्तराः।—ता० मू०। ५ आ ई ऊ ऐ औ अः अधराः—ता० मू०। ६ अथ गुणोत्तराः-अ च त याः—ता० मू०। ७ अधराः—ता० मू०। ८ उत्तराः—ता० मू०। ९ अधराः—ता० मू०।

आलिङ्गित (पूर्वाह्न) काल में पिण्ड बनाने की विधि

यदि आलिङ्गित काल का प्रश्न हो तो वर्ग संख्यासहित वर्ण की संख्या को वर्ग सख्यासहित स्वर की संख्या से गुणा करने पर जो गुणनफल आये वही पिण्ड होता है।

(१) स्वरसंख्याचक्र

अ	=१	ई	=४	ऋ	=७	लृ	=१०	ओ	=१३
आ	=२	उ	=५	ॠ	=८	ए	=११	औ	=१४
इ	=३	ऊ	=६	लृ	=९	ऐ	=१२	अं	=१५
								अः	=१६

(२) वर्गसंख्याचक्र

अवर्ग	=१
कवर्ग	=२
चवर्ग	=३
टवर्ग	=४
तवर्ग	=५
पवर्ग	=६
यवर्ग	=७
शवर्ग	=८

(३) केवलवर्णसंख्याबोधकचक्र

क=१,	ख=२,	ग=३,	घ=४,	ङ=५
च=१,	छ=२,	ज=३,	झ=४,	ञ=५
ट=१,	ठ=२,	ड=३,	ढ=४,	ण=५
त=१,	थ=२,	द=३,	ध=४,	न=५
प=१,	फ=२,	ब=३,	भ=४,	म=५
य=१,	र=२,	ल=३,	व=४	
श=१,	ष=२,	स=३,	ह=४	

(४) वर्गसंख्यासहित स्वरों और वर्णों के ध्रुवाङ्क

अवर्ग १	अ २, आ ३, इ ४, ई ५, उ ६, ऊ ७, ऋ ८, ॠ ९, लृ १०, लॄ ११, ए १२, ऐ १३, ओ १४, औ १५, अं १६, अः १७,
कवर्ग २	क् ३, ख् ४, ग् ५, घ् ६, ङ् ७,
चवर्ग ३	च् ४, छ् ५, ज् ६, झ् ७, ञ् ८,
टवर्ग ४	ट् ५, ठ् ६, ड् ७, ढ् ८, ण् ९,
तवर्ग ५	त् ६, थ् ७, द् ८, ध् ९, न् १०,
पवर्ग ६	प् ७, फ् ८, ब् ९, भ् १०, म् ११,
यवर्ग ७	य् ८, र् ९, ल् १०, व् ११,
शवर्ग ८	श् ९, ष् १०, स् ११, ह् १२, त्र् १३, क्ष् १४, ज्ञ् १५,

उदाहरण–जैसे मोतीलाल ने प्रातःकाल ७½ बजे प्रश्न किया कि हमारे घर में पुत्र होगा या कन्या? यह प्रश्न पूर्वाह्न में होने के कारण आलिङ्गित काल का है। इसलिये पृच्छक से फल का नाम पूछा तो उसने अनार का नाम लिया। पृच्छक के इस प्रश्नवाक्य का विश्लेषण = (अ + न् + आ + र् + अ) हुआ: यहाँ

दो व्यञ्जन (जिन्हें वर्ण कहा गया है) और तीन स्वर हैं इसलिये चौथे चक्र की वर्गसंख्या सहित वर्णसंख्या (१० + ९) = १९ को वर्ग संख्या सहित स्वर संख्या (२ + ३ + २) = ७ से गुणा किया तो १९ × ७ = १३३ पिण्डसंख्या हुई। इसमें निम्न प्रकार अपने अपने विकल्पानुसार भाग देने पर फलाफल होता है—**सिद्धि-असिद्धिविषयक** प्रश्न के पिण्ड में २ का भाग देने से १ शेष बचे तो कार्यसिद्धि और शून्य बचे तो असिद्धि, **लाभालाभविषयक प्रश्न** के पिण्ड में २ का भाग देने से १ शेष में लाभ और शून्य शेष में हानि; **दिशा-विषयक** प्रश्न के पिण्ड में ८ का भाग देने से एकादि शेष में क्रमशः पूर्वादि दिशा, सन्तानविषयक प्रश्न के पिण्ड में ३ का भाग देने से १ शेष में पुत्र, २ शेष में कन्या और शून्य शेष में नपुंसक एवं **कालविषयक प्रश्न** के पिण्ड में ३ का भाग देने से १ शेष में भूत, २ शेष में वर्तमान और शून्य शेष में भविष्यत्काल समझना चाहिये। उपर्युक्त उदाहरण में सन्तानविषयक प्रश्न होने के कारण पिण्ड में ३ का भाग दिया—१३३ ÷ ३ = ४४ भागफल और शेष १ रहा, अतः इसका फल पुत्रप्राप्ति समझना चाहिये।

अभिधूमित काल में पिण्ड बनाने की विधि

अभिधूमित काल का प्रश्न हो तो केवल स्वर संख्या को केवल वर्ण संख्या से गुणा करने पर पिण्ड होता है।

उदाहरण—मोतीलाल ने अभिधूमित (मध्याह्न) समय में पूछा कि मुझे व्यापार में लाभ होगा या नहीं? मध्याह्न का प्रश्न होने से उससे फल का नाम पूछा तो उसने सेव का नाम बताया। पृच्छक मोतीलाल के प्रश्नवाक्य का विश्लेषण (स् + ए + व् + अ) यह हुआ। इसमें स् + व् ये दो वर्ण (व्यञ्जन) और ए + अ ये दो स्वर हैं। प्रथम और तृतीय चक्र के अनुसार क्रमशः वर्ण और स्वर संख्या (३ + ४) = ७ व्यञ्जन संख्या और (११ + १) = १२ स्वर संख्या हुई। इनका परस्पर गुणा करने से १२ × ७ = ८४ पिण्ड हुआ; लाभालाभ विषयक प्रश्न होने के कारण पिण्ड में २ का भाग दिया तो—८४ ÷ २ = ४२ लब्ध, शेष शून्य रहा, अतः इस प्रश्न का फल हानि समझना चाहिये।

दग्ध काल में पिण्ड बनाने की विधि

यदि दग्ध (पराह्ण) काल का प्रश्न हो तो केवल वर्ग की संख्या को वर्ण (व्यञ्जन) की संख्या से गुणा कर गुणनफल में स्वरों और वर्णों की संख्या मिलाने पर पिण्ड होता है।

उदाहरण—मोतीलाल ने दग्ध काल में आकर पूछा कि मैं परीक्षा में उत्तीर्ण होऊँगा या नहीं? इस प्रश्न में भी उससे फल का नाम पूछा तो उसने दाडिम कहा। इस प्रश्न वाक्य का (द् + आ + ड् + इ + म् + अ) यह विश्लेषण हुआ, द्वितीय चक्रानुसार वर्ग संख्या (त ५ + ट ४ + प ६) = १५ हुई तथा तृतीय चक्रानुसार वर्ण संख्या (द् ३ + ड् ३ + म् ५) = ११ हुई। इन दोनों का परस्पर गुणा किया तो ११ × १५ = १६५ हुआ, इसमें प्रथम चक्रानुसार स्वर संख्या (आ २ + इ ३ + अ १) = ६ जोड़ दी तो १६५ + ६ = १७१ हुआ, इस योगफल में वर्ण संख्या (द् ३ + ड् ३ + म् ५) = ११ मिलाया तो १७१ + ११ = १८२ पिण्ड हुआ। कार्यसिद्धि विषयक प्रश्न होने के कारण २ से भाग दिया तो १८२ ÷ २ = ९१ लब्ध और शेष शून्य रहा। अतएव इस प्रश्न का फल परीक्षा में अनुत्तीर्ण होना हुआ।

आदेशोत्तर और उनका फल

अथादेशोत्तराः-पृच्छकस्य वाक्याक्षराणि प्रथमतृतीयपञ्चमस्थाने, उत्तराः, द्वितीयचतुर्थेऽधराः। यदि दीर्घमक्षरं प्रश्ने प्रथमतृतीयपञ्चमस्थाने दृष्टं तदेव लाभकरं स्यात्, शेषा अलाभकराः स्युः।

जीवितमरणं लाभालाभं साधयन्तीति साधकाः[1]। अ इ ए ओ एते तिर्यङ्मात्र-मूलस्वराः[2]। तिर्यङ्मात्राः तिर्यग्द्रव्यमधोमात्राः अधोद्रव्यमूर्ध्वमात्राः, ऊर्ध्वद्रव्यं तिष्ठन्तीति कथयन्तीत्यादेशोत्तराः।

अर्थ—आदेशोत्तर कहते हैं कि प्रश्नकर्त्ता के प्रथम, तृतीय और पञ्चमस्थान के वाक्याक्षर उत्तर एवं द्वितीय और चतुर्थ स्थान के वाक्याक्षर अधर कहलाते हैं। यदि प्रश्न में दीर्घाक्षर प्रथम, तृतीय और पञ्चम स्थान में हो तो लाभ कराने वाले होते हैं, शेष स्थानों में रहने वाले दीर्घाक्षर अथवा उपर्युक्त स्थानों में रहने वाले ह्रस्व और प्लुताक्षर अलाभ (हानि) करानेवाले होते हैं। साधक इन प्रश्नाक्षरों पर से जीवन, मरण, लाभ और अलाभ आदि को अवगत कर सकते हैं। अ इ ए ओ ये चार तिर्यङ्मात्रिक मूल स्वर हैं। तिर्यङ्मात्रिक प्रश्न में तिर्यङ्-तिरछे स्थान में द्रव्य, अधोमात्रिक प्रश्न में अधः स्थान में द्रव्य और ऊर्ध्व मात्रिक प्रश्न में ऊर्ध्वस्थान में द्रव्य है, इस प्रकार का प्रश्न फल जानना चाहिये।

विवेचन—प्रश्नाक्षरो के नाना विकल्प करके फल का विचार करना चाहिये। पूर्वोक्त उत्तर, अधर, उत्तराधर आदि नौ भेदो का विचार कर सूक्ष्म फल निकालने के लिये आदेशोत्तर का भी विचार करना आवश्यक है। पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में प्रथम, तृतीय और पञ्चम स्थान की उत्तर, द्वितीय और चतुर्थ की अधर एव अ इ ए ओ इन चार ह्रस्व मात्राओ की तिर्यङ् सज्ञा बतायी है। ग्रन्थान्तरों के अनुसार आ ई ऐ औ की अधो संज्ञा तथा इन्हीं प्लुत स्वरों की ऊर्ध्व सज्ञा है। यदि प्रश्नाक्षरों में प्रथम, तृतीय और पञ्चम स्थान में दीर्घ अक्षर हो तो लाभकारक तथा शेष स्थानो मे हो तो हानिकारक होते हैं। ऊर्ध्व, अधः और तिर्यङ् आदि के विचार के साथ पहले बताये गये सयुक्त, असयुक्त आदि का भी विचार करना चाहिये। प्रश्न का साधारणतया फल बतलाने के लिये नीचे एक सरल विधि दी जा रही है।

चक्र स्थापन

१	२	३
६	५	४
७	८	९

इस चक्र के अङ्को पर अगुली रखवाना चाहिये यदि पृच्छक आठ और दो के अक पर अगुली रखे तो कार्याभाव, छः और चार के अक पर अगुली रखे तो कार्यसिद्धि; सात और तीन के अंक पर अंगुली रखे तो बिलम्ब से कार्य-सिद्धि एव नौ, एक और पांच के अङ्क पर अंगुली रखे तो शीघ्र ही कार्यसिद्धि फल कहना चाहिये।

प्रश्न निकालने का अनुभूत नियम

प्रश्नकर्त्ता से प्रातःकाल में पुष्प का नाम, मध्याह्न में फल का नाम, अपराह्न में देवता का नाम और सायंकाल में तालाब या नदी का नाम पूछना चाहिए। इन उच्चरित प्रश्नाक्षरो पर से पिण्ड बना कर अपने अपने अनुभवाक के अनुसार प्रश्न का उत्तर देना चाहिये।

पिण्ड बनाने की विधि

पहले प्रश्न वाक्य के स्वर और व्यञ्जनों का विश्लेषण करना चाहिये। फिर स्वर और व्यञ्जनों के अध-राङ्को के योग में भिन्न-भिन्न प्रश्नो के अनुसार भिन्न-भिन्न क्षेपक जोड़ देने पर पिण्ड होता है।

---

१ "अथाशंकविकटो वक्ष्यामः। लाभालाभं ज्ञानं साधयतीति साधकाः"—क० मू० २ तिर्यङमात्राः मूलस्वराः—ता० मू०।

स्वर और व्यञ्जनों का ध्रुवांक बोधक चक्र

अ	१२	क	१३	ठ	१३	ब	२६
आ	२१	ख	१२	ड	२२	भ	२७
इ	११	ग	२१	ढ	३५	म	८६
ई	१८	घ	३०	ण	४५	य	१६
उ	१५	ङ	१०	त	१४	र	१३
ऊ	२२	च	१५	थ	१८	ल	१३
ए	१८	छ	२१	द	१७	व	३५
ऐ	३२	ज	२३	ध	१३	श	२६
ओ	२५	झ	२६	न	३५	ष	३५
औ	१९	ञ	२६	प	२८	स	३५
अ	२५	ट	१७	फ	१८	ह	१२

क्षेपक और भाजक बोधक चक्र

कार्यसम्बन्धी प्रश्न	क्षेपक	भाजक
लाभालाभसम्बन्धी प्रश्न	४२	३
जयपराजयसम्बन्धी प्रश्न	३४	३
सुख-दु:खसम्बन्धी प्रश्न	३८	२
यात्रासम्बन्धी प्रश्न	३३	३
जीवनमरणसम्बन्धी प्रश्न	४०	३
तीर्थयात्रासम्बन्धी प्रश्न	३९	३
वर्षासम्बन्धी प्रश्न	३२	३
गर्भसम्बन्धी प्रश्न	२६	३

प्रश्नों का फलावबोधक चक्र

प्रश्न	शेष	फल	शेष	फल	शेष	फल
लाभालाभसम्बन्धी प्रश्न	१	पूर्ण लाभ	२	अल्पलाभ	शून्य	हानि
जयपराजयसम्बन्धी प्रश्न	१	जय	२	सन्धि	शून्य	पराजय
सुख दु:खसम्बन्धी प्रश्न	१	सुख	शून्य	दु:ख	×	×
यात्रासम्बन्धी प्रश्न	१	यात्रा	२	विलम्ब से	शून्य	यात्राहानि
जीवनमरणसम्बन्धी प्रश्न	१	जीवित	२	कष्ट में	शून्य	मरण
तीर्थयात्रासम्बन्धी प्रश्न	१	यात्रा	२	मध्यम	शून्य	अभाव
वर्षासम्बन्धी प्रश्न	१	वर्षा	२	मध्यम	शून्य	अनावृष्टि
गर्भसम्बन्धी प्रश्न	१	गर्भ है	२	संशय	शून्य	नहीं है

उदाहरण—जैसे मोतीलाल ने प्रश्न पूछा कि अजमेर में रहने वाला मेरा सम्बन्धी बहुत बीमार था, वह जीवित है या नहीं? इस प्रश्न में उसके मुख से या किसी बालक के मुख से फल का नाम उच्चारण कराया तो बालक ने आम का नाम लिया। इस प्रश्नवाक्य का विश्लेषण (आ+म्+अ) है इसमें दो स्वर और एक व्यञ्जन है अतः प्रथम चक्र के अनुसार अ=१२, आ=२१ और म्=८६ के है अतः १२+२१+८६=११९ योगफल में द्वितीय चक्र के अनुसार क्षेपक ४० जोड़ा तो ११९+४०=१५९ हुआ; इसमें जीवनमरणसम्बन्धी भाजक ३ का भाग दिया तो १५९÷३=५३ लब्ध और शेष शून्य रहा। तृतीयचक्र के अनुसार इसका फल मरण जानना चाहिये। इसी प्रकार विभिन्न प्रश्नों के अनुसार पिण्ड बनाकर अपने-अपने भाजक का भाग देने पर शेष के अनुसार फल बतलाना चाहिये।

योनिविभाग

गाथा—आ इ आ तिण्णि सरा सत्तमनमो य बारसा जीवं[1]।
पंचमछट्ठउमारा मदाउं सेसेसु तिसु मूलं[2] ॥ १ ॥
जीवक्खरेक्केवीसा दी (ते) रहदव्वक्खरं मुणेयव्वं।
एयार मूलगणिया एमिणिया पक्कालया सव्वे ॥ २ ॥

अर्थ—अ इ आ ये तीन स्वर तथा सप्तम—ए, नवम—ओ और बारहवाँ स्वर—अः ये छः स्वर जीव सज्ञक, पञ्चम—उ, छठवाँ—ऊ और ग्याहवाँ स्वर—अं ये तीन स्वर धातुसंज्ञक और अवशेष तीन स्वर—ई ऐ औ मूल सज्ञक हैं। २१ अक्षर जीव सज्ञक, १३ अक्षर द्रव्य—धातु संज्ञक और ११ अक्षर मूलसज्ञक होते हैं। इन सब अक्षरों का प्रश्न काल में विचार करना चाहिये।

तत्र त्रिविधो योनिः। जीवधातुमूलमिति[3]। अ आ इ ए ओ अः इत्येते जीवस्वराः षट्। क ख ग घ, च छ ज झ, ट ठ ड ढ, य श हा इति पञ्चदशव्यञ्जनाक्षराणि च जीवाक्षराणि[4] भवन्ति। उ ऊ अं इति त्रयः स्वराः, त थ द ध, प फ ब भ, वसा इति त्रयोदशाक्षराणि धात्वक्षराणि भवन्ति। ई ऐ औ इति त्रयः स्वराः-ङ ञ ण न म र ल षा इत्येकादशाक्षराणि मूलानि भवन्ति।

---

१ "प्रथम च द्वितीय च तृतीयं चैव सप्तमम्। नवम चान्तिमं चैव षट् स्वराः समुदाहृताः ॥"—च० प्र० श्लो० ४२। २ "उ ऊ अमिति मात्राणि त्रीणि धातून्यथाक्षरैः ॥ यथा उ ऊ अं। अन्ये चैव स्वराः शेषा मूले चैव नियोजयेत्। यथा ई ऐ औ।"—के० प्र० श्लो० ४३। एकद्वित्रिनवान्त्यसप्तममिता जीवा. स्वरा उ ऊ अम्। धातुमूलमितोऽवशेषमथभूहस्तास्त्रिचन्द्रामवा. ॥—के० प्र० र० पृ० ७; शिरः-स्पर्शे तु जीवः स्यात्पादस्पर्शे तु मूलकम्। धातुश्च मध्यमस्पर्शे शारदावचनं तथा ॥"—के० प्र० सं० पृ० ११। ३ द्रष्टव्यम्—के० प्र० र० पृ० ४१ ४३। प्र० भू० पृ० १८। के० प्र स० पृ० १८। प्र० वै० पृ० १०५। ग० म० पृ० ५। ४ "चत्वारः कचटादितश्च यशहाः स्युर्जीवसंज्ञा रषौचत्वारश्च तपादितोऽक्षरगणं धातोः परं मूलके ॥"—के० प्र० र० प० ६। के० प्र० स० पृ० ६–७। चं० प्र० श्लो० ३९-४१। प्र० को० पृ० ५। लग्न-ग्रहानुसारेण जीवधातुमलादिविवेचनं निम्नलिखितग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—भु० दी० पृ० २१–२२। ष० प० भ० टी० पृ० ८–९। ज्ञा० प्र० पृ० १७। प्र० वै० पृ० १०५। प्र० सि० पृ० २८। दै० व० पृ० ३९–४०। प्र० कु० पृ० १०–११। पं० प० पृ० १२। ता० नी० पृ० ३२२। न० ज० पृ० १०३।

अर्थ—योनि के तीन भेद हैं—जीव, धातु और मूल । अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः इन बारह स्वरों में से अ आ इ ए ओ अः ये स्वर तथा क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह ये पन्द्रह व्यञ्जन इस प्रकार कुल २१ वर्ण जीवसञ्ज्ञक; उ ऊ अं ये तीन स्वर तथा त थ द ध प फ ब भ व स ये दस व्यञ्जन इस प्रकार कुल १३ वर्ण धातुसंज्ञक और ई ऐ औ ये तीन स्वर तथा ङ ञ ण न म ल र ष ये आठ व्यञ्जन इस प्रकार कुल ११ वर्ण मूलसञ्ज्ञक होते हैं।

जीवादिसंज्ञा बोधक चक्र

जीवाक्षर २१	क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह अ आ इ ए ओ अः
धात्वक्षर १३	त थ द ध प फ ब भ व स उ ऊ अं
मूलाक्षर ११	ङ ञ ण न म ल र ष ई ऐ औ

योनि निकालने की विधि

प्रश्ने जीवाक्षराणि धात्वक्षराणि मूलाक्षराणि च परस्परं शोधयित्वा तत्र योऽधिकः स एव योनिः। अभिधूमितालिङ्गितश्चेत्[1] मूलं दग्धालिङ्गिताभिधूमितश्चेत् धातुः, आलिङ्गिताभिधूमितदग्धश्चेत् जीवः ।

अर्थ—प्रश्नाक्षरों में से जीवाक्षर, धात्वक्षर और मूलाक्षरों के परस्पर घटाने पर जिसके वर्णों की संख्या अधिक शेष रहे वही योनि होती है। आचार्य योनि जानने का दूसरा नियम बताते हैं कि अभिधूमित और आलिङ्गित प्रश्नाक्षर हों तो मूल योनि, दग्ध, आलिङ्गित और अभिधूमित प्रश्नाक्षर हों तो धातु योनि और आलिङ्गित, अभिधूमित एव दग्धाक्षर प्रश्न के वर्ण हों तो जीवयोनि होती है।

विवेचन—प्रश्न दो प्रकार के होते हैं-मानसिक और वाचिक। वाचिक प्रश्न में प्रश्नकर्ता जिस बात को पूछना चाहता है उसे ज्योतिषी के सामने प्रकट कर उसका फल ज्ञात करता है। लेकिन मानसिक प्रश्न में पृच्छक अपने मन की बात नहीं बतलाता है, केवल प्रतीक-फल, पुष्प, नदी आदि नाम के द्वारा ही ज्योतिषी उसके मन की बात बतलाता है। संसार में प्रधानरूप से तीन प्रकार के पदार्थ होते हैं—जीव, धातु और मूल। मानसिक प्रश्न भी मूलतः उपर्युक्त तीन ही प्रकार के होते हैं। आचार्यों ने सुविधा के लिये इनका नाम तीन प्रकार की योनि-जीव, धातु और मूल रखा है। कभी-कभी धोका देने के लिये भी पृच्छक आते हैं, अतः सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये लग्न बनाकर निम्न प्रकार से वास्तविक बात का ज्ञान करना चाहिये। **"पृच्छालग्ने यदि चन्द्रशनी स्यातां तथा कुम्भे रविः, बुधोऽस्तमितश्च तदा ज्ञेयमयं पृच्छकः कपटतयाऽऽगतोऽस्ति; अन्यथा सत्यतयेति"** अर्थात् यदि प्रश्न लग्न में चन्द्रमा और शनिश्चर हों, कुम्भ राशि का रवि हो और बुध अस्त हो तो पृच्छक को कपट रूप से आया हुआ समझना चाहिये और लग्न की स्थिति इससे विलक्षण हो तो उसे वास्तविक पृच्छक समझना चाहिये। वास्तविक पृच्छक के प्रतीक सम्बन्धी प्रश्नाक्षर जीवयोनि के हों तो जीवसम्बन्धी चिन्ता, धातु योनि के हों तो धातुसम्बन्धी चिन्ता और

---

१ अभिधूमितालिंगितदग्धं चेत् मल-क० मू० ।

मूलयोनि के होने पर मूलसम्बन्धी चिन्ता–मनस्थित विचारधारा समझनी चाहिये। योनियों का विशेष ज्ञान निम्न प्रकार से भी किया जा सकता है—

१–दिनमान में तीन का भाग देने से लब्ध एक-एक भाग की उदयवेला, मध्यवेला एवं अस्तङ्गतवेला ये तीन संज्ञाएँ होती हैं। उदयवेला में तीन का भाग देने पर प्रथमभाग में जीवसम्बन्धी प्रश्न, द्वितीय-भाग में धातुसम्बन्धी प्रश्न और तृतीय भाग में मूलसम्बन्धी प्रश्न जानना चाहिये। मध्यवेला में तीन का भाग देने से क्रमशः धातु, मूल और जीवसम्बन्धी चिन्ता और अस्तङ्गतवेला में तीन का भाग देने से क्रमशः मूल, जीव एवं धातुसम्बन्धी चिन्ता समझनी चाहिये। जैसे—किसी ने आठ बजे प्रातःकाल आकर प्रश्न किया, इस दिन का दिनमान ३३ घटी है, इसमें तीन का भाग देने से ११ घटी उदयवेला, ११ घटी मध्यवेला और ११ घटी अस्तङ्गतवेला का प्रमाण हुआ। ११ घटी प्रमाण उदयवेला में तीन का भाग दिया तो ३ घटी ४० पल एक भाग का प्रमाण हुआ। पूर्वोक्त क्रिया के अनुसार ८ बजे प्रातःकाल का इष्टकाल ६ घटी ३० पल है, यह इष्टकाल उदयवेला के द्वितीयभाग के भीतर है अतः इसका फल धातुसम्बन्धी चिन्ता जानना चाहिये। इसी प्रकार मध्य और अस्तङ्गतवेला के प्रश्नों का ज्ञान करना चाहिये।

२–प्रश्नकर्ता से कोई इष्टाङ्क पूछ कर उसे दूना कर, एक और जोड़ दे, फिर इस योगफल में तीन का भाग देकर शेष अंकों के अनुसार फल कहे अर्थात् एक शेष में जीवचिन्ता, दो शेष में धातुचिन्ता और तीन शेष में—शून्य में मूलसम्बन्धी चिन्ता समझनी चाहिये। जैसे—मोहन प्रश्न पूछने आया। ज्योतिषी ने उससे कोई अंक पूछा, उसने १० का अंक बताया। उपर्युक्त नियम के अनुसार १०×२+१=२१,२१÷३=७ लब्ध, शेष शून्य रहा; अतः शून्य में मूलसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये।

३–जिस समय प्रश्नकर्ता आवे उस समय का इष्टकाल बनाकर दूना करे और उसमें एक जोड़कर तीन का भाग देने पर एक शेष में जीवचिन्ता, दो शेष में धातुचिन्ता, तीन शेष—शून्य में मूलचिन्ता कहनी चाहिये। जैसे—मोहन ने आठ बजे आकर प्रश्न किया, इस समय का इष्टकाल पूर्वोक्त विधि के अनुसार ६ घटी ३० पल हुआ, इसे दूना किया तो १३ घटी हुआ, इसमें एक जोड़ा तो १३+१=१४ आया, पूर्वोक्त नियमानुसार तीन का भाग दिया तो १४÷३=४ लब्ध और २ शेष रहा, इसका फल धातुचिन्ता है।

४–पृच्छक पूर्व की ओर मुँह करके प्रश्न करे तो धातुचिन्ता, दक्षिण की ओर मुँह करके प्रश्न करे तो जीवचिन्ता, उत्तर की ओर मुँह करके प्रश्न करे तो मूलचिन्ता और पश्चिम की ओर मुँह करके प्रश्न करे तो मिश्रित—धातु, मूल एवं जीवसम्बन्धी मिला हुआ प्रश्न कहना चाहिये।

५–पृच्छक शिर को स्पर्श कर प्रश्न करे तो जीवचिन्ता, पैर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो मूल चिन्ता, और कमर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो धातुचिन्ता कहनी चाहिये। भुजा, मुख और शिर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो शुभदायक जीवचिन्ता, हृदय एवं उदर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो धन-चिन्ता, गुदा और वृषण को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो अधम मूलचिन्ता एवं जानु, जंघा और पाद का स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो सामान्य जीवचिन्ता का प्रश्न कहना चाहिये।

६–पूर्वाह्णकाल के प्रश्न के पिण्ड को तीन से भाग देने पर एक शेष में धातु, दो में मूल और तीन में—शून्य में जीवचिन्ता का प्रश्न कहना चाहिये। मध्याह्न काल के प्रश्न के पिण्ड में तीन का भाग देने पर एकादि शेष में क्रमशः मूल, जीव और धातुचिन्ता का प्रश्न कहना चाहिये। इसी प्रकार दग्ध काल के प्रश्न के पिण्ड में तीन का भाग देने से एक शेष में जीव, दो में धातु और शून्य में मूलसम्बन्धी प्रश्न कहना चाहिये।

७–समराशि में प्रथम नवांश लग्न हो तो जीव, द्वितीय में मूल, तृतीय में धातु; चतुर्थ में जीव, पंचम में मूल, छठवें में धातु, सातवें में जीव, आठवें में मूल और नवें में धातुसम्बन्धी प्रश्न समझना चाहिये।

विषमराशि में प्रथम नवांश लग्न हो तो धातु, द्वितीय में मूल, तीसरे में जीव, चौथे में धातु, पांचवें में मूल, छठवें में जीव, सातवें में धातु, आठवें में मूल और नौवें में जीवसम्बन्धी प्रश्न होता है।

जीव योनि के भेद

तत्र जीवः[1] द्विपदः, चतुष्पदः, अपदः, पादसंकुलेति[2] चतुर्विधः। अ ए क च ट त प य शाः द्विपदाः। आ ऐ ख छ ठ थ फ र षाश्चतुष्पदाः। इ ओ ग ज ड द ब ल सा अपदाः। ई औ घ झ ढ ध भ व हाः पादसंकुलाः भवन्ति।

अर्थ–जीव योनि के द्विपद, चतुष्पद, अपद और पादसकुल ये चार भेद हैं। अ ए क च ट त प य श ये अक्षर द्विपदसंज्ञक; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये अक्षर चतुष्पदसंज्ञक; इ ओ ग ज ड द ब ल स ये अक्षर अपद सज्ञक और ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये अक्षर पादसंकुलसज्ञक होते हैं।

विवेचन—ज्योतिष शास्त्र में जीवयोनि का विचार दो प्रकार से किया गया है, एक–प्रश्नाक्षरों से और दूसरा–प्रश्नलग्न एव ग्रहस्थिति आदि से। प्रस्तुत ग्रन्थ का विचार प्रश्नाक्षरों का है। लग्न के विचारानुसार मेष, वृष, सिंह और धनु चतुष्पद, कर्क और वृश्चिक पादसकुल, मकर और मीन अपद एव कुम्भ, मिथुन, तुला और कन्या द्विपदसंज्ञक हैं। ग्रहों में शुक्र और बृहस्पति द्विपदसंज्ञक, शनि, सूर्य और मंगल चतुष्पद संज्ञक, चन्द्रमा, राहु पादसंकुलसंज्ञक तथा शनि और राहु अपदसंज्ञक हैं। जीवयोनि का ज्ञान होने पर कौन सा जीव है, इसको जानने के लिये जिस प्रकार की लग्न हो तथा जो ग्रह बली होकर लग्न को देखे अथवा युक्त हो उसी ग्रह का जीव कहना चाहिये। यदि लग्न स्वय बलवान् हो और उसी जाति का ग्रह लग्नेश हो तो लग्न की जाति का ही जीव समझना चाहिये। इस ग्रन्थ के अनुसार जीवयोनि का निर्णय कर लेने के पश्चात् अ ए क च ट त प य श ये द्विपद, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये चतुष्पद, इ ओ ग ज ड द ब ल स ये अपद और ई औ घ झ ढ ध भ व ह पादसकुला होते हैं, पर यहाँ पर भी "**परस्परं शोधयित्वा तत्र योऽधिकः स एव योनिः**" इस सिद्धान्तानुसार परस्पर द्विपद, चतुष्पद, अपद और पादसंकुला योनि के अक्षरों को घटाने के बाद जिस प्रकार की जीवयोनि के अक्षर अधिक शेष रहें, वही जीवयोनि समझनी चाहिये। जैसे–मोहन ने प्रश्न किया कि मेरे मन में क्या है? यहाँ मोहन के मुख से निकलनेवाले प्रथम वाक्य को भी प्रश्न वाक्य माना जा सकता है, अथवा दिन के प्रथम भाग में प्रश्न किया हो तो बालक के मुख से पुष्प का नाम, द्वितीय भाग का प्रश्न हो तो स्त्री के मुख से फल का नाम, तृतीय भाग का प्रश्न हो तो वृद्ध के मुख से वृक्ष या देवता का नाम और रात्रि का प्रश्न हो तो बालक, स्त्री और वृद्ध में से किसी एक के मुख से तालाब या नदी का नाम ग्रहण करा कर उसी को प्रश्नवाक्य मान लेना चाहिये। सत्य फल का निरूपण करने के लिये उपर्युक्त दोनो ही दृष्टियों से फल कहना चाहिये। मोहन दिन के ९ बजे आया है, अतः यह दिन के प्रथम भाग का प्रश्न हुआ, इसलिये किसी अबोध बालक से पुष्प का नाम पूछा तो बालक ने जुही का नाम बताया। प्रश्नवाक्य जुही का विश्लेषण (ज् + उ + ह् + ई) यह हुआ। इसमें ज् और ह् दो वर्ण जीवाक्षर, उ धात्वक्षर और ई मूलाक्षर हैं। संशोधन करने पर जीवयोनि का एक वर्ण अवशेष रहा, अतः यह जीवयोनि हुई। अब द्विपद, चतुष्पद, अपद और पादसकुल के विचार के लिये देखा तो पूर्वोक्त विश्लेषण में ह् + ई ये अक्षर पादसकुल और ज् अपद संज्ञक हैं। संशोधन करने से यह पादसंकुला योनि हुई। अतः मोहन के मन में पादसकुलासम्बन्धी जीव की चिन्ता समझनी चाहिये।

---

१ तुलना–के० प्र० र० पृ० ५४-५६। के० प्र० स० पृ० १८। ग० म० पृ० ७। ष० प० भ० टी० पृ० ८। भु० दी० पृ० २२। प्र० कौ० पृ० ६। प्र० कु० पृ० १५। प्र० वै० पृ० १०६। २ पादसंकुलश्चेति–क० मू०

द्विपदयोनि और देवयोनि के भेद

तत्र द्विपदा[1] देवमनुष्यराक्षसा इति। तत्रोत्तरोत्तरेषु देवताः, उत्तराधरेषु मनुष्याः[2]। अधरोत्तरेषु पक्षिणः[3], अधराधरेषु राक्षसाः भवन्ति। तत्र देवाश्चतुर्णिकायाः[4]—कल्पवासिनः, भवनवासिनः, व्यन्तराः, ज्योतिष्काश्चेति।

अर्थ—द्विपदयोनि के देव, मनुष्य, पक्षी और राक्षस ये चार भेद हैं। उत्तरोत्तर प्रश्नाक्षरों (अ क ख ग घ ङ) के होने पर देव; उत्तराधर प्रश्नाक्षरो (च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण) के होने पर मनुष्य; अधरोत्तर प्रश्नाक्षरो (त थ द ध न प फ ब भ म) के होने पर पक्षी और अधराधर प्रश्नाक्षरों (य र ल व श ष स ह) के होने पर राक्षस योनि होती है। इनमें देवयोनि के चार भेद हैं—कल्पवासी, भवनवासी; व्यन्तर और ज्योतिषी।

विवेचन—दो पैर वाले जीव—देव, मनुष्य, पक्षी और राक्षस होते हैं। लग्न के अनुसार कुम्भ, मिथुन, तुला और कन्या ये चार द्विपद राशियाँ क्रमशः देव, मनुष्यादि सज्ञक हैं, लेकिन मतान्तर से सभी राशियाँ देवादिसज्ञक हैं। पूर्वोक्त विधि से लग्न बनाकर ग्रहो की स्थिति से देवादि योनि का निर्णय करना चाहिये। प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार प्रश्नकर्त्ता से समय के अनुसार पुष्प, फलादि का नाम उच्चारण करा के पहले आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्धकाल में जो पिण्ड बनाने की विधि बताई गई है उसी के अनुसार बनाना चाहिये, परन्तु यहाँ इतना ध्यान और रखना चाहिये कि प्रश्नकर्त्ता के नाम के वर्णाङ्क और स्वराङ्को को प्रश्न के वर्णाङ्क और स्वराङ्को में जोड़ कर तब पिण्ड बनाना चाहिये। इस पिण्ड में चार का भाग देने पर एक शेष में देव, दो में मनुष्य, तीन में पक्षी और शून्य में राक्षस जानना चाहिये। उदाहरण—जैसे मोहन ने प्रातःकाल ८ बजे प्रश्न पूछा। आलिङ्गितकाल का प्रश्न होने से फल का नाम जामुन बताया। इस प्रश्नवाक्य का विश्लेषण किया तो (ज्+आ+ म्+उ+न्+अ) यह हुआ। 'वर्ग संख्या सहित स्वरो और वर्णो के ध्रुवाङ्क' चक्र के अनुसार (ज् ६+म् ११+न् १०)=६+११+१०=२७ वर्णाङ्क, तथा इसी चक्र के अनुसार स्वराङ्क=(आ ३+अ २+उ ६=३+२+६=११; मोहन इस नाम के वर्णों का विश्लेषण (म्+ओ +ह्+अ+न्+अ)यह हुआ। यहाँ पर भी 'वर्ग सख्या सहित स्वरो और वर्णो के ध्रुवाङ्क' चक्र के अनुसार वर्णाङ्क=(म् ११+ह् १२+न् १०)=११+१२+१०=३३; स्वराङ्क=(अ २+अ२+आ१४) =२+२+१४=१८। नाम के वर्णाङ्को को प्रश्न के वर्णाको के साथ तथा नाम के स्वराङ्को को प्रश्न के स्वराङ्को के साथ योग कर देने पर स्वराङ्क और वर्णाङ्को का परस्पर गुणा करने से पिण्ड होता है। अतः २७ +३०=५७ वर्णाङ्क, स्वराङ्क=११+१८=२९, ५७×२९=१६५३ पिण्ड हुआ; इसमें चार का भाग दिया तो १६५३÷४=४१३ लब्ध, १ शेष, अतः देवयोनि हुई। अथवा बिना गणित क्रिया के केवल प्रश्नाक्षरों पर से ही योनि का ज्ञान करना चाहिये। जैसे मोहन का 'जामुन' प्रश्न वाक्य है इसम (ज्+आ+म् +उ+न्+अ) ये स्वर और व्यञ्जन हैं। इस विश्लेषण में ज् मनुष्ययोनि तथा म् और न पक्षी योनि हैं। संशोधन करने पर पक्षी योनि के वर्ण अधिक हैं अतः पक्षी योनि हुई। अब यहाँ पर यह शङ्का हो सकती है कि पहले नियम के अनुसार देव योनि आया और दूसरे नियम के अनुसार पक्षी योनि, अतः दोनो परस्पर विरोधी हैं। लेकिन यह शङ्का ठीक नहीं है क्योकि द्वितीय नियम के अनुसार प्रातःकाल के प्रश्न में पुष्प का

---

१ तुलना—के० प्र० र० पृ० ५६—५७। के० प्र० स० पृ० १८। ग० म० पृ० ७। २—तुलना—प्र० को० पृ० ७। ज्ञा० प्र० पृ० २०। ३ "मृगमीनौ तु खचरौ तत्रस्थौ मन्दभूमिजौ। वनकुक्कुटकाकौ च चिन्तिताविति कीर्त्तयेत्॥ इत्यादि—"ज्ञा० प्र० पृ० २१। ४ "देवाश्चतुर्णिकायाः"—त० सू० ४। १। देवगतिनामकर्मोदये सत्यभ्यन्तरे हेतौ बाह्यविभूतिविशेषैर्द्वीपाद्रिसमुद्रादिषु प्रदेशेषु यथेष्टं दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवाः"—स० सि० ४।१।

नाम पूछना चाहिये, फल का नहीं। यहाँ फल का नाम बताया गया है, इससे परस्पर में विरोध आता है। अतएव खूब सोच विचार कर प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये।

देवयोनि जानने की विधि

अकारे कल्पवासिनः[1]। इकारे भवनवासिनः। एकारे व्यन्तराः। ओकारे ज्योतिष्काः। तद्यथा-क कि के को इत्यादि। अग्रे नाम्ना विशेषेण[2] वर्गस्य चिति-देवताः ब्राह्मणाः, राजानः, तपस्विनश्चानुक्रमेण ज्ञातव्या इति देवयोनिः।

अर्थ-देवयोनि के वर्णों में अकार की मात्रा होने पर कल्पवासी, इकार की मात्रा होने पर भवनवासी, एकार की मात्रा होने पर व्यन्तर और ओकार की मात्रा होने पर ज्योतिष्क देवयोनि होती है। जैसे—क में अकार की मात्रा होने से कल्पवासी, कि में इकार की मात्रा होने से भवनवासी, के में एकार की मात्रा होने से व्यन्तर और को में ओकार की मात्रा होने से ज्योतिष्क योनि होती है। आगे नाम की विशेषता के अनुसार पृथ्वीदेवता—ब्राह्मण, राजा और तपस्वी क्रम से जानने चाहिये। इस प्रकार देवयोनि का प्रकरण पूर्ण हुआ।

विवेचन—व्यञ्जनों से सामान्य देवयोनि का विचार किया गया है, किन्तु मात्राओं से कल्पवासी आदि देवों का विचार करना चाहिये। जैसे—मोहन का प्रश्न वाक्य 'किसमिस' है, इस वाक्य का आदि वर्ण कि है। अतः देवयोनि हुई, क्योंकि मतान्तर से प्रश्नवाक्य के प्रारम्भिक अक्षर के अनुसार ही योनि होती है। 'कि' इस वर्ण में 'इ' की मात्रा है अतः भवनवासी योनि हुई।

मनुष्ययोनि का विशेष निरूपण

अथ मनुष्ययोनिः[3]-ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रान्त्यजाश्चेति[4] मनुष्याः पञ्चविधाः। यथासंख्यं पञ्चवर्गाः क्रमेण ज्ञातव्याः। तत्रालिङ्गितेषु[5] पुरुषः। अभिधूमितेषु स्त्री। दग्धेषु नपुंसकः। तत्रालिङ्गिते[6] गौरः। अभिधूमिते श्यामः। दग्धेषु कृष्णः।

अर्थ-मनुष्य योनि के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज ये पाँच भेद हैं। प्रथम, द्वितीय आदि पाँचों वर्गों को क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज समझना चाहिये अर्थात् अ ए क च ट त प य श ये ब्राह्मण वर्ण; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये क्षत्रिय वर्ण, इ ओ ग ज ड द ब ल स ये वैश्य वर्ण,

---

१ तुलना-के० प्र० र० पृ० ५८। "देवा अकारवर्गे तु दैत्याश्चैव कवर्गकम्। मुनिसञ्ज्ञं तवर्गं तु पवर्गे राक्षसाः स्मृताः॥ देवाश्चतुर्विधा ज्ञेयाः भुवनान्तरसंस्थिताः। कल्पवासी ततो नित्यं शेष क्षिप्रमुदाहरेत्॥ एकविंशहता प्रश्नाः सप्तमात्राहतानि च। क्रमभागं पुनर्दद्यात् ज्ञातव्य देवदानवम्॥ एक भुवनमध्यं द्वितीयम् अन्तरास्थितम्। तृतीयं कल्पवासी च शून्ये चैव व्यन्तराः॥"-चं० प्र० श्लो० ५४, २४८-२५०। २ विशेषः-क० मू०। ३ तुलना-के० प्र० र० पृ० ५८-६०। ग० म० पृ० ८। भु० दी० पृ० २३-२६। ज्ञा० प्र० पृ० २२-२३। चं० प्र० श्लो० २५८-२६६। ४ 'ब्राह्मणाः, क्षत्रियाः, वैश्याः, शूद्राः, अन्त्यजाश्चेति"-ता० मू०। ५ "तत्र द्विपदे त्रिविधो भेदः। पुरुषस्त्रीनपुंसकभेदात्। आलिङ्गितेन पुरुषः। अभिधूमितेन नारी। दग्धकेन षंढः।"-के० प्र० सं० १८; ग० म० पृ० ९। भु० दी० पृ० २४। प्र० वै० पृ० १०६-७। न० ज० पृ० ३१। च० प्र० २७१-७३। ६ "गौरः श्यामस्तथा सम इत्यादि"-ग० म० पृ० ९। भु० दी० पृ० २४-२५। बृ० ज्ञा० पृ० २७। चं० प्र० श्लो० ४६-४८।

ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये शूद्र वर्ण और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः ये अन्त्यज वर्ण संज्ञक होते हैं। इन पाँचों वर्णों में भी आलिङ्गित प्रश्न वर्ण होने पर पुरुष, अभिधूमित होने पर स्त्री और दग्ध होने पर नपुंसक होते हैं। पुरुष, स्त्री आदि में भी आलिङ्गित प्रश्न वर्ण होने पर गौर वर्ण, अभिधूमित होने पर श्याम और दग्ध होने पर कृष्ण वर्ण के व्यक्ति होते हैं।

विवेचन—मनुष्य योनि के अवगत हो जाने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णविशेष का ज्ञान करने के लिये प्रश्नलग्नानुसार फल कहना चाहिये। यदि शुक्र और बृहस्पति बलवान हो कर लग्न को देखते हो या लग्न में हो तो ब्राह्मण वर्ण; मंगल और रवि बलवान होकर लग्न को देखते हों या लग्न में हों तो क्षत्रिय वर्ण, चन्द्रमा बलवान् होकर लग्न को देखता हो या लग्न में हो तो वैश्य वर्ण, बुध बलवान होकर लग्न को देखता हो या लग्न में हो तो शूद्र वर्ण और राहु एवं शनिश्चर दोनों ही बलवान होकर लग्न को देखते हो या लग्न में हों तो अन्त्यज वर्ण जानना चाहिये। विशेष प्रकार के मनुष्यों के ज्ञान करने का नियम यह है कि सूर्य अपनी उच्च राशि [मेष] में उदित हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो सम्राट्, केवल उच्च राशि में रहने पर जमींदार, स्वक्षेत्रग [सिंह राशि में] होने से मंत्री, मित्र गृह में मित्र दृष्ट होने से राजाश्रित योद्धा होता है। उपर्युक्त स्थिति से भिन्न सूर्य की स्थिति हो तो काँस का काम करने वाला, कुम्हार, शखछेदी आदि निम्न श्रेणी का व्यक्ति समझना चाहिये। नर राशि में सूर्य यदि चन्द्र से दृष्ट या युक्त हो तो वैद्य, बुध से युक्त या दृष्ट हो तो चोर और राहु से युक्त या दृष्ट होने पर विष देने वाला चाण्डाल जानना चाहिये। शनि के बली होने से वृक्ष काटने वाला, राहु के बली होने पर धीवर या नाई, चन्द्रमा के बली होने से नर्त्तक एवं शुक्र के बली होने से कुम्हार तथा चूना बेचने वाला समझना चाहिये।

यदि लग्न में कोई सौम्य ग्रह बलवान् होकर स्थित हो तो पृच्छक के मन में अपनी जाति के मनुष्य की चिन्ता, तृतीय भाव में स्थित हो तो भाई की चिन्ता, चतुर्थ भाव में स्थित हो तो मित्र की चिन्ता, पंचम भाव में स्थित हो तो माता एवं पुत्र की चिन्ता, छठवें भाव में स्थित हो तो शत्रु की चिन्ता, सातवें भाव में स्थित हो तो स्त्री की चिन्ता, आठवें भाव में स्थित हो तो मृतपुरुष की चिन्ता, नौवें भाव में स्थित हो तो मुनि या किसी बड़े धर्मात्मा पुरुष की चिन्ता, दसवें भाव में स्थित हो तो पिता की चिन्ता, ग्यारहवें भाव में स्थित हो तो बड़े भाई एवं गुरु आदि पूज्य पुरुषों की चिन्ता और बारहवें भाव में बली ग्रह के स्थित होने पर हितैषी की चिन्ता जाननी चाहिये। प्रश्नकाल के ग्रहों में सूर्य और शुक्र वक्री हो तथा इन दोनों में से कोई एक ग्रह अस्त हो तो पृच्छक के मन में परस्त्री की चिन्ता, सप्तम भाव में बुध हो तो वेश्या की चिन्ता एवं सप्तम भाव में शनिश्चर हो तो नाईन, धोबिन आदि नीच वर्णों की स्त्रियों की चिन्ता जाननी चाहिये। यदि प्रश्न लग्न में बलवान् बुध और शनिश्चर स्थित हों अथवा इन दोनों में से किसी एक ग्रह की लग्न स्थान के ऊपर पूर्ण दृष्टि हो तो नपुंसक की चिन्ता; शुक्र और चन्द्रमा इन दोनों में से कोई एक ग्रह लग्नेश होकर लग्न में स्थित हो अथवा इनकी पूर्ण दृष्टि हो तो स्त्री की चिन्ता एवं बलवान् सूर्य, बृहस्पति और मंगल में से कोई एक ग्रह अथवा तीनों ही ग्रह लग्न में स्थित हो या लग्न को देखते हों तो पुरुष की चिन्ता समझनी चाहिये।

यदि लग्न में सूर्य हो तो पाखण्डियों की चिन्ता, तीसरे और चौथे स्थान में स्थित हो तो कार्य की चिन्ता; पाँचवें स्थान में स्थित हो तो पुत्र और कुटुम्बियों की चिन्ता, छठवें स्थान में सूर्य के स्थित होने से कार्य और मार्ग की चिन्ता, सातवें स्थान में स्थित होने पर सपत्नी की चिन्ता, आठवें भाव में सूर्य के स्थित रहने पर नौका की चिन्ता, नौवें स्थान में सूर्य के रहने पर अन्य नगर के मनुष्य की चिन्ता, दसवें भाव में सूर्य के रहने से सरकारी कार्यों की चिन्ता; ग्यारहवें भाव में सूर्य के रहने से टैक्स, कर आदि के वसूल करने की चिन्ता और बारहवें भाव में सूर्य के रहने से शत्रु से हानि की चिन्ता होती है।

प्रथम स्थान में चन्द्रमा हो तो धन की चिन्ता, द्वितीय में हो तो धन के सम्बन्ध में आपस के झगड़ों की चिन्ता, तृतीय स्थान में हो तो वृष्टि की चिन्ता, चतुर्थ स्थान में हो तो माता की चिन्ता, पंचम स्थान में हो तो

पुत्रों की चिन्ता, छठवें स्थान में हो तो रोग की चिन्ता, सातवें स्थान में हो तो स्त्री की चिन्ता, आठवें स्थान में हो तो भोजन की चिन्ता, नौवें स्थान में हो तो मार्ग चलने की चिन्ता, दसवें स्थान में हो तो दुष्टों की चिन्ता, ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो वस्त्र, धूप, कपूर, अनाज आदि वस्तुओं की चिन्ता, एवं बारहवें भाव में चन्द्रमा स्थित हो तो चोरी गई वस्तु के लाभ की चिन्ता कहनी चाहिये।

लग्न स्थान में मंगल हो तो कलहजन्य चिन्ता, द्वितीय भाव में मगल हो तो नष्ट हुए धन के लाभ की चिन्ता, तृतीय स्थान में होने से भाई और मित्र की चिन्ता, चतुर्थ स्थान मेंरहने से शत्रु, पशु एवं क्रय-विक्रय की चिन्ता, पाचवें स्थान में रहने से क्रोधी मनुष्य के भय की चिन्ता, छठवें स्थान में रहने से सोना, चाँदी, अग्नि आदि की चिन्ता, सातवें स्थान में रहने से दासी, दास, घोड़ा आदि की चिन्ता, आठवें स्थान में रहने से मन्दिर की चिन्ता, नौवें स्थान में रहने से मार्ग की चिन्ता, दसवे स्थान में रहने से वाद-विवाद, मुकद्दमा आदि की चिन्ता, ग्यारहवें स्थान में रहने से शत्रुवृद्धि की चिन्ता और बारहवें स्थान में मंगल के रहने से शत्रु से होने वाले अनिष्ट की चिन्ता कहनी चाहिये।

बुध लग्न में हो तो वस्त्र, धन और पुत्र की चिन्ता, द्वितीय में हो तो विद्या की चिन्ता, तृतीय स्थान में हो तो भाई, बहन आदि की चिन्ता, चतुर्थ स्थान मे हो तो खेती और बगीचा की चिन्ता, पाँचवें भाव में हो तो सन्तान की चिन्ता, छठवें भाव में स्थित हो तो गुप्त कार्यों की चिन्ता, सातवें भाव में स्थित हो तो राजाज्ञा की चिन्ता, आठवें भाव मे स्थित हो तो पक्षी, मुकद्दमा और राजदण्ड आदि की चिन्ता, नौवें स्थान में स्थित हो तो धार्मिक कार्यों की चिन्ता, दसवें स्थान में स्थित हो तो शास्त्रकथा, सुख आदि की चिन्ता, ग्यारहवें भाव में स्थित हो तो धनप्राप्ति की चिन्ता और बारहवें भाव में बुध स्थित हो तो घरेलू झगड़ो की चिन्ता जाननी चाहिये।

बृहस्पति लग्न में स्थित हो तो व्याकुलता के नाश की चिन्ता, द्वितीय स्थान में हो तो धन, कुशलता, सुख एव भोगोपभोग की वस्तुओं की प्राप्ति की चिन्ता, तृतीय स्थान में हो तो स्वजनो की चिन्ता, चतुर्थ स्थान में हो तो भाई के विवाह की चिन्ता, पाचवें स्थान में स्थित हो तो पुत्र के स्नेह और उसके विवाह की चिन्ता, छठवें स्थान मे स्थित हो स्त्री के गर्भ की चिन्ता, सातवें में हो ता धनप्राप्ति की चिन्ता, आठवें में हो तो कृपण से धनप्राप्ति की चिन्ता, नौवें स्थान में हो तो धन सम्पत्ति की चिन्ता, दसवें स्थान मे स्थित हो तो मित्रसम्बधी झगड़े की चिन्ता, ग्यारहवें भाव में स्थित हो तो सुख की चिन्ता और बारहवें भाव में बृहस्पति हो तो यश की चिन्ता कहनी चाहिये।

लग्न में शुक्र हो तो नृत्य संगीत, विषय-वासना तृप्ति की चिन्ता, द्वितीय स्थान में हो तो धन, रत्न, वस्त्र इत्यादि की चिन्ता, तृतीय भाव मे हो तो स्त्री के गर्भ की चिन्ता, चतुर्थ स्थान में हो तो विवाह की चिन्ता, पञ्चम स्थान में हो तो भाई और सतान की चिन्ता, छठवें स्थान मे हो तो गर्भवती स्त्री की चिन्ता, सातवें स्थान मे हो तो स्त्रीप्राप्तिकी चिन्ता, आठवें मे हो तो परस्त्री की चिन्ता, नौवें स्थान मे हो तो रोग की चिन्ता, दसवें स्थान मे हो तो अच्छे कार्यों की चिन्ता, ग्यारहवें स्थान मे हो तो व्यापार की चिन्ता और बारहवें भाव में शुक्र हो तो दिव्य वस्तुओं की प्राप्ति की चिन्ता कहनी चाहिये।

लग्न में शनिश्चर हो तो रोग की चिन्ता, द्वितीय में हो तो पुत्र को पढ़ाने की चिन्ता, तृतीय स्थान में हो तो भाई के नाश की चिन्ता, चौथे स्थान मे शनि हो तो स्त्री की चिन्ता, पाँचवें भाव में हो तो मनुष्यो के कार्य की चिन्ता, छठवें स्थान में हो तो जार स्त्री की चिन्ता, सातवें स्थान मे हो तो गाड़ी की चिन्ता, आठवें स्थान मे हो तो धन, मृत्यु, दास, दासी आदि की चिन्ता, नौवें स्थान मे हो तो निन्दा की चिन्ता, दसवें स्थान में हो तो कार्य की चिन्ता, ग्यारहवें स्थान मे हो तो कुत्सित कर्म की चिन्ता और बारहवें भाव में शनि हो तो शत्रुओ की चिन्ता कहनी चाहिये। सातवें भवन मे शुक्र, बुध, गुरु, चन्द्रमा और सूर्य इन ग्रहो का इत्थशाल योग होवे तो कन्या के विवाह की चिन्ता समझनी चाहिये।

पुरुष, स्त्री आदि के रूप का ज्ञान लग्नेश और लग्न देखने वाले ग्रह के रूप के ज्ञान से करना चाहिये। जिस वर्ण का ग्रह लग्न को देखता हो तथा जिस वर्ण का बली ग्रह लग्नेश हो उसी वर्ण के मनुष्य की चिन्ता

कहनी चाहिये। यदि मंगल लग्नेश हो अथवा पूर्ण बली होकर लग्न को देखता हो तो लाल वर्ण [रंग], बृहस्पति की उक्त स्थिति होने पर कांचन वर्ण, बुध की उक्त स्थिति होने पर हरा वर्ण, सूर्य की उक्त स्थिति होने पर गौर वर्ण, चन्द्रमा की उक्त स्थिति होने पर आक के पुष्प के समान वर्ण, शुक्र की उक्त स्थिति होने पर शुक्ल वर्ण और शनि, राहु एवं केतु की उक्त स्थिति पर कृष्ण वर्ण के व्यक्ति की चिन्ता कहनी चाहिये।

बाल-वृद्धादि एवं आकृति मूलक समादि अवस्था

आलिङ्गितेषु बालः[1]। अभिधूमितेषु मध्यमः। दग्धेषु वृद्धः। आलिङ्गितेषु समः। अभिधूमितेषु दीर्घः[2]। दग्धेषु कुब्जः। अनामविशेषाः[3] ज्ञातव्या इति मनुष्ययोनिः।

अर्थ—आलिङ्गित प्रश्नाक्षर होने पर बाल्यावस्था, अभिधूमित प्रश्नाक्षर होने पर मध्यमावस्था—युवावस्था और दग्ध प्रश्नाक्षर होने पर वृद्धावस्था होती है। आलिङ्गित प्रश्नाक्षर होने पर सम न अधिक कद में बड़ा न अधिक छोटा, अभिधूमित प्रश्नाक्षर होने पर दीर्घ लम्बा और दग्ध प्रश्नाक्षर होने पर कुब्ज मनुष्य की चिन्ता होती है। नाम को छोड़कर अन्य सब विशेषताएँ प्रश्नाक्षरो पर से ही जाननी चाहिये। इस प्रकार मनुष्य योनि का प्रकरण पूर्ण हुआ।

विवेचन—यदि मंगल चतुर्थ भाव का स्वामी हो, चतुर्थ भाव में स्थित हो या चतुर्थ भाव को देखता हो तो युवा; बुध चतुर्थ भाव का स्वामी हो, चतुर्थ भाव में स्थित हो या चतुर्थ भाव को देखता हो तो बालक; चन्द्रमा और शुक्र चतुर्थ भाव में स्थित हों, चतुर्थ भाव के स्वामी हो या चतुर्थ भाव को देखते हो तो अर्द्ध वयस्क; शनि, रवि, बृहस्पति और राहु ये ग्रह चतुर्थ भाव में स्थित हो, चतुर्थ भाव के स्वामी हो या चतुर्थ भाव को देखते हो तो वृद्ध पुरुष की चिन्ता कहनी चाहिये। आकार बली लग्नाधीश के समान जानना चाहिये अर्थात् बली सूर्य लग्नाधीश हो तो शहद के समान पीले नेत्र, लम्बी-चौड़ी बराबर देह, पित्त प्रकृति और थोड़े बालोंवाला; बली चन्द्रमा लग्नाधीश हो तो पतली गोल देह, वात-कफ प्रकृति, सुन्दर आँख, कोमल वचन और बुद्धिमान्; मङ्गल लग्नाधीश हो तो क्रूर दृष्टि, युवक, उदारचित्त, पित्त प्रकृति, चञ्चल स्वभाव और पतली कमर वाला; बुध लग्नाधीश हो तो वाक्पटु, हसमुख, वात-पित्त-कफ प्रकृति वाला; बृहस्पति लग्नाधीश हो तो स्थूल शरीर, पीले बाल, पीले नेत्र, धर्मबुद्धि और कफ प्रकृति वाला; शुक्र लग्नाधीश हो तो सुन्दर शरीर, स्वस्थ, कफ-वात प्रकृति और कुटिल केश वाला एव शनैश्चर लग्नाधीश हो तो आलसी, पीले नेत्र, कृश शरीर, मोटे दाँत, रूखे बाल, लम्बी देह और अधिक वात वाला होता है। इस प्रकार लग्नानुसार जीवयोनि का निरूपण करना चाहिये।

इस प्रस्तुत ग्रन्थानुसार प्रश्नकर्त्ता के मन मे क्या है, वह क्या पूछना चाहता है, इत्यादि बातो का परिज्ञान आचार्य ने जीव, मूल और धातु इन तीन प्रकार की योनियों द्वारा किया है। जीव प्रश्नाक्षर-अ आ इ ओ अः ए क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह होने पर पृच्छक की जीवसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये, लेकिन जीवयोनि के द्विपद, चतुष्पद, अपद और पादसंकुल ये चार भेद होते हैं। अतः जीवविशेष की चिन्ता का ज्ञान करने के लिये द्विपद के देव, मनुष्य, पक्षी और राक्षस ये चार भेद किये गये हैं। मनुष्य योनि सम्बन्धी प्रश्न के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज इन पाँच भेदो द्वारा विचार-विनिमय कर वर्ण विशेष का निर्णय करना चाहिये। फिर प्रत्येक वर्ण के पुरुष, स्त्री और नपुंसक ये तीन-तीन भेद होते हैं, क्योंकि ब्राह्मण वर्ण सम्बन्धी प्रश्न होने पर पुरुष, स्त्री आदि का निर्णय भी करना आवश्यक है। पुनः पुरुष, स्त्री आदि भेदों के भी बाल्य, युवा और वृद्ध ये तीन अवस्थासम्बन्धी भेद हैं

---

१ तुलना—के० प्र० पृ० ६०-६१। च० प्र० श्लो० २६९। ता० नी० पृ० ३२४। भु० दी० पृ० ३०-४५। २ के० प्र० र० पृ० ६१। चं० प्र० श्लो० २७५-२७७,२८५। भुव० दी० पृ० २४। ३ अग्रे नाम्ना विशेष इति मनुष्या; ता० मू०

तथा इनमें से प्रत्येक के गौर, श्याम और कृष्ण रंगभेद एवं सम, दीर्घ और कुब्ज ये तीन आकृति सम्बन्धी भेद हैं। इस प्रकार मनुष्य योनि के जीव का अक्षरानुसार निर्णय करना चाहिये। उदाहरण-जैसे किसी आदमी ने प्रातःकाल ९ बजे आकर पूछा कि मेरे मन में क्या चिन्ता है ? ज्योतिषी ने उससे फल का नाम पूछा तो उसने जामुन बताया। जामुन इस प्रश्न वाक्य का विश्लेषण किया तो ज्+आ+म्+उ+न्+अ यह रूप हुआ। इसमें ज्+आ+अ ये तीन जीवाक्षर न्+म् ये दो मूलाक्षर और उ धात्वक्षर हैं। "प्रश्ने जीवाक्षराणि धात्वक्षराणि मूलाक्षराणि च परस्परं शोधयित्वा योऽधिकः स एव योनिः" इस नियमानुसार जीवाक्षर अधिक होने से जीव योनि हुई, अतः जीवसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये। पर किस प्रकार के जीव की चिन्ता है ? यह जानने के लिये ज्+आ+अ इन विश्लेषित वर्णों में 'ज्' अपद, 'आ' चतुष्पद और 'अ' द्विपद हुआ। यहाँ तीनों वर्ण भिन्न भिन्न संज्ञक होने के कारण 'योऽधिकस्स एव योनिः,' नहीं लगा, किन्तु प्रथमाक्षर की प्रधानता मानकर चतुष्पद सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये। इस प्रकार उत्तरोत्तर मनुष्य योनि सम्बन्धी चिन्ता का निर्णय करना चाहिये।

पक्षियोनि के भेद

अथ पक्षियोनिः[1]-तवर्गे जलचराः। पवर्गे स्थलचराः। तत्र नाम्ना विशेषाः ज्ञातव्याः[2]। इति पक्षियोनिः।

अर्थ—प्रश्नाक्षर तवर्ग के हो तो जलचर पक्षी और पवर्ग के हो तो थलचर पक्षी की चिन्ता कहनी चाहिये। पक्षियों के नाम अपनी बुद्धि के अनुसार बतलाना चाहिये। इस प्रकार पक्षियोनि का निरूपण समाप्त हुआ।

विवेचन—यदि प्रश्नलग्न मकर या मीन हो और उन राशियों में शनि या मंगल स्थित हो तो वन-कुक्कुट और काक सम्बन्धी चिन्ता, अपनी राशियों में-वृष और तुला में शुक्र हो तो हंस, बुध हो तो शुक, चन्द्रमा हो तो मोरसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये। अपनी राशि-सिंह में सूर्य हो तो गरुड़, बृहस्पति अपनी राशि-धनु और मीन में हो तो श्वेत बक; बुध अपनी राशि-कन्या और मिथुन में हो तो मुर्गा; मंगल अपनी राशि-मेष और वृश्चिक में हो तो उल्लू एवं राहु धनु और मीन में हो तो भरदूल पक्षी की चिन्ता कहनी चाहिये। सौम्य ग्रहों-बुध, चन्द्र, गुरु और शुक्र के लग्नेश होने पर सौम्यपक्षी की चिन्ता और क्रूर ग्रहों-रवि, शनि और मंगल के लग्नेश होने पर क्रूर पक्षियों की चिन्ता समझनी चाहिये। इस-प्रकार लग्न और लग्नेश के विचार से पक्षियोनि का निरूपण करना आवश्यक है। प्रश्नाक्षर और प्रश्नलग्न इन दोनों पर से विचार करने पर ही सत्यासत्य फल का कथन करना चाहिये। एकाङ्गी केवल लग्न या केवल प्रश्नाक्षरों का विचार अधूरा रहता है, आचार्य ने इसी अभिप्राय से "तत्र विशेषाः ज्ञातव्याः" इत्यादि कहा है।

---

१ तुलना—के० प्र० र० पृ० ६१-६२। ग० म० पृ० ८। चं० प्र० श्लो० २८७-२८८। ज्ञा० प्र० पृ० २१-२२। प्र० कौ० पृ० २। विशेष फलादेश के लिये पक्षी चक्र—"चंचुमस्तककण्ठेषु हृदयोदरपत्सु च। पक्षयोश्च त्रिकं चैव शशिभादि न्यसेद् बुधः। चंचुस्थे नामभे मृत्युः शीर्षे कठोदरे हृदि। विजयः क्षेमलाभश्च भंगदं पादपक्षयोः"-न० र० पृ० २१३; पक्षिशेषं खेशर ५० हृतं दिवतवि ग्रामचरः, अरण्यचरः, अम्बुचरः,। खेशरहृतं ५० दीप्तरवि १२ हृतं त १, शुकः २, पिकः ३, हंसः ४, काकः ५, कुक्कुटः ६, चक्रवाकः ७, गुल्लिः ८, मयूरः ९, साल्वः १०, परिवाणः ११, ककोरले १२, लावगे १३, बुसले ०। अरण्याखगशेषं अद्रिशर ५७ हृतं दिवत वि-स्थूलखगः। स-मध्यमखगः०। सूक्ष्मखगः। स्थूलखगशेषं ताराहृतं २७ दिवत १, बेरुंडः २, रणवकिक ३, हेब्बल्लिः ४, गरुडः ५, क्रौञ्चः ६, कोगिडिः ७, वकः०, गूगे०। मध्य-मखगशेषम्"।-के० हो० ह० पृ० ८१। २ ज्ञातव्या इति पाठो नास्ति-क० मू०।

राक्षसयोनि के भेद

कर्मजाः योनिजाश्चेति राक्षसा[1] द्विविधाः। तवर्गे[2] कर्मजाः। शवर्गे योनिजाः। तत्र नाम्ना विशेषतो[3] ज्ञेयाः[4]। इति द्विपदयोनिश्चतुर्विधः।

अर्थ–राक्षसयोनि के दो भेद हैं–कमज और योनिज। तवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर कर्मज और श वर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर योनिज राक्षसयोनि होती है। नाम से विशेष प्रकार के भेदों को जानना चाहिये। इस प्रकार द्विपद योनि के चारो भेदों का कथन समाप्त हुआ।

विवेचन—भूत, प्रेतादि राक्षस कर्मज कहे जाते हैं और असुरादि को योनिज कहते हैं। यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से भूतादि स्वतन्त्र व्यन्तरो के भेदो में से हैं, पर यहाँ पर राक्षससामान्य के अन्तर्गत ही व्यन्तर के समस्त भेदों तथा भवनवासियों के असुरकुमार, वातकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमारों को रखा है। ज्योतिष शास्त्र में निकृष्ट देवों को राक्षस संज्ञा दी गई है। रत्नप्रभा के पंकभाग में असुरकुमार और राक्षसों का निवास स्थान बताया गया है। शास्त्रो में व्यन्तर देवो के निवासो का कथन भवनपुर, आवास और भवन के नामों से किया गया है अर्थात् द्वीप-समुद्रों में भवनपुर, तालाब, पर्वत और वृक्षो पर आवास और चित्रा पृथ्वी के नीचे भवन हैं। ज्योतिषी को प्रश्नकर्ता की चर्या और चेष्टा से उपर्युक्त स्थानो में रहनेवाले देवों का निरूपण करना चाहिये। अथवा लग्नेश और लग्न-सप्तम के सम्बन्ध से उक्त देवों का निरूपण करना चाहिये अर्थात् लग्नेश मगल हो और सप्तम भाव में रहने वाले बुध एव रवि के साथ इत्थशाल करता हो तो भवनपुर में रहने वाले निकृष्ट देवों—राक्षसों की चिन्ता, शनि लग्नेश होकर सप्तमेश शुक्र और सप्तम भावस्थ गुरु के साथ कम्बूल योग कर रहा हो तो आवास मे रहने वाले राक्षसो की चिन्ता एव राहु और केतु हीनबल हों तथा बृहस्पति का रवि के साथ मणऊ योग हो तो भवन में रहने वाले राक्षसो की चिन्ता कहनी चाहिये।

चतुष्पद योनि के भेद

अथ[5] चतुष्पदयोनिः[6]—खुरी नखी दन्ती शृङ्गी चेति चतुष्पदाश्चतुर्विधाः। तत्र आ ऐ खुरी, छ ठा नखी, थ फा दन्ती, र षा शृङ्गी।

अर्थ–खुरी, नखी, दन्ती और शृंगी ये चार भेद चतुष्पद योनि के हैं। यदि आ और ऐ स्वर प्रश्नाक्षर हों तो खुरी, छ और ठ प्रश्नाक्षर हों तो नखी, थ और फ प्रश्नाक्षर हों तो दन्ती और र एव ष प्रश्नाक्षर हों तो शृंगी योनि कहनी चाहिये।

विवेचन–लग्न स्थान में मङ्गल की राशि हो और त्रिपाद दृष्टि से मङ्गल लग्न को देखता हो तो खुरी; सूर्य की राशि–सिंह लग्न हो और सूर्य लग्न को पूर्ण दृष्टि से देखता हो या लग्न स्थान में हो तो नखी, मेष राशि में शनि स्थित हो अथवा लग्न स्थान के ऊपर शनि की पूर्ण दृष्टि हो तो दन्ती एव मङ्गल कर्क राशि में स्थित हो अथवा मकर में स्थित हो और लग्न स्थान के ऊपर त्रिपाद या पूर्ण दृष्टि हो तो शृंगी योनि कहनी चाहिये।

प्रस्तुत ग्रन्थानुसार प्रश्नश्रेणी के आद्य वर्ण की जो मात्रा हो उसी के अनुसार खुरी, नखी, दन्ती और शृङ्गी योनि का निरूपण करना चाहिये। केरलादि प्रश्न ग्रन्थो के मतानुसार अ आ इ ये तीन स्वर प्रश्नाक्षरों

१–तुलना–के० प्र० र० पृ० ६२। ग० म० पृ० ९। च० प्र० श्लो० २,१-९३। २ यवर्गे–ता० मू०। ३ विशेषः–क० मू०। ४ ज्ञेया इति पाठो नास्ति–क० मू०। ५ तुलना–के० प्र० र० पृ० ६२-६३। प्र० कौ० पृ० ६। चं० प्र० श्लो० २९४-२९६। के० हो० ह० पृ० ८६। ६ "अथ चतुष्पदयोनिः" इति पाठो नास्ति—ता० मू०

के आदि में हों तो खुरी; ई उ ऊ ये तीन स्वर प्रश्नाक्षरों के आदि में हो तो नखी, ए ऐ ओ ये तीन स्वर प्रश्नाक्षरों के आदि में हो तो दन्ती और औ अं अः ये तीन स्वर प्रश्नाक्षरों के आदि में हो तो शृंगी योनि कहनी चाहिये।

खुरी, नखी, दन्ती और शृङ्गी योनि के भेद और उनके लक्षण

तत्र खुरिणः[1] द्विविधाः–ग्रामचरा अरण्यचराश्चेति। 'आ ऐ' ग्रामचरा अश्वगर्द-भादयः। 'ख' अरण्यचराः गवयहरिणादयः। तत्र नाम्ना विशेषितो[2] ज्ञेयाः। नखि-नोऽपि ग्रामारण्याश्चेति द्विविधाः। 'छ' ग्रामचराः श्वानमार्जारादयः। 'ठ' अरण्यचरा व्याघ्रसिंहादयः। तत्र नाम्ना विशेषितो[3] ज्ञेयाः। दन्तिनो द्विविधाः–ग्रामचरा अरण्य-चराश्चेति। 'थ'[4] तत्र ग्रामचराः सूकरादयः। 'फ'[5] अरण्यचरा हस्त्यादयः। तत्र नाम्ना विशेषितो[6] ज्ञेयाः। शृङ्गिणो द्विविधाः–ग्रामचरा अरण्यचराश्चेति। 'र' ग्रामचराः महिष-छागादयः। 'ष' अरण्यचरा मृगगण्डकादय इति चतुष्पदो योनिः।

अर्थ—खुरी योनि के ग्रामचर और अरण्यचर ये दो भेद हैं। आ ऐ प्रश्नाक्षर होने पर ग्रामचर अर्थात् घोड़ा, गधा, ऊँट आदि मवेशी की चिन्ता और ख प्रश्नाक्षर होने पर वनचारी पशु रोझ, हरिण, खरगोश आदि की चिन्ता कहनी चाहिये। इन पशुओं में भी नाम के अनुसार विशेष प्रकार के पशुओं की चिन्ता कहनी चाहिये।

नखी योनि के ग्रामचर और अरण्यचर ये दो भेद हैं। 'छ' प्रश्नाक्षर हो तो ग्रामचर अर्थात् कुत्ता, बिल्ली आदि नखी पशुओं की चिन्ता और ठ प्रश्नाक्षर हो तो अरण्यचर–व्याघ्र, चीता, सिंह, भालू आदि जङ्गली नखी जीवों की चिन्ता कहनी चाहिये। नाम के अनुसार विशेष प्रकार के नखी जीवों की चिन्ता का ज्ञान करना चाहिये।

दन्ती योनि के दो भेद हैं ग्रामचर और अरण्यचर। थ प्रश्नाक्षर हो तो ग्रामचर–शूकरादि ग्रामीण पालतू दन्ती जीवों की चिन्ता और 'फ' प्रश्नाक्षर हो तो अरण्यचर हाथी आदि जङ्गली दन्ती पशुओं की चिन्ता कहनी चाहिये। दन्ती पशुओं को नामानुसार विशेष प्रकार से जानना चाहिये।

शृङ्गी योनि के भी दो भेद हैं ग्रामचर और अरण्यचर। 'र' प्रश्नाक्षर हो तो भैंस, बकरी आदि ग्रामीण पालतू सींगवाले पशुओं की चिन्ता और 'ष' प्रश्नाक्षर हो तो अरण्यचर–हरिण, कृष्णसार आदि वनचारी सींग वाले पशुओं की चिन्ता समझनी चाहिये। इस प्रकार चतुष्पद–पशु योनि का निरूपण सम्पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रश्नकालीन लग्न बनाकर उसमें यथास्थान ग्रहों को स्थापित कर लेने पर चतुष्पद योनि का विचार करना चाहिये। यदि मेष राशि में सूर्य हो तो व्याघ्र की चिन्ता, मङ्गल हो तो भेड़ की चिन्ता, बुध हो तो लगूर की चिन्ता, शुक्र हो तो बैल की चिन्ता, शनि हो तो भैंस की चिन्ता और राहु हो तो रोझ की चिन्ता कहनी चाहिये। वृष राशि में सूर्य हो तो बारहसिगा की चिन्ता, मङ्गल हो तो कृष्ण मृग की चिन्ता, बुध हो तो बन्दर की चिन्ता, चन्द्रमा हो तो गाय की चिन्ता, शुक्र हो तो पीली गाय की चिन्ता,

१ तुलना–चं० प्र० श्लो० २९७-३०९। ज्ञा० प्र० पृ० २३-२४। भु० दी० पृ० १५-१६। स० वृ० सं० पृ० १०५२। के० हो० वृ० पृ० ८७। २ विशेषः–क० मू०। ३ विशेषः–क० मू०। ४ 'थ' इति पाठो नास्ति–क० मू०। ५ 'फ' इति पाठो नास्ति–क० मू०। ६ विशेषः–क० मू०।

शनि हो तो भैंस की चिन्ता और राहु हो तो भैंसा की चिन्ता बतलानी चाहिये। मङ्गल यदि कर्क राशि में हो तो हाथी, मकर राशि में हो तो भैंस, वृष में हो तो सिंह, मिथुन में हो तो कुत्ता, कन्या में हो तो शृगाल, सिंह में हो तो व्याघ्र एवं सिंह राशि में रवि, चन्द्र और मङ्गल ये तीनों ग्रह हों तो सिंह की चिन्ता कहनी चाहिये। चन्द्रमा तुला राशि में स्थित हो और लग्न स्थान को देखता हो तो गाय, शुक्र तुला राशि में स्थित हो, सप्तम भाव के ऊपर पूर्ण दृष्टि हो और लग्नेश या चतुर्थेश हो तो बछड़े की चिन्ता समझनी चाहिये। धनु राशि में मङ्गल या बृहस्पति स्थित हो तो घोड़ा और शनि भी वक्री होकर धनु राशि में ही बृहस्पति और मङ्गल के साथ स्थित हो तो मस्त हाथी की चिन्ता बतलानी चाहिये। धनु राशि में लग्नेश से संबद्ध राहु बैठा हो तो भैंस की चिन्ता; धनु राशि में बुध और बृहस्पति स्थित हों तथा चतुर्थ एवं सप्तम भाव से सम्बद्ध हो तो बन्दर की चिन्ता, धनु राशि में ही चन्द्रमा और बुध स्थित हों अथवा दोनों ग्रह मित्रभाव में बैठे हों तो पशु सामान्य की चिन्ता एवं सूर्य और बृहस्पति की पूर्ण दृष्टि धनु राशि पर हो तो गर्भिणी पशु की चिन्ता और इसी राशि पर सूर्य की पूर्ण दृष्टि हो तो बन्ध्या पशु की चिन्ता कहनी चाहिये। यदि चन्द्रमा कुम्भ राशि में स्थित हो और यह धनुराशिस्थ शुभ ग्रह को देखता हो तो वानर की चिन्ता, कुम्भ राशि में बृहस्पति स्थित हो या त्रिकोण में बैठ कर कुम्भ राशि को देखता हो तो भालू की चिन्ता एवं कुम्भ राशि में शनि बैठा हो तो हाथी की चिन्ता समझनी चाहिये। इस प्रकार लग्न और ग्रहों के अनुसार पशुओं की चिन्ता का ज्ञान करना चाहिये। प्रस्तुत ग्रन्थ में केवल प्रश्नाक्षरों से ही विचार किया गया है। उदाहरण—जैसे मोहन ने प्रातःकाल १० बजे आकर प्रश्न किया कि मेरे मन में कौन सी चिन्ता है? मोहन से किसी फल का नाम पूछा तो उसने आम का नाम लिया। इस प्रश्न वाक्य का (आ+म्+अ) यह विश्लेषण हुआ। इसमें आद्य वर्ण आ है, अतः "आ ऐ ग्रामचराः–अश्वगर्दभादयः" इस लक्षण के अनुसार घोड़े की चिन्ता कहनी चाहिये।

अपद योनि के भेद और लक्षण

अथापदयोनिः[1]–ते[2] द्विविधाः जलचराः स्थलचराश्चेति। तत्र इ ओ ग ज डाः जलचराः–शङ्खमत्स्यादयः। द ब ल साः स्थलचराः–सर्पमण्डूकादयः। तत्र नाम्ना विशेषतो[3] ज्ञेयाः। इत्यपदयोनिः।

अर्थ–अपद योनि के दो भेद हैं—जलचर और थलचर। इनमें इ ओ ग ज ड ये प्रश्नाक्षर हों तो जलचर शख, मछली इत्यादि की चिन्ता और द ब ल स ये प्रश्नाक्षर हो तो थलचर–साँप, मेढक इत्यादि की चिन्ता कहनी चाहिये। नाम से विशेष प्रकार का विचार करना चाहिये। इस प्रकार अपदयोनि का कथन समाप्त हुआ।

विवेचन–प्रश्नश्रेणी के आदि के वर्ण से अपद योनि का ज्ञान करना चाहिये। मतान्तर से क ग च ज त द ट ड प ब य ल की जलचर संज्ञा और ख घ छ झ थ ध ठ ढ फ भ र व की स्थलचर संज्ञा बतायी गई है। मगर, मछली, शंख आदि जलचर और कीड़े, सर्प, दुमुही आदि की स्थलचर संज्ञा कही गई है। ङ ञ ण न म इन वर्णों की उभयचर संज्ञा है। किसी-किसी आचार्य के मत से ई औ घ झ ढ ध भ व ह उ ऊ ङ ञ ण न म अ अः ये वर्ण स्थलसंज्ञक और इ ओ ग ज ड द ब ल स ये वर्ण जलचरसंज्ञक हैं। गणित क्रिया द्वारा निकालने के लिये मात्राओं को द्विगुणित कर वर्णों से गुणा करना चाहिये; यदि गुणनफल विषमसंख्यक हो तो स्थलचर और समसंख्यक हो तो जलचर अपद योनि की चिन्ता समझनी चाहिये।

---

१ तुलना–के० प्र० र० पृ० ६४–६५। प्र० श्लो० ३११–१७। २ ते च–क० मू०। ३ विशेषः–क० मू०।

पादसंकुला योनि के भेद और लक्षण

अथ पादसंकुलायोनिः–ई औ घ झ ढाः अण्डजाः भ्रमरपतङ्गादयः । ध भ व हाः स्वेदजाः यूकमत्कुणमक्षिकादयः । तत्र नाम्ना विशेष इति पादसंकुलायोनिः । इति जीवयोनिः

अर्थ-पादसंकुल योनि के दो भेद हैं—अंडज और स्वेदज । इ औ घ झ ढ ये प्रश्नाक्षर अण्डज संज्ञक भ्रमर, पतंग इत्यादि और ध भ व ह ये प्रश्नाक्षर स्वेदज संज्ञक—जूँ, खटमलादि हैं । नामानुसार विशेष प्रकार के भेदों को समझना चाहिये । इस प्रकार पादसंकुल योनि और जीवयोनि का प्रकरण समाप्त हुआ ।

विवेचन—प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षरों की स्वर संख्याको दो से गुणा कर प्राप्त गुणनफल में प्रश्नाक्षरों की व्यञ्जन संख्या को चार से गुणाकर जोड़ने से योगफल समसंख्यक हो तो स्वेदज और विषमसंख्यक हो तो अण्डज बहुपाद योनि के जीवों की चिन्ता कहनी चाहिये । जैसे–मोतीलाल प्रातःकाल ८ बजे पूछने आया कि मेरे मन में किस प्रकार के जीव की चिन्ता है ? प्रातःकाल का प्रश्न होने से मोतीलाल से पुष्प का नाम पूछा तो उसने बकुल का नाम बतलाया । 'बकुल' इस प्रश्नवाक्य का (व्+अ+क्+उ+ल्+अ) यह विश्लेषित रूप हुआ । इसकी स्वर संख्या तीन को दो से गुणा किया तो ३×२=६, व्यञ्जन संख्या तीन को चार से गुणा किया तो ३×४=१२, दोनों का योग किया तो १२+६=१८ योगफल हुआ; यह समसंख्यक है अतः स्वेदज योनि की चिन्ता हुई । प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रश्नाक्षरों के नियमानुसार भी प्रथमाक्षर 'व' स्वेदज योनि का है अतः स्वेदज जीवों की चिन्ता कहनी चाहिये । प्रश्न लग्न से यदि प्रश्न का फल निरूपण किया जाय तो मेष, वृष, कर्क, सिंह, वृश्चिक, मकर का पूर्वार्द्ध इन राशियों के प्रश्न लग्न होने पर बहुपद जीव योनि की चिन्ता कहनी चाहिये । मेष, वृष, कर्क और सिंह राशि के प्रश्न लग्न होने पर अंडज जीव योनि की चिन्ता और वृश्चिक एव मकर राशि के पन्द्रह अंश तक लग्न होने पर स्वेदज जीव योनि की चिन्ता कहनी चाहिये । मिथुन राशि में बुध हो और चतुर्थ भाव में रहने वाले ग्रहों से सम्बद्ध हो तो मत्कुण की चिन्ता, कन्याराशि मे शनि हो तथा चतुर्थ भाव को देखता हो तो जूँ की चिन्ता, मीनराशि में कोई ग्रह नहीं हो तथा लग्न मे कर्क राशि हो और शुक्र या चन्द्रमा उसमें स्थित हो तो भ्रमर की चिन्ता एव धनु राशि में मगल की स्थिति हो और छठवें भाव से सम्बन्ध रखता हो तो पतग की चिन्ता कहनी चाहिये । तृतीय भाव में वृश्चिक राशि हो तो विच्छू और खटमल की चिन्ता, कर्क राशि हो तो कच्छप की चिन्ता, मेष राशि हो तो गोधा की चिन्ता, वृष राशि हो तो छिपकली की चिन्ता, मकर राशि हो तो छिपकली, गोधा, चींटी, लट और केंचुआ आदि जीवों की चिन्ता एव वृश्चिक राशि में मंगल के तृतीय भाव में रहने पर विषैले कीड़ों की चिन्ता कहनी चाहिये । चौथे भाव में मकर राशि के रहने पर चन्दनगोह, दुमुही आदि जीवों की चिन्ता, कर्क राशि के रहने पर चींटी की चिन्ता और धनु राशि के रहने पर बिच्छू की चिन्ता कहनी चाहिये । बहुपाद योनि का विचार प्रधानतः लग्न, चतुर्थ, तृतीय और षष्ठ भाव से करना चाहिये । यदि उक्त भावों में क्षीण चन्द्रमा, क्रूर ग्रह युक्त निर्बल बुध, राहु और शनि स्थित हों तो निम्न श्रेणी के बहुपाद जीवों की चिन्ता कहनी चाहिये ।

---

१ तुलना–के० प्र० र० पृ० ६५-६६ । चं० प्र० ३३३-३३४ । प० प० म० पृ० ८ । प्र० कौ० पृ० ६ । ज्ञा० प्र० पृ० २१ । ग० म० पृ० ८ । के० हो० ह० ८९ । २ अथ पादसंकुलाः भ्रमरखर्जूरादयः–क० मू० ।

धातुयोनि के भेद

अथ धातुयोनिः[1]। तत्र द्विविधो धातुः धाम्यमधाम्यश्चेति[2]। त द प ब उ अं स एते धाम्याः। घ थ ध फ भ ऊ व ए अधाम्याः।

अर्थ–धातु योनि के दो भेद हैं–धाम्य और अधाम्य। त द प ब उ अं स इन प्रश्नाक्षरों के होने पर धाम्य धातु योनि और घ थ ध फ ऊ व ए इन प्रश्नाक्षरो के होने पर अधाम्य धातु योनि कहनी चाहिये।

विवेचन—जो धातु अग्नि में डालकर पिघलाये जा सकें उन्हें धाम्य और जो अग्नि में पिघलाये नहीं जा सकें उन्हें अधाम्य कहते हैं। यदि त द प ब उ अं स ये प्रश्नाक्षर हो तो धाम्य और घ थ ध फ भ ऊ व ए ये प्रश्नाक्षर हो तो अधाम्य धातु योनि होती है। धाम्याधाम्य धातुयोनि को गणित क्रिया द्वारा अवगत करने के लिये प्रश्नकर्त्ता से पुष्पादि का नाम पूछकर पूर्वाह्नकालमें वर्ग संख्या सहित वर्ण की सख्या और वर्ग सख्या सहित स्वर की संख्या को परस्पर गुणाकर गुणनफल में नामाक्षरों की वर्गसख्या सहित वर्ण की संख्या और वर्ग संख्या सहित स्वर की संख्या को परस्पर गुणा करने पर जो गुणनफल हो उसे जोड़ देने से योगफल पिण्ड होता है। मध्याह्न काल के प्रश्न में प्रश्नाक्षर और नामाक्षर दोनों की स्वर सख्या को केवल वर्ण संख्या से गुणा करने पर दोनो गुणनफलो के योगतुल्य मध्याह्न कालीन पिण्ड होता है। और सायङ्काल के प्रश्न मे प्रश्नाक्षर और नामाक्षर के वर्ग की सख्या को वर्ण की संख्या से गुणाकर दोनो गुणनफलो के योगतुल्य सायङ्कालीन पिण्ड होता है। धातुचिन्ता सम्बन्धी प्रश्न होने पर इस पिण्ड में दो का भाग देने पर एक शेष में धाम्य और शून्य शेष में अधाम्य धातु योनि होती है।

धाम्य धातुयोनि के भेद

तत्र धाम्या अष्टविधाः[3]–सुवर्णरजतताम्रत्रपुकांस्यलोहसीसरेतिकादयः। श्वेतपीतहरितरक्तकृष्णा[4] इति पञ्चवर्णाः। पुनर्धाम्याः द्विविधाः घटिताघटिताश्चेति। घटित उत्तराक्षरेष्वघटित अधराक्षरेषु।

अर्थ—धाम्य धातु योनि के आठ भेद हैं–सुवर्ण, चांदी, ताँबा, राँगा, काँसा, लोहा, सीसा और रेतिका–पित्तल। सफेद, पीला, हरा, लाल और काला ये पाँच प्रकार के रङ्ग हैं। धाम्य धातु के प्रकारान्तर से दो भेद हैं घटित और अघटित। उत्तराक्षर प्रश्नाक्षरों के होने पर घटित और अधराक्षर होने पर अघटित धातु योनि होती है।

विवेचन—शुक्र या चन्द्रमा लग्न में स्थित हो या लग्न को देखते हो तो चाँदी की चिन्ता, बुध लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो सोने (सुवर्ण) की चिन्ता, बृहस्पति लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो रत्नजटित सुवर्ण की चिन्ता, मङ्गल लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो सीसे की चिन्ता, शनि लग्न में स्थित हो तो लोहे की चिन्ता और राहु लग्न में स्थित हो तो हड्डी की चिन्ता कहनी चाहिये। सूर्य अपने भाव–सिंह राशि मे स्थित हो और चन्द्रमा उच्चराशि–वृष में स्थित हो तो सुवर्ण आदि श्रेष्ठ धातुओं की चिन्ता, मङ्गल लग्नेश हो या अपनी राशियों–मेष और वृश्चिक में स्थित हो तो ताम्बे की चिन्ता,

---

१ तुलना—के० प्र० र० पृ० ६६–६७। के० प्र० सं० पृ० १९। ग० म० पृ० ५। प्र० कु० पृ० १३। प्र० कौ० पृ० ५। ज्ञा० प्र० पृ० १६। २ धाम्या अधाम्येति–क० मू०। ३ तुलना–के० प्र० सं० पृ० १९। के० प्र० र० पृ० ६७–६८। प्र० कौ० पृ० ६। ग० म० पृ० ६। ज्ञा० प्र० पृ० १६। भु० दी० पृ० २६–२७। बृ० जा० पृ० ३२। दे० ब० पृ० ७। आ० ति० पृ० १५। ४ श्वेतपीतनील···पञ्चवर्णाः–क० मू०।

बुध लग्न स्थान में हो या मिथुन और कन्या राशि में स्थित हो तो रांगे की चिन्ता, गुरु लग्नेश होकर लग्न में स्थित हो या पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो सोने की चिन्ता, शुक्र लग्नेश हो या लग्न में स्थित हो और लग्न स्थान को देखता हो तो चाँदी की चिन्ता, चन्द्रमा लग्नेश हो और लग्न स्थान से सम्बद्ध हो तो काँसे की चिन्ता, शनि और राहु लग्न स्थान में स्थित हों या मकर और कुम्भ राशि में दोनों स्थित हों तो लोहे की चिन्ता कहनी चाहिये। मङ्गल, सूर्य, शनि और शुक्र अपने-अपने भाव में लोह वस्तु की चिन्ता कराने वाले होते हैं। चन्द्रमा, बुध एवं बृहस्पति अपने भाव और मित्र के भाव में रहने पर लोहे की चिन्ता कराने वाले कहे गये हैं। सूर्य के लग्नेश होने पर ताम्बे की चिन्ता, चन्द्रमा के लग्नेश होने पर मणि की चिन्ता, मङ्गल के लग्नेश होने पर सोने की चिन्ता, बुध के लग्नेश होने पर कांसे की चिन्ता, बृहस्पति के लग्नेश होने पर चाँदी की चिन्ता और शनि के लग्नेश होने पर लोहे की चिन्ता समझनी चाहिये। सूर्य सिंह राशि में स्थित हो, सप्तमभाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो या लग्नस्थान पर पूर्ण दृष्टि हो तो इस प्रकार की स्थिति में सर्जक (Sodium), पोटाशक (Potassium), रुबिदक (Rubidium), कीशक (Caesium) और ताम्र (Copper) की चिन्ता; वृश्चिक राशि में मङ्गल हो, अपने मित्र की राशि में शनि हो और मङ्गल की दृष्टि लग्न स्थान पर हो तो सुवर्ण, वेरिलक (Beryllium), मग्नीशक (Magnesium), कालक (Calcium), वेरक (Barium), स्त्रंशक (Strontium), कदमक (Cadmium) एवं जस्ता (Zincum) की चिन्ता; बुध लग्नेश हो या मित्रभाव में स्थित हो अथवा लग्न स्थान के ऊपर त्रिपाद दृष्टि हो, अन्य ग्रह त्रिकोण ५।९ और केन्द्र (लग्न, ४।७।१०) में हो तथा व्यय भाव में कोई ग्रह नहीं हो तो पारद (Mercury), स्कन्दक (Scandium), इत्रिक (Worium), लन्थनक (Lanthanum), इत्तविक (Ytterbium), अलम्यूनियम (Aluminium), गलक (Gallium), इन्दुक (Indium), थल्लक (Thallium), तितानक (Titanium), शिर्कनक (Zirconium), सीरक (Cerium) एव वनदक (Vanadium) की चिन्ता, बृहस्पति लग्न में स्थित हो, बुध लग्नेश हो, शनि तृतीय भाव में स्थित हो, सूर्य सिंह राशि में हो और बृहस्पति मित्रगृही हो तो जर्मनक (Germanium), रङ्ग (Stannum), सीसा (Lead), नवक (Niobium), आर्सेनिक (Arsenicum), आन्तिमनि (Stibium), विषमिथ (Bismuth), क्रोमक (Chromcum), मोलिदक (Molybdenum), तुङ्गस्तक (Tungsten) एव वारुणक Vranium की चिन्ता; शनि लग्न में स्थित हो, बुध मकर राशि में स्थित हो, शुक्र कुम्भ या वृष राशि में हो, लग्नेश शनि हो और चतुर्थ, पञ्चम और सप्तमभाव में कोई ग्रह नहीं हो तो मङ्गनक (Manganese), लौह (Iron), कोबाल्ट (Cobalt), निकेल (Nickel), रुथीनक (Ruthenium), पल्लदक (Palladium), अश्मक (Osmium), इरिदक (Iridium), प्लातनक (Platium) और हेलिक (Helium) की चिन्ता; राहु धनराशि में स्थित हो, लग्न में केतु हो, नवम भाव में गुरु स्थित हो और ग्यारहवें भाव में सूर्य हो तो क्षार नमक (Salt), बुनसेन (Bunsen), चादी (Silver) और हरताल की चिन्ता एव चक्रार्द्ध में सभी ग्रहों के रहने पर लोह-भस्म, ताम्र-भस्म और रौप्य भस्म की चिन्ता कहनी चाहिये। अथवा प्रश्नाक्षरों पर से पहले धातु योनि का निर्णय करने के अनन्तर धाम्य और अधाम्य धातु-योनि का निर्णय करना चाहिये। धाम्य योनि के सुवर्ण, रजतादि आठ भेद कहे गये हैं। उत्तराक्षर प्रश्नश्रेणी वर्णों के होने पर घटित और अधराक्षर होने पर अघटित धाम्य योनि कहनी चाहिये।

घटित योनि के भेद और प्रभेद

तत्र घटितः त्रिविधः–जीवाभरणं गृहाभरणं नाणकञ्चेति। तत्र द्विपदाक्षरेषु द्विपदाभरणं त्रिविधं–देवताभरणं मनुष्याभरणं पक्षिभूषणमिति। तत्र नराभरणं–

१ तुलना—के० प्र० र० पृ० ६९–७१। ग० म० पृ० ६–७। आ० ति० पृ० १५। दै० का० पृ० २२८। रा० प्र० पृ० २५–२६। ध्व० ग० पृ० ७। प्र० कु० पृ० १४। के० हो० ह० पृ० ६०–६१।

शिरआभरणं कर्णाभरणं नासिकाभरणं ग्रीवाभरणं कण्ठाभरणं हस्ताभरणं जङ्घाभरणं पादाभरणमित्यष्टविधाः। तत्र शिरआभरणं किरीटघट्टिकार्द्धचन्द्रादयः। कर्णाभरणं कर्णकुण्डलादयः। नासिकाभरणं नासामण्यादयः। ग्रीवाभरणं कण्ठिकाहारादयः। कण्ठाभरणं ग्रैवेयकादयः। हस्ताभरणं कङ्कणाङ्गुलीयकमुद्रिकादयः। जङ्घाभरणं जङ्घाघण्टिकादयः। पादाभरणं नूपुरमुद्रिकादयः। तत्रोत्तरेषु नराभरणम् अधरेषु नार्याभरणम्। उत्तराक्षरेषु दक्षिणाभरणमधराक्षरेषु वामाभरणम्। तत्र नाम्ना विशेषः। देवानां पक्षिणां च पूर्वोक्तवज्ज्ञेयम्। गृहाभरणं द्विविधं भाजनं भाण्डञ्चेति। तत्र नाम्ना विशेषः।

अर्थ—घटित धातु के तीन भेद हैं—जीवाभरण-आभूषण, गृहाभरण-पात्र और नाणक-सिक्के-नोट, रुपये आदि। द्विपद—अ ए क च ट त प य श प्रश्नाक्षर हों तो द्विपदाभरण—दो पैरवाले जीवों का आभूषण होता है। इसके तीन भेद हैं-देवताभूषण, पक्षि आभूषण और मनुष्याभूषण। मनुष्याभूषण के शिरसाभरण, कर्णाभरण, नासिकाभरण, ग्रीवाभरण, कण्ठाभरण, हस्ताभरण, जघाभरण और पादाभरण ये आठ भेद हैं। इन आभूषणो में मुकुट, खौर, सीसफूल आदि शिरसाभरण; कानो में पहने जाने वाले कुण्डल, एरिंग (बुन्दे) आदि कर्णाभरण; नाक में पहने जाने वाली मणि की लौंग वाली आदि नासिकाभरण, कण्ठ में पहने जाने वाली कण्ठी, हार आदि ग्रीवाभरण; गले में पहने जाने वाली हंसुली, हार आदि कण्ठाभरण; हाथों मे पहने जाने वाले कंकण, अँगूठी, मुदरी, छल्ला आदि हस्ताभरण, जाँघो में बाधे जाने वाले घुंघुरू, क्षुद्रघण्टिका आदि जंघाभरण और पैरों में पहने जाने वाले बिछुए, छल्ला, पाजेब आदि पादाभरण होते हैं। प्रश्नाक्षरो में उत्तर वर्णों-क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स के होने पर मनुष्याभरण और अधराक्षरो ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह के होने पर स्त्रियों के आभूषण जानने चाहिए। उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर दक्षिण अङ्ग का आभूषण और अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर वाम अंग का आभूषण कहना चाहिये। इन आभूषणों में भी नाम की विशेषता समझनी चाहिए। प्रश्न श्रेणी में अ क ख ग घ ङ इन वर्णों के होने पर देवो के आभूषण और त थ द ध न प फ ब भ म इन वर्णों के होने पर पक्षियों के आभूषण कहने चाहिये। विशेष बातें देव और पक्षि योनि के समान पहले की तरह जाननी चाहिये। गृहाभरण के पात्रों के दो भेद हैं—भाजन— मिट्टी के बर्तन और भाण्ड—धातु के वर्तन। नाम की विशेषता प्रश्नाक्षरो के अनुसार जान लेनी चाहिये।

विवेचन—प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षरो के प्रथम वर्ण की अ इ ए ओ इन चार मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो जीवाभरण, आ ई ऐ औ इन चार मात्राओ में से कोई मात्रा हो तो गृहाभरण और उ ऊ अं अः इन चार मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो नाणक धातु की चिन्ता कहनी चाहिये। क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह अ आ इ ओ अः ए इन प्रश्नाक्षरो के होने से जीवाभरण समझना चाहिये। यदि प्रश्न श्रेणी में च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण इन वर्णो में से कोई भी वर्ण प्रथमाक्षर हो तो मनुष्याभरण कहना चाहिये। प्रश्नश्रेणी के आद्य वर्ण में अ आ इन दोनो मात्राओ के होने से शिरसाभरण, इ ई इन दोनों मात्राओं के होने से कर्णाभरण, उ ऊ इन दोनो मात्राओं के होने से नासिकाभरण, ए इस मात्रा के होने से ग्रीवाभरण; ऐ इस मात्रा के होने से कण्ठाभरण, ऋ तथा सयुक्त व्यञ्जन में ऊकार की मात्रा होने से हस्ताभरण, ओ औ इन दोनों मात्राओं के होने से जंघाभरण और अं अः इन दोनो मात्राओ के होने से पादाभरण की चिन्ता कहनी चाहिये।

---

१ नासिकाभरणं-पाठो नास्ति-क० मू०। २ कण्ठाभरणमिति नास्ति-क० मू०। ३ नासिकाभरणं नासामण्यादय इति पाठो नास्ति-ता० म०। ४ अधरोत्तरेषु नार्याभरणं-ता० मू०। ५ देवानां पक्षिणां चेति पाठो नास्ति-क० मू०।

प्रश्नलग्नानुसार आभरणों की चिन्ता तथा घटित धातु योनि के अन्य भेदों की चिन्ता का विचार करना चाहिये। मिथुन, कन्या, तुला, धनु, इन प्रश्नलग्नों के होने पर मनुष्याभरण जानने चाहिये। यदि शुक्र लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो शिरसाभरण, शनि लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो कर्णाभरण, सूर्य लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो नासिकाभरण, चन्द्रमा लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो ग्रीवाभरण, बुध लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो कण्ठाभरण, बृहस्पति लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो हस्ताभरण, मङ्गल लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो जंघाभरण और शनि एवं मंगल दोनों ही लग्न में स्थित हो या दोनो की लग्न के ऊपर त्रिपाद दृष्टि हो तो पादाभरण धातु की चिन्ता कहनी चाहिये। यदि प्रश्नकाल मे बृहस्पति, मङ्गल और रवि बलवान् हों तो पुरुषाभरण और चन्द्रमा, बुध, शनि, राहु और शुक्र बलवान् हों तो स्त्रीआभरण की चिन्ता कहनी चाहिये। प्रथम चक्रार्द्ध में बलवान् ग्रह हो और द्वितीय चक्रार्द्ध में हीन बली ग्रह हो तो वाम अंग के आभरण की चिन्ता; द्वितीय चक्रार्द्ध में बलवान् ग्रह और प्रथम चक्रार्द्ध में हीनबली ग्रह हो तो दक्षिण अंग के आभरण की चिन्ता; पञ्चम, अष्टम और नवम के शुद्ध होने पर देवाभरण और लग्न, चतुर्थ, षष्ठ और दशम के शुद्ध होने पर पक्षी आभरण की चिन्ता कहनी चाहिये। मिथुन लग्न में बुध स्थित हो, द्वितीय में शुक्र, चतुर्थ में मङ्गल, पञ्चम में शनि और बारहवें भाग में केतु स्थित हो तो हार, कण्ठा, हंसुली और खौर की चिन्ता; कन्या लग्न में बुध हो, वृश्चिक राशि में शुक्र, मकर में शनि, धनु में चन्द्रमा और व्ययभाव में राहु स्थित हो तो पाजेब, नुपुर, छल्ला, छड़े, झाँझर आदि आभूषणों की चिन्ता; तुला लग्न में शुक्र हो, मिथुन राशि में बुध हो, वृश्चिक में केतु हो, मेष में रवि हो, वृष में गुरु हो और कुम्भ राशि में शनि हो तो कर्णफूल, एरिंग, कुण्डल, बाली आदि कान के आभूषणो की चिन्ता; धनु लग्न में बुध हो, मिथुन में गुरु हो, मेष में सूर्य हो, कर्क राशि मे चन्द्रमा हो, सिंह मे मङ्गल हो, कन्याराशि में राहु हो और दसवें भाव में कोई ग्रह नहीं हो तो पहुँची, कंकण, दस्ती, चूड़ी एवं टड्डे आदि आभूषणों की चिन्ता; सिंह लग्न में एक साथ चन्द्रमा, सूर्य और मङ्गल बैठे हो तथा लग्न से पञ्चम भाव मे शुक्र हो, शनि मित्र के घर मे स्थित और बुध लग्न को देखता हो तो हीरे और मणियो के आभूषणो की चिन्ता एव चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, अष्टम, दशम और द्वादश भाव में ग्रहों के नहीं रहने से सुवर्णडली की चिन्ता कहनी चाहिये। आभूषणों का विचार करते समय ग्रहो के बलाबल का भी विचार करना परमावश्यक है।

अधाम्य योनि के भेद

अथाधाम्यं कथ्यते। अधाम्या अष्टविधाः। मौक्तिकपाषाणहरितालमणिशिला-शर्करावालुकामरकतपद्मरागप्रवालादयः। तत्र नाम्ना[3] विशेषः। इति धातुयोनिः।

अर्थ—अधाम्य धातु योनि के आठ भेद हैं—मोती, पत्थर, हरिताल, मणि, शिला, शर्करा (चीनी), बालू, मरकत (मणिविशेष), पद्मराग और मूगा इत्यादि। इन प्रधान आठ अधाम्य धातु योनि के भेदो की नाम की विशेषता है। इस प्रकार धातु योनि का प्रकरण पूर्ण हुआ।

विवेचन—वास्तव में अधाम्य धातु के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। यदि प्रश्नकर्त्ता के प्रश्नाक्षरो में आद्य वर्ण क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स इन अक्षरो में से कोई हो तो उत्तम अधाम्ययोनि—हीरा, माणिक, मरकत, पद्मराग और मूगा की चिन्ता; ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह इन अक्षरों में से कोई वर्ण हो तो मध्यम अधाम्ययोनि—हरिताल, शिला, पत्थर आदि की चिन्ता एव उ ऊ

१ तुलना—के० प्र० र० पृ० ७१-७२। ग० म० पृ० ६। ज्ञा० प्र० पृ० १७। के० हो० ह० पृ० १३।
२ अधाम्या अष्टविधा···प्रागेवोक्ताः—ता० मू०। ३ नाम्ना विशेषतो ज्ञेयाः—क० मू०।

अं अः इन स्वरों से संयुक्त व्यञ्जन प्रश्न में हों तो अधम अधाम्ययोनि—शर्करा, लवण, बालू आदि की चिन्ता कहनी चाहिये। यदि प्रश्न के आद्य वर्ण में अ इ ए ओ ये चार मात्राएँ हों तो उत्तम अधाम्य धातु की चिन्ता; आ ई ऐ औ ये चार मात्राएँ हों तो मध्य अधाम्य धातु की चिन्ता और उ ऊ अं अः ये चार मात्राएँ हों तो अधम अधाम्य धातु योनि की चिन्ता कहनी चाहिये।

यदि लग्न सिंह राशि हो और उसमें सूर्य स्थित हो तो शिला की चिन्ता; कन्या राशि लग्न हो और उसमें बुध स्थित हो अथवा बुध की लग्न स्थान पर दृष्टि हो तो मृत्पात्र की चिन्ता; तुला या वृष राशि लग्न हो और उसमें शुक्र स्थित हो या शुक्र की लग्न स्थान पर दृष्टि हो तो मोती और स्फटिक मणि की चिन्ता; मेष या वृश्चिक राशि लग्न हो और लग्न स्थान में बली मङ्गल स्थित हो अथवा लग्न स्थान पर मङ्गल की दृष्टि हो तो मूंगा की चिन्ता; मकर या कुम्भ राशि लग्न हो और लग्न स्थान में शनि स्थित हो या लग्न स्थान पर शनि की त्रिपाद दृष्टि हो तो लोहे की चिन्ता; धनु या मीन राशि लग्न में हो और लग्न स्थान में बृहस्पति स्थित हो अथवा लग्न स्थान पर बृहस्पति की दृष्टि हो तो मनःशिला की चिन्ता; लग्न स्थान में कुम्भ राशि हो और बलवान् शनि लग्नभाव में स्थित हो तथा लग्न स्थान पर राहु और केतु की पूर्ण दृष्टि हो तो नीलम, वैडूर्य की चिन्ता; वृष लग्न में शुक्र स्थित हो, चन्द्रमा की लग्न स्थान पर पूर्ण दृष्टि हो तो मरकत मणि की चिन्ता; सूर्य द्वादश भावस्थ सिंह राशि में स्थित हो, लग्न पर मङ्गल की पूर्ण दृष्टि हो अथवा शनि लग्न को त्रिपाद दृष्टि से देखता हो तो सूर्यकान्त मणि की चिन्ता एवं कर्क लग्न में चन्द्रमा स्थित हो, बुध की लग्न स्थान पर पूर्ण दृष्टि हो या शुक्र चतुर्थ भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो चन्द्रकान्त मणि की चिन्ता कहनी चाहिये। अधाम्य धातुयोनि के निर्णय हो जाने पर ही उपर्युक्त ग्रहों के अनुसार फल कहना चाहिये। बिना अधाम्य धातु योनि के निर्णय किये फल असत्य निकलेगा।

मूल योनि के भेद-प्रभेद और पहिचानने के नियम

अथ मूलयोनिः[1]। स चतुर्विधः[2]—वृक्षगुल्मलतावल्लिभेदात्। आ ई ऐ औकारेषु यथासंख्यं वेदितव्यम्। पुनश्चतुर्विधः—त्वक्पत्रपुष्पफलभेदात्। कादिभिस्त्वक् खादिभिः पत्रं गादिभिः पुष्पं घादिभिः फलमिति। पुनश्च भक्ष्यमभक्ष्यमिति द्विविधम्। उत्तराक्षरेषु भक्ष्यमधराक्षरेष्वभक्ष्यम्। उत्तराक्षरेषु सुगन्धमधराक्षरेषु दुर्गन्धं कादिखादिगादिघादिभिर्द्रष्टव्यम्। आलिङ्गितादिषु यथासंख्यं योजनीयम्[3]। तिक्तकटुकाम्ललवणमधुरा इत्युत्तराः। उत्तराक्षरमार्द्रमधराक्षरं शुष्कम्। उत्तराक्षरं स्वदेशमधराक्षरं परदेशम्, ङ ञ ण न माः शुष्काः तृणकाष्ठादयः चन्दनदेवदूर्वादयश्च। इ ज शस्त्राणि वस्त्राणि च। इति मूलयोनिः।

अर्थ—मूलयोनि के चार भेद हैं वृक्ष, गुल्म, लता और वल्ली। यदि प्रश्नश्रेणी के आद्यवर्ण की मात्रा 'आ' हो तो वृक्ष, 'ई' हो तो गुल्म, 'ऐ' हो तो लता और 'औ' हो तो वल्ली समझना चाहिये। पुनः मूलयोनि के चार भेद हैं वल्कल, पत्ते, फूल और फल। क, च, ट, आदि प्रश्न वर्णों के होने पर वल्कल; ख, छ, ठ, थ आदि प्रश्न वर्णों के होने पर पत्ते; ग, ज, ड, द आदि प्रश्नवर्णों के होने पर फूल और घ, झ, ढ, ध आदि प्रश्नवर्णों के होने पर फल की चिन्ता कहनी चाहिये। इन चारों भेदो के भी दो-दो भेद हैं—

---

१ तुलना—के० प्र० र० पृ० ७२–७५। के० प्र० सं० पृ० २०–२१। ग० म० पृ० ९–११। ष० पं० भ० पृ० ८। आ० ति० ह० पृ० १५। ज्ञानप्र० पृ० १९–२१। प्र० कौ० पृ० ६। प्र० कु० पृ० २०–२१। के० हो० पृ० १०८–११३। २ स च चतुर्विधः—क० मू०। ३ योजनीयम्—पाठो नास्ति—क० मू०।

भक्ष्य-भक्षण करने योग्य और अभक्ष्य-अखाद्य । उत्तराक्षर—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स प्रश्नवर्णों के होने पर भक्ष्य और अधराक्षर—ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष प्रश्नवर्णों के होने पर अभक्ष्य मूलयोनि समझनी चाहिये। भक्ष्याभक्ष्य के अवगत हो जाने पर उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर सुगन्धित और अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर दुर्गन्धित मूलयोनि जाननी चाहिये। अथवा कादि क, च, ट, त, प, य, श प्रश्नवर्णों के होने पर भक्ष्य; खादि—ख, छ, ठ, थ, फ, र, ष प्रश्नवर्णों के होने पर अभक्ष्य; गादि—ग, ज, ड, द, ब, ल, ष प्रश्नवर्णों के होने पर सुगन्धित और घादि—घ, झ, ढ, ध, भ, व, स प्रश्नवर्णों के होने पर दुर्गन्धित मूलयोनि कहनी चाहिये। आलिङ्गित, अभिधूमित, दग्ध और उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों में क्रमशः भक्ष्य, अभक्ष्य, सुगन्धित और दुर्गन्धित मूलयोनि कहनी चाहिये। तिक्त, कटुक, मधुर, लवण, आम्लक ये उपर्युक्त मूलयोनियों के रस होते हैं। उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर आर्द्र मूलयोनि, अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर शुष्क; उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर स्वदेश, अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर परदेशस्थ मूलयोनि समझनी चाहिये। ङ ञ ण न म इन प्रश्नाक्षरों के होने पर सूखे हुए तृण, काठ, चन्दन, देवदारु, दूब आदि समझने चाहिये । इ और ज प्रश्नवर्णों के होने पर शस्त्र और वस्त्र सम्बन्धी मूलयोनि कहनी चाहिये। इस प्रकार मूलयोनि का प्रकरण समाप्त हुआ।

विवेचन—मूलयोनि के प्रश्न के निश्चित हो जाने पर कौन सी मूलयोनि है यह जानने के लिये चर्या-चेष्टा आदि के द्वारा विचार करना चाहिये। यदि प्रश्नकर्त्ता शिर को स्पर्श कर प्रश्न करे तो वृक्ष की चिन्ता, उदर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो गुल्म की चिन्ता, बाहु को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो लता की चिन्ता और पीठ को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो वल्ली की चिन्ता कहनी चाहिये। यदि पैर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो सकरकन्द, जिमीकन्द आदि की चिन्ता, नाक मलते हुए प्रश्न करे तो फूल की चिन्ता; आख मलते हुए प्रश्न करे तो फल की चिन्ता, मुँह पर हाथ फेरते हुए यदि प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे तो पत्र की चिन्ता और जांघ खुजलाते हुए प्रश्न करे तो त्वक्-चिन्ता कहनी चाहिये।

प्रश्नकुंडली में मंगल के बलवान् होने पर छोटे धान्यों की चिन्ता, बुध और बृहस्पति के बलवान् होने पर बड़े धान्यों की चिन्ता, सूर्य के बलवान् होने पर वृक्ष की चिन्ता, चन्द्रमा के बलवान् होने पर लताओं की चिन्ता, बृहस्पति के लग्नेश होने पर ईख की चिन्ता, शुक्र के लग्नेश होने पर इमली की चिन्ता, शनि के बलवान् होने पर दारु की चिन्ता, राहु के बलवान् होने पर तीखे कॉटेदार वृक्ष की चिन्ता एवं शनि के लग्नेश होने पर फलों की चिन्ता कहनी चाहिये। मेष और वृश्चिक इन प्रश्नलग्नो के होने पर क्षुद्र सस्य-चिन्ता; वृष कर्क और तुला इन प्रश्नलग्नो के होने पर लताओं की चिन्ता; कन्या और मिथुन इन प्रश्नों के होने पर वृक्ष की चिन्ता, कुम्भ और मकर इन प्रश्नलग्नों के होने पर कॉटेदार वृक्ष की चिन्ता; मीन, धनु और सिंह इन प्रश्नलग्नों के होने पर ईख, धान और गेहूँ के वृक्ष की चिन्ता कहनी चाहिये। यदि सूर्य सिंह राशि में स्थित हो तो त्वक् चिन्ता, चन्द्रमा कर्क राशि में स्थित हो मूलचिन्ता, मगल मेष राशि में स्थित हो तो पुष्पचिन्ता, बुध मिथुन राशि में स्थित हो तो छाल की चिन्ता, बृहस्पति धनु राशि में स्थित हो तो फलचिन्ता, शुक्र वृष राशि में स्थित हो तो पक्व फलचिन्ता, शनि मकर राशि में स्थित हो तो मूल-चिन्ता एवं राहु मिथुन राशि में स्थित हो तो लताचिन्ता अवगत करनी चाहिये। यदि बुध लग्नेश हो, अपने शत्रुभाव में स्थित हो अथवा लग्नभाव या शत्रुभाव को देखता हो तो सुन्दर, सौम्य एवं सूक्ष्म वृक्षों की चिन्ता; शुक्र लग्नेश हो, अपने मित्रभाव में स्थित हो अथवा लग्न भाव या मित्र भाव को देखता हो तो निष्कण्टक वृक्ष की चिन्ता; चन्द्रमा लग्नेश हो, शत्रुभाव में रहने वाले ग्रहों से दृष्ट हो अथवा लग्न स्थान या स्वराशि स्थान को देखता हो तो केला के वृक्ष की चिन्ता, बृहस्पति लग्न स्थान में हो, लग्नेश के द्वारा देखा जाता हो और शत्रु स्थान में सौम्य ग्रह हो या मित्रस्थान में क्रूर ग्रह हो तो नारियल के वृक्ष की चिन्ता; शनि स्वराशि में हो, लग्नेश की दृष्टि शनि भाव पर हो और लग्नेश मित्रभाव में स्थित हो तो ताल वृक्ष की चिन्ता; राहु मीन या मेष राशि में स्थित होकर मकरराशि के ग्रह से तात्कालिक मैत्री सम्बन्ध

रखता हो तो टेढ़े कांटेदार वृक्ष की चिन्ता एवं मंगल लग्न स्थान में स्थित हो कर मेष या वृश्चिक राशि में रहने वाले ग्रह से दृष्ट हो अथवा मंगल लग्नेश हो और शत्रुभाव में स्थित हो तो मूंगफली के वृक्ष की चिन्ता समझनी चाहिये। शास्त्रकारों ने बुध का मूग, शुक्र का सफेद अरहर, मंगल का चना, चन्द्रमा का तिल, सूर्य का मटर, बृहस्पति का लाल अरहर, शनि का उड़द और राहु का कुलथी धान्य बताया है। यदि उपर्युक्त ग्रह अपने-अपने मित्रस्थान मे हों तो उपर्युक्त धान्य सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये। यदि सूर्य उच्च राशि का हो और तीसरे भाव में रहने वाले ग्रह से दृष्ट हो तो शीशम के वृक्ष की चिन्ता, चन्द्रमा अपनी उच्च राशि में हो और पाँचवें भाव में रहने वाले ग्रहो से दृष्ट हो तो अनार और श्रीफल के वृक्ष की चिन्ता एवं शुक्र अपनी उच्च राशि में स्थित हो और सातवें भाव में रहने वाले ग्रह से दृष्ट हो तो नीम के वृक्ष की चिन्ता अवगत करनी चाहिये।

जीव, धातु और मूलयोनि के निरूपण का प्रयोजन

जीव, धातु और मूल इन तीनों योनियो के निरूपण का प्रधान उद्देश्य चोरी की गई वस्तु का पता लगाना है। जीवयोनि में चोर का स्वरूप बताया गया है। जीवयोनि के अनुसार चोर की जाति, अवस्था आकृति, रूप, कद, स्त्री, पुरुष एवं बालक आदि का कथन किया गया है। पूर्वोक्त जीव योनि के प्रकरण में प्रश्न-वाक्यानुसार जाति, अवस्था, आदि का सम्यक् विवेचन किया गया है। विवेचन में प्रतिपादित फल से प्रश्न-कुण्डली के अनुसार ग्रहों की स्थिति से चोर की जाति, अवस्था, आकृति आदि का पता लगाया जा सकता है। धातु योनि में चोरी की गई वस्तु का स्वरूप बताया गया है, अर्थात् पृच्छक के बिना बताये भी ज्योतिषी धातु योनि के निरूपण से बता सकता है कि अमुक प्रकार की वस्तु चोरी गई है या नष्ट हुई है। मूल योनि के निरूपण का सम्बन्ध मन की चिन्ता के निरूपण से है, अथवा किसी बगीचे आदि की सफलता–असफलता का विचारविनिमय करना तथा प्रश्नकुण्डली या प्रश्नवाक्यानुसार कहाँ पर किस प्रकार का वृक्ष फलीभूत हो सकता है और कहाँ नहीं आदि बातो का भी विचार किया जा सकता है। अथवा उपर्युक्त तीन योनियों का प्रयोजन दूसरे के मन की बात को जानना भी है। प्रश्नकर्ता के प्रश्नवाक्य से वर्तमान, भूत और भविष्यत् की सारी घटनाओ का सम्बन्ध रहता है। मनोविज्ञान के सिद्धान्तों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि मानव के प्रश्नवाक्य या अन्य शारीरिक क्रियाएँ तीनों कालो की घटनाओं से सम्बन्ध रखती हैं। मनोविज्ञान के विद्वान् लाव ने अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि शरीर यन्त्र के समान है और उसका सारा आचरण यान्त्रिक क्रियाप्रतिक्रिया के रूप में ही अनायास हुआ करता है। मानव के शरीर में किसी भौतिक घटना या क्रिया का उत्तेजन पाकर प्रतिक्रिया होती है। यही प्रतिक्रिया उसके आचरण में प्रदर्शित है। दूसरे मनोविज्ञान के प्रसिद्ध पण्डित फ्रायडे का कथन है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का अधिकांश भाग अचेतन मन के रूप में हैं जिसे प्रवृत्तियों का अशान्त समुद्र कह सकते हैं। इस महासमुद्र में मुख्यतः काम की ओर गौणतः विभिन्न प्रकार की वासनाओं, इच्छाओ और कामनाओं की उत्ताल तरंगें उठती हैं, जो अपनी प्रचण्ड चपेट से जीवननैया को आलोड़ित करती रहती हैं। मनुष्य के मन का दूसरा अंश चेतन हैं और यह निरन्तर घातप्रतिघात के द्वारा अनन्त कामनाओ से प्रादुर्भूत होता है और उन्हीं को प्रतिबिम्बित करता रहता है। फ्रायडे के मतानुसार बुद्धि भी मनुष्य की प्रवृत्ति का एक प्रतीक है जिसका काम केवल इतना ही है कि मनुष्य के द्वारा अपनी कामनाओं का औचित्य सिद्ध कर सके। फलतः उन्नत और विकसित बुद्धि, चाहे वह कैसी भी प्रचण्ड और अभिनव क्यो न हो, एक निमित्त मात्र है जिसके द्वारा प्रवृत्तियाँ अपनी वासनापूर्ति तथा सन्तोष-प्राप्ति की चेष्टा करती हैं। इस मत के अनुसार स्पष्ट है कि बुद्धि प्रवृत्ति की दासी मात्र हैं; क्योंकि जब प्रवृत्ति ही बुद्धि की प्रेरणात्मिका शक्ति है तब उसकी यह दासी उसी पथ पर चलने के लिये बाध्य है जिस पर चलना उसकी स्वामिनी को अभीष्ट है। इसका सारांश यह है कि मानव

जीवन में मूलरूप से स्थित वासनाओं इच्छाओं की प्रतिच्छाया मात्र ही विचार, विश्वास, कार्य और आचरण होते हैं। अतः प्रश्नवाक्य की धारा से मानवजीवन की तह में रहने वाली प्रवृत्तियो का अति घनिष्ट सम्बन्ध होता है; क्योंकि मानव प्रवृत्ति ही वासना पूर्ण करने के लिये प्रेरणात्मक बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर ज्ञानधारा को प्रवाहित करती रहती है। इस अविरल धारा का अनवच्छिन्न अंश प्रश्नवाक्य होता है जिसका एक छोर प्रवृत्ति से सम्बद्ध रहता है अतः प्रश्नवाक्य के विश्लेषण रूप धक्के से हृदयस्थ कुछ प्रवृत्तियों का उद्घाटन हो जाता है। इसलिये तीनों प्रकार की योनियों द्वारा मानसिक चिन्ता का ज्ञान करना विज्ञान सम्मत है।

चोरी की गई वस्तु के सम्बन्ध में विशेष विचार

चोरी की गई वस्तु के सम्बन्ध में योनिविचार के अतिरिक्त निम्न विचार करना अत्यावश्यक है। यदि प्रश्नलग्न में स्थिर राशि हो या स्थिर राशि का नवांश हो तो अपने ही व्यक्ति ने वस्तु चुराई है और वह घर के भीतर ही है, प्रश्नलग्न में चर राशि हो तो दूसरे किसी ने वस्तु चुराई है तथा वह उस वस्तु को लेकर दूर चला गया है। यदि प्रश्नलग्न में द्विस्वभाव राशि हो तो अपने घर के निकटवर्ती मनुष्य ने द्रव्य चुराया है और उसने उस द्रव्य को बहुत दूर नहीं किन्तु पास में ही छुपा कर रख दिया है। यदि प्रश्नलग्न में चन्द्रमा हो तो पूर्व दिशा की ओर, चौथे स्थान में चन्द्रमा हो तो उत्तर दिशा की ओर, सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो तो पश्चिम दिशा की ओर और दशम स्थान में चन्द्रमा हो तो दक्षिण दिशा की ओर चोरी की गई वस्तु को समझना चाहिये। यदि लग्न स्थान पर सूर्य और चन्द्रमा की दृष्टि हो तो निश्चय ही अपने घर का मनुष्य चोर होता है। यदि प्रश्नलग्न स्वामी और सप्तम भाव का स्वामी लग्न में स्थित हो तो निश्चय अपने ही कुटुम्ब के मनुष्य को चोर और सप्तम भाव का स्वामी सप्तम, तृतीय या बारहवें भाव में स्थित हो तो प्रबन्ध कर्त्ता मैनेजर, मुख्तार आदि को चोर समझना चाहिये। यदि प्रश्नकर्त्ता अपने हाथों को कपड़ो के भीतर रखकर पाकिट, पतलून आदि के भीतर हाथ डालकर प्रश्न करे तो अपने घर का ही चोर और बाहर हाथ करके प्रश्न करे तो अन्य मनुष्य को चोर बतलाना चाहिये। ज्योतिषी को लग्न के नवांश परसे खोई हुई वस्तु का स्वरूप, द्रेष्काण पर से चोर का स्वरूप, राशि पर से दिशा, देश एवं कालादि का विचार और नवांश से जाति, अवस्था आदि का विचार करना चाहिये। यदि प्रश्नलग्न सिंह हो और उसमें सूर्य और चन्द्रमा स्थित हो तथा भौम और शनि की दृष्टि हो तो अन्धा चोर, चन्द्रमा बारहवें स्थान में हो तो बायें नेत्र से काणा चोर और सूर्य बारहवें भाव में स्थित हो तो दक्षिण नेत्र से काणा चोर होता है।

यदि धन स्थान में शुक्र, व्यय स्थान में गुरु और लग्न स्थान में शुभ ग्रह हो तो चोरी गई वस्तु कुछ दिन बाद मिलेगी। लग्न में चन्द्रमा स्थित हो तो लग्न राशि की दिशा मे और सूर्य स्थित हो तो लग्नेश की दिशा में चोरी की गई वस्तु मिलती है। शीर्षोदय लग्न में पूर्ण चन्द्र अथवा शुभग्रह स्थित हों और लग्न स्थान पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो अथवा लाभ स्थान में बलवान् शुभग्रह स्थित हों तो चोरी की गई वस्तु की शीघ्र प्राप्ति होती है। यदि लग्न से द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान में शुभग्रह हों, प्रथम तृतीय और छठवें स्थान में पापग्रह हों तो चोरी हुई वस्तु या खोई गई वस्तु की प्राप्ति होती है। लग्न में पूर्ण चन्द्र हो और उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि हो अथवा केन्द्र और उपचय स्थान में शुभ ग्रह हों तो भी खोई हुई वस्तु की प्राप्ति हो जाती है। लग्न में पूर्ण चन्द्र, गुरु, शुक्र और बुध इन ग्रहों में से कोई एक या दो ग्रह हों अथवा सप्तम स्थान में शुभग्रह हों तो भी चोरी गई अथवा खोई हुई वस्तु की प्राप्ति हो जाती है। प्रश्नलग्न या चतुर्थ स्थान से दूसरे और तीसरे स्थान में शुभग्रह हो तो भी नष्ट हुआ द्रव्य कुछ समय के बाद मिल जाता है। प्रश्नलग्न स्थान में पापग्रहों की राशि हो और लग्नस्थान पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो भी खोई हुई वस्तु की प्राप्ति दस-पन्द्रह दिन के बाद हो जाती है। यदि प्रश्न समय सिंह, वृश्चिक और कुम्भ इन तीन राशियों में से कोई भी राशि स्वनवांश युक्त सप्तम स्थान में हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो चोरी की गई वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है अथवा आठवें स्थान में बलवान् मङ्गल हो तो भी खोई हुई

वस्तु नहीं मिलती है। यदि लग्नस्थान को बलवान् सूर्य या मङ्गल देखते हों तो चोरी की गई वस्तु ऊपर; बुध या शुक्र देखते हों तो भित्ति (दीवाल) आदि में खोदे हुए स्थान में; बृहस्पति या चन्द्रमा देखते हों तो समान भूमि में; शनि या राहु बलवान् होकर लग्न को देखते हो तो भूमि में गड्ढे के अन्दर एव बलवान् रवि देखता हो तो छत के ऊपर खोई हुई वस्तु की स्थिति समझनी चाहिये। शुक्र या चन्द्रमा लग्न में स्थित हों या लग्न को देखते हों तो नष्ट वस्तु जल में; बृहस्पति देखता हो तो देवस्थान में; रवि देखता हो तो पशुस्थान में; बुध देखता हो तो ईंटों के स्थान में; मङ्गल देखता हो तो राख के भीतर एव शनि और राहु देखते हों तो घर के बाहर या वृक्ष के नीचे खोई हुई वस्तु को जानना चाहिये।

चोर का नाम जानने की रीति

यदि प्रश्नलग्न चर राशि में हो तो चोर के नाम का पहला वर्ण सयुक्ताक्षर अर्थात् द्वारिका, व्रजरत्न आदि; स्थिर लग्न हो तो कृदन्त (पद संज्ञक) वर्ण अर्थात् भवानीशंकर, मङ्गलसेन इत्यादि और द्विस्वभाव लग्न हो तो स्वर वर्ण वाला नाम अर्थात् ईश्वरदास, ऋषभचन्द इत्यादि समझना चाहिये।

मूक प्रश्न विचार

आलिंगियम्मि जीवं मूलं अभिधूमितेसु वग्गेसु।
दंलिह[1] भणहडाउये[2] तस्सारसण्ण सा भरणी॥

अर्थ—आलिङ्गित वर्ण जीवसंज्ञक; अभिधूमित मूलसज्ञक और दग्ध वर्ण धातुसंज्ञक होते हैं। प्रश्नाक्षरों में जिस प्रकार के वर्णों की अधिकता रहती है; उसी संज्ञक प्रश्न ज्ञात करना चाहिये।

विवेचन—जब कोई व्यक्ति आकर प्रश्न करता है कि मेरे मन में कौनसा विचार है? उस समय पहले की प्रक्रिया के अनुसार फल, पुष्प और देवता आदि के नाम पूछ कर प्रश्नाक्षर ग्रहण कर लेने चाहिये। यदि प्रश्नाक्षरों में आलिङ्गित वर्ण अधिक हों तो जीव सम्बन्धी प्रश्न; अभिधूमित वर्ण हों तो मूलसम्बन्धी प्रश्न एवं दग्ध वर्ण अधिक हों तो धातु सम्बन्धी प्रश्न समझना चाहिये।

ग्रन्थान्तरों में प्रश्नवाक्य की प्रथम मात्रा से ही जीव, मूल और धातु सम्बन्धी विचार किया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर उपर्युक्त गाथावाली वर्णाधिक वाली प्रक्रिया विशेष वैज्ञानिक जँचती है।

मूक प्रश्न करते समय पृच्छक की ऊर्ध्व[3] दृष्टि हो तो जीवसम्बन्धी विचार, भूमि की ओर दृष्टि हो तो मूलसम्बन्धी विचार, तिरछी दृष्टि हो तो धातुसम्बन्धी विचार एवं मिश्र दृष्टि—कुछ भूमि की ओर और कुछ आकाश की ओर दृष्टि हो तो मिश्र—जीव, धातु और मूलसम्बन्धी मिश्रित विचार पृच्छक के मन में समझना चाहिये।

यदि पृच्छक बाहु[4], मुख और सिर का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे तो जीव सम्बन्धी विचार; उदर, हृदय और कटि का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे तो धातुसम्बन्धी एवं वस्ति, गुह्य, जघा और चरण का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे तो मूल सम्बन्धी विचार पृच्छक के मन में समझना चाहिये। उर्ध्व स्थित हो कर प्रश्न करे तो जीव चिन्ता, सामने हो कर प्रश्न करे तो मूल चिन्ता और नीचे हो कर प्रश्न करे तो धातु चिन्ता कहनी चाहिये। यदि प्रश्न समय पृच्छक जल के पास हो तो जीव चिन्ता, अन्न के पास हो तो मूलचिन्ता और अग्नि के समीप हो तो धातुचिन्ता कहनी चाहिये। पृच्छक पूर्व, पश्चिम और आग्नेय कोण में स्थित होकर प्रश्न करे तो धातुसम्बन्धी विचार; उत्तर, दक्षिण और ईशान[5] कोण में स्थित होकर प्रश्न करे तो जीव चिन्ता एवं वायव्य और नैर्ऋतकोण में स्थित हो कर प्रश्न करे तो मूल चिन्ता पृच्छक के मन में समझनी चाहिये।

---

१ मुदलिह—क० मू०। २ भणणदि—ता० मू। ३ के० प्र० र० पृ० ४५। ४ के० प्र० र० पृ० ४५। ५ के० प्र० र० पृ० ४६।

मुष्टिकाप्रश्न विचार

जब यह पूछा जाय कि मुट्ठी में किस रंग की चीज है? तो पृच्छक के प्रश्नाक्षर लिख लेना चाहिये। यदि प्रश्नाक्षरों में पहले के दो स्वर[1] आलिङ्गित हों और तृतीय स्वर अभिधूमित हो तो मुट्ठी में श्वेत रंग की वस्तु; पूर्व के दो स्वर अभिधूमित हों और तृतीय स्वर दग्ध हो तो पीले रंग की वस्तु; पूर्व के दो स्वर दग्ध और तृतीय आलिङ्गित हो तो रक्तश्याम वर्ण की वस्तु; प्रथम स्वर दग्ध, द्वितीय आलिङ्गित और तृतीय अभिधूमित हो तो श्याम-श्वेत वर्ण की वस्तु; प्रथम आलिङ्गित, द्वितीय दग्ध और तृतीय अभिधूमित हो तो काले रंग की वस्तु एवं प्रथम दग्ध, द्वितीय अभिधूमित और तृतीय आलिङ्गित स्वर हो तो हरे रंग की वस्तु मुट्ठी में समझनी चाहिये। यदि प्रश्नाक्षरों में पृच्छक का प्रथम स्वर अभिधूमित, द्वितीय आलिङ्गित और तृतीय दग्ध हो तो विचित्र वर्ण की वस्तु; तीनों स्वर आलिङ्गित हों तो शृंग वर्ण की वस्तु; तीनों दग्ध हों तो नील वर्ण की वस्तु एवं तीनों अभिधूमित स्वर हो तो काञ्चन वर्ण की वस्तु समझनी चाहिये।

मुष्टिका प्रश्न में जीव, धातु और मूल सम्बन्ध का द्योतक चक्र

जीव	मूल	धातु
तिर्यक् दृष्टि	ऊर्ध्व दृष्टि	भूमि दृष्टि
उदर, हृदय, कटि स्पर्श	बाहु, मुख, सिरस्पर्श	वस्ति, गुदा, जङ्घा स्पर्श
अधः स्थान में स्थित	ऊर्ध्व स्थान में स्थित	सम्मुख स्थित
अग्नि पास में	जल पास में	अन्न पास में
पूर्व, पश्चिम, अग्नि कोण से प्रश्न	उत्तर, दक्षिण, ईशान कोण से प्रश्न	वायव्य और नैर्ऋत कोण से प्रश्न

विशेष—चंपा, गुलाब, नारियल, आम, जामुन आदि प्रसिद्ध प्रश्नवाक्यों का उच्चारण प्रायः सदा सभी पृच्छक करते हैं। अतएव पृच्छक से इन प्रसिद्ध फल, पुष्पादि के नामों को छोड़ अन्य प्रश्न वाक्य ग्रहण करना चाहिये। अथवा पृच्छक आते ही जिस वाक्य से बात-चीत आरम्भ करे उसे ही प्रश्न वाक्य मानकर प्रश्नाक्षर ग्रहण करने चाहिये। प्रश्नफल प्रतिपादन में सबसे बड़ी विशेषता प्रश्नवाक्य की है, अतः फलप्रतिपादक को प्रश्नवाक्य सावधानी और चतुराई पूर्वक ग्रहण करना चाहिये।

पूर्वोक्त प्रक्रिया से जीव, मूल और धातु के भेद-प्रभेदों का विशेष विचार कर फल अवगत करना चाहिये।

आलिङ्गितादि मात्राओं का निवास

आलिङ्गएसु सग्गे[2] मत्ता अभिधूमिएसु[3] दड्ढेसुं[4]।
ण पुलेया[5] एवं खु सारणा वायरणे ? ॥

अर्थ—आलिङ्गित मात्राओं का स्वर्ग में, अभिधूमित का पृथ्वी पर और दग्ध मात्राओं का पाताल लोक में निवास रहता है।

---

१ के० प्र० र० पृ० ४६-४८ २ सग्गं—क० मू०। ३ अभिधमितेसु—क० मू०। ४ माहीसु—ता० मू०। दंडेसु—ता० म०। ५ पुढविया—क० मू०।

विवेचन—यदि प्रश्नाक्षरों के आदि में आलिङ्गित मात्राएँ हों तो उस प्रश्न का सम्बन्ध स्वर्ग से, अभिधूमित मात्राएँ हों तो पृथ्वी से और दग्धमात्राएँ हों तो पाताल लोक से समझना चाहिये। यहाँ मात्रा निवास का कथन चोरी और मूक प्रश्नों के निर्णय के लिये किया है। ज्योतिष में बताया गया है कि यदि प्रश्नाक्षरों में तृतीय, सप्तम और नवम मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो देव सम्बन्धी प्रश्न; प्रथम, द्वितीय और द्वादश मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो मनुष्य सम्बन्धी प्रश्न; चतुर्थ, अष्टम और दशम मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो पक्षिसम्बन्धी प्रश्न एवं पञ्चम, षष्ठ और एकादश मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो दैत्य सम्बन्धी प्रश्न समझना चाहिये।

यदि देवयोनि सम्बन्धी प्रश्न हो तो प्रश्नाक्षरों के प्रारम्भ में आलिङ्गित मात्रा होने से देव का निवास स्वर्ग में, अभिधूमित होने से मृत्युलोक में और दग्ध मात्रा होने से पाताल लोक में समझना चाहिये। इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी प्रश्न में आलिङ्गित और दग्ध मात्राओं के होने पर मृत मनुष्य सम्बन्धी प्रश्न और अभिधूमित मात्राओं के होने पर जीवित मानव सम्बन्धी प्रश्न समझना चाहिये।

आलिङ्गितादि मात्राओं का स्वरूप बोधकचक्र

आलिङ्गित	अभिधूमित	दग्ध	संज्ञा
अ इ ए ओ	आ ई ऐ औ	उ ऊ अं अः	स्वर-मात्राएँ
पुरुष	स्त्री	नपुंसक	संज्ञा
सत्त्व	रज	तम	गुण
स्वर्ग	पृथ्वी	पाताल	निवास स्थान

लाभालाभविचार

प्रश्ने आलिङ्गितैर्लाभः, अभिधूमितैरल्पलाभः, दग्धैर्नास्ति लाभः।

अर्थ—पृच्छक के प्रश्न के प्रश्नाक्षर आलिङ्गित हों तो लाभ, अभिधूमित हों तो अल्पलाभ और दग्ध हों तो लाभ नहीं होता है।

विवेचन—यों तो लाभालाभ प्रश्न का विचार ज्योतिष शास्त्र में अनेक दृष्टिकोणों से किया गया है, पर यहाँ आचार्य ने आलिंगितादि प्रश्नाक्षरों पर से जो विचार किया है उसका अभिप्राय यह है कि यदि प्रश्न के आदि में आलिंगित मात्रा हो या समस्त प्रश्नाक्षरों में आलिगित मात्राओं का योग अधिक हो तो पृच्छक को लाभ, अभिधूमित संज्ञक प्रश्नाक्षरों की आदि मात्रा हो या समस्त प्रश्नाक्षरों में अभिधूमित मात्राओं की संख्या अधिक हो तो अल्पलाभ एवं दग्ध संज्ञक आदि मात्रा हो या समस्त प्रश्नाक्षरों में दग्ध संज्ञक मात्राओं की अधिकता हो तो लाभाभाव समझना चाहिये।

ज्योतिष के अन्य ग्रन्थों में बताया गया है कि तीन और पाँच आलिङ्गित मात्राओं के होने पर स्वर्ण-लाभ; सात, आठ और नौ आलिङ्गित मात्राओं के होने पर स्वर्णमुद्राओं का लाभ; दो और चार आलिङ्गित मात्राओं के होने पर रजत-मुद्राओं का लाभ एवं एक या दो आलिङ्गित मात्राओं के होने पर साधारण द्रव्य लाभ होता है। एक, दो और तीन अभिधूमित मात्राओं के होने से साधारण द्रव्य लाभ, चार, पाँच और छः अभिधूमित मात्राओं के साथ दो आलिङ्गित मात्राओं के होने से सहस्र मुद्राओं का लाभ; सात, आठ और

१ अभिधूमितेऽल्पलाभः–क० मू०। २ दग्धे नास्ति लाभः–क० मू०।

दस अभिधूमित मात्राओं के साथ दो से अधिक आलिङ्गित मात्राओं के होने से आभूषण लाभ; दो और तीन अभिधूमित मात्राओं के साथ पाँच आलिङ्गित मात्राओं के होने से कांचन और पृथ्वी लाभ; नौ और दस से अधिक अभिधूमित मात्राओं के साथ एक या दो दग्ध मात्राओं के होने से साधारण हानि; तीन या चार अभिधूमित मात्राओं के साथ दो या तीन दग्ध मात्राओं के होने से लाभाभाव; तीन से अधिक आलिंगित मात्राओं के साथ एक या दो दग्ध और चार अभिधूमित मात्राओं के होने से सम्मानलाभ; पाँच आलिङ्गित मात्राओं के साथ दो अभिधूमित और तीन दग्ध मात्राओंके होने से पृथ्वीलाभ; चार दग्ध मात्राओं के साथ एक आलिङ्गित और दो अभिधूमित होने से सहस्र मुद्राओं की हानि; सात अभिधूमित मात्राओं के साथ इतनी ही आलिङ्गित मात्राओं के होने से अपरिमित धनलाभ तथा दग्ध मात्राओं के होने से धनहानि; चार अभिधूमित मात्राओं के साथ चार आलिङ्गित मात्राओं के होने से स्त्रीलाभ, सात दग्ध मात्राओं के साथ एक आलिङ्गित और एक अभिधूमित के होने से स्त्रीहानि और धनहानि; तीन आलिङ्गित मात्राओं के साथ सात अभिधूमित और दो दग्ध मात्राओं के होने से सैकड़ों रुपयो का लाभ, ग्यारह दग्ध मात्राओं के साथ पाँच अभिधूमित और चार आलिङ्गित हो तो अपार कष्ट के साथ धनहानि; दस से अधिक आलिङ्गित मात्राओं के साथ दो दग्ध और चार से कम अभिधूमित मात्राओं के होने पर वस्त्र, धन और कांचन का लाभ एवं तीनों सञ्ज्ञकों की मात्राओं की संख्या समान हो तो साधारण लाभ कहना चाहिये।

यों तो लाभालाभ निकालने के अनेक नियम हैं पर आलिङ्गितादि मात्राओं के लिये गणित के निम्न नियम अधिक प्रचलित हैं–

१–आलिङ्गित मात्राओं को दग्ध मात्राओं की संख्या से गुणाकर अभिधूमित मात्राओं की संख्या का भाग देने पर सम शेष में लाभ और विषम शेष में हानि समझना चाहिये। यदि इस गणित प्रक्रिया में शून्य लब्धि और विषम शेष आया हो तो महाहानि तथा शून्य शेष और शून्य लब्धि हो तो अपार कष्ट समझना चाहिये।

२–प्रश्नाक्षरो में आलिङ्गितादि सञ्ज्ञाओ में जिस संज्ञा की मात्राएँ अधिक हो उन्हें सात से गुणाकर २२ का भाग देने पर सम शेष में लाभ और विषम शेष में लाभाभाव समझना चाहिये।

३–जिस संज्ञक अधिक मात्राएँ हों, उन्हें तीन स्थानों में रखकर एक जगह आठ से, दूसरी जगह चौदह से और तीसरी जगह चौबीस से गुणाकर तीनों गुणनफल राशियों में सात का भाग देना चाहिये। यदि तीनो स्थानो में सम शेष बचे तो अपरिमित लाभ, दो स्थानों में सम शेष बचे तो शक्ति प्रमाण लाभ और एक स्थान मे सम शेष बचे तो साधारण लाभ होता है। तीनो स्थानों में विषम शेष रहने से निश्चित हानि होती है।

द्रव्याक्षरों की संज्ञाएँ

दो वट्टा दो दीहा दो तत्ताहा दो य चउरस्स।
दो तिकायच्छिय दव्वक्खरा भणिया॥

अर्थ–दो अक्षर वृत्ताकार, दो दीर्घाकार, दो त्रिकोणाकार, दो चौकोर और दो सछिद्र कहे गये हैं।

विवेचन—चोरी गई वस्तु के स्वरूप विवेचन के लिये तथा अनेक प्रश्नों के उत्तर के लिये यहाँ आचार्य ने स्वरों का आकार प्रकार बताया है। बारह स्वरों में दो स्वर वृत्ताकार, दो दीर्घाकार, दो त्रिकोण, दो चौकोर, दो छिद्राकार और दो वक्राकार हैं। आगे नाम सहित वर्णन किया जाता है–

स्वर और व्यञ्जनों की संज्ञाएँ और उनके फल

अ इ वृत्तौ, आ ई दीर्घौ, उ ए त्र्यस्रौ, ऊ ऐ चतुरस्रौ, ओ अं सच्छिद्रौ, औ अः वृत्ताक्षरौ[1]। अ ए क च ट त प य शाः वर्तुलाः, स्निग्धकराः लाभकराः-लाभाः जीवितार्थेषु[3] गौरवर्णाः, दिवसचराः, गर्भे पुत्रकराः,पूर्वाशावासिनः सच्छिद्राः। ऐ ख छ ठ थ फ र षाः दीर्घाः स्त्रियोऽलाभकराः[4], अच्छिद्राः, रात्रिचराः, गर्भे पुत्रिकराः[5], शक्तियुक्ताः, पक्षाक्षराः, प्रथमवयसि दक्षिणदिग्वासिनः कृष्णवर्णाः[6]।

अर्थ—अ इ ये दो स्वर वृत्ताकार–गोल; आ ई ये दो स्वर दीर्घाकर–लम्बे; उ ए ये दो स्वर तिस्राकार–त्रिकोण; ऊ ऐ ये दो स्वर आयताकार–चौकोर, ओ अं ये दो स्वर छिद्राकार–छेद सहित और औ अः ये दो स्वर वक्राकार-टेढ़े आकार के हैं। अ ए क च ट त प य श ये वर्ण गोलाकार, स्निग्ध स्वरूप और लाभ करने वाले हैं। तथा ये वर्ण जीवित रहने के इच्छुक, गौरवर्ण, दिवसचर, गर्भ में पुत्र उत्पन्न करने वाले, पूर्वदिशा के वासी और सच्छिद्र हैं। ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये वर्ण लम्बे, स्त्री की हानि करने वाले, अछिद्र, रात्रि में विहार करने वाले और गर्भ में कन्याएँ उत्पन्न करने वाले हैं। ये शक्तिशाली, पक्षाक्षर, प्रथम अवस्था में दक्षिण दिग्वासी और कृष्णवर्ण हैं।

विवेचन—आचार्य ने उपर्युक्त प्रकरण में प्रश्नशास्त्र के महत्त्वपूर्ण रहस्य का बहुभाग बतला दिया है। तात्पर्य यह है कि जब प्रश्नाक्षर अ ए क च ट त प य श हों अर्थात् वर्ग का प्रथम अक्षर अथवा आचार्य प्रतिपादित पाँच वर्गों में से पहले वर्ग के अक्षर प्रश्नाक्षरों के आदि वर्ण हों तो चोरी के प्रश्न में गौर वर्ण का नाटा व्यक्ति पूर्व दिशा की ओर का रहने वाला चोर समझना चाहिये। जब सन्तान के सम्बन्ध में प्रश्न किया हो और उपर्युक्त वर्ण में कोई वर्ण प्रश्न का आदि वर्ण हो तो गौर वर्ण का सुन्दर स्वस्थ पुत्र होता है। विवाह–स्त्रीलाभ के सम्बन्ध में जब प्रश्न हो और प्रश्नाक्षरों की उपर्युक्त स्थिति हो तो नाटे कद की सुन्दर गौर वर्ण की भार्या जल्द मिलती है। यद्यपि ये वर्ण सच्छिद्र हैं, इससे विवाह होने में अनेक प्रकार की बाधाएँ आती हैं, पर दिवाबली होने के कारण सफलता मिल जाती है। धनलाभ और मुकद्दमा विजय के सम्बन्ध में प्रश्न किया हो और प्रश्नाक्षरों की स्थिति उपर्युक्त हो तो पूर्व की ओर से धनलाभ होता है; यों तो प्रारम्भ में धनहानि भी दिखाई पड़ती है, पर अन्त में धनलाभ होता है। मुकद्दमा के प्रश्न में बहुत प्रयत्न करने पर विजय की आशा कहनी चाहिये। यदि रोगी की रोगनिवृत्ति के सम्बन्ध में प्रश्न की उपर्युक्त स्थिति हो तो वैद्यक इलाज के द्वारा रोगी थोड़े दिनों में आरोग्य प्राप्त करता है।

जब प्रश्नाक्षरों के आदि वर्ण ऐ ख छ ठ थ फ र ष हों तो चोरी के प्रश्न में चोर लम्बे कद का, कृष्ण वर्ण, दक्षिण दिशा का रहने वाला और चोरी के काम मे पक्का हुशियार समझना चाहिये। ऐसे प्रश्नाक्षरों में चोरी गई चीज मिलती नहीं है, चोरी गई चीज की दिशा दक्षिण कहनी चाहिये। गर्भ के होने पर लड़का या लड़की कौन सन्तान उत्पन्न होगी? ऐसे प्रश्न में जब प्रश्नाक्षरों की उपर्युक्त स्थिति हो तो लम्बी, स्वस्थ और काले रंग की लड़की उत्पन्न होने का फल कहना चाहिये। विवाह के प्रश्न में उपर्युक्त स्थिति होने पर विवाह नहीं होता है। वाग्दान–सगाई हो जाने के बाद सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। धनलाभ के प्रश्न में उक्त स्थिति होने पर प्रारम्भ में धनलाभ और अन्त में धनहानि कहनी चाहिये। मुकद्दमा विजय के प्रश्न में उपर्युक्त स्थिति के होने पर थोड़ा प्रयत्न करने पर भी अवश्य विजय मिलती है। यद्यपि प्रारम्भ में ऐसा मालूम पड़ता है कि इसमें सफलता नहीं मिलेगी, लेकिन अन्ततो गत्वा विजय लक्ष्मी की ही प्राप्ति होती है।

---

१ वक्राक्षरौ–ता० मू०। २ बालाः–ता० मू०। ३ जीवितार्थाः–क० मू०। ४ स्त्रीणाम्–क० मू०। ५ गर्भे बहुपुत्रिकराः–ता०मू०। ६ चन्द्रोन्मीलनप्रश्नशास्त्रस्य ४९ तमश्लोकमादाय ५३ तमश्लोकपर्यन्तं–वर्णस्वरूपं द्रष्टव्यम्।

इ ओ ग ज ड द ब ल साः त्रिकोणाः, हरिताः, दिवसाक्षराः, युवानः, नागोरगाः, पुत्रकराः, पश्चिमदिग्वासिनः । ई औ घ झ ढ ध भ हाः चतुरस्राः मध्यच्छिद्राः, मासाक्षराः, यौवनघ्नाः, गौरश्यामाः, उत्तरदिग्वासिनः । उ ऊ ङ ञ ण न माः अं अः एते शुक्ल[2]पीताः, आरोहणा[3]क्षराः, संवत्सरा[4]क्षराः, अलाभकराः, सर्वदिशादर्शको[5] भवन्ति ।

अर्थ—इ ओ ग ज ड द ब ल स ये वर्ण त्रिकोण–तिकोने, हरे रङ्ग के, दिवसाक्षर–दिन बली अर्थात् उसी दिन में फल देने वाले, युवक संज्ञक, नागोरग जाति के, गर्भ के प्रश्न में पुत्र उत्पन्न करने वाले और पश्चिम दिशा में निवास करने वाले हैं । ई औ घ झ ढ ध भ ह ये वर्ण चौकोर, मध्य में छिद्रवाले, मासाक्षर–मासबली अर्थात् मास के मध्य में फल देने वाले, यौवन को नष्ट करने वाले, गौर श्यामवर्ण–गेहुआँ रंग और उत्तर दिशा में निवास करने वाले हैं । उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः ये वर्ण शुक्ल-पीतवर्ण, आरोहणाक्षर–ऊपर ऊपर वृद्धिगत होने वाले, संवत्सराक्षर–संवत् मे बली अर्थात् एक वर्ष में फल देने वाले, लाभ नहीं करने वाले और सभी दिशाओं को देखने वाले होते हैं ।

विवेचन—यदि प्रश्नाक्षरों के आद्य वर्ण इ ओ ग ज ड द ब ल स हों तो चोरी के प्रश्न में चोर युवक, काले रङ्ग का, मध्यम कद वाला और पश्चिम दिशा का निवासी होता है । उपर्युक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर चोरी गई वस्तु की प्राप्ति एक दिन के बाद होती है तथा चोरी की वस्तु जमीन के भीतर गड़ी समझनी चाहिये । सन्तान प्रश्न में जब उपर्युक्त वर्ण प्रश्न के आद्य वर्ण हों या समस्त प्रश्नाक्षरों में उपर्युक्त वर्णों की अधिकता हो तो सन्तान लाभ समझना चाहिये । गर्भस्थ कौन सी संतान है ? यह ज्ञात करने के लिये उक्त प्रश्नस्थिति में पुत्र लाभ कहना चाहिये । जिस व्यक्ति की उम्र ३० वर्ष से अधिक हो गई है, यदि ऐसा व्यक्ति सन्तान प्राप्ति के लिये प्रश्न करता है तो उपर्युक्त प्रश्नस्थिति मे निश्चय सन्तानप्राप्ति का फल कहना चाहिये । धनलाभ के प्रश्न में जब आद्य प्रश्नाक्षर इ ओ ग ज ड द ब ल स हों, या समस्त प्रश्नाक्षरो में इन वर्णों की अधिकता हो तो अल्पलाभ कहना चाहिये । यदि समस्त प्रश्नाक्षरो में तृतीय वर्ग के पाँच या सात वर्ण हों तो निश्चित धनलाभ और दो-तीन वर्णों के होने पर धनहानि कहनी चाहिये । मतान्तर में कहा गया है कि जब प्रश्नाक्षरों के आद्य अक्षर इ ओ ब ल स हों तो शारीरिक कष्ट और सन्तानमरण होता है । मुकद्दमा विजय के प्रश्न में जब प्रश्नाक्षर उपर्युक्त हो तो विजय मे सन्देह समझना चाहिये । ग ज द ये वर्ण यदि प्रश्नाक्षरो के आदि में हो तो निश्चित रूप से मुकद्दमा में हार कहनी चाहिये । रोगनिवृत्ति के प्रश्न में जब इ ओ ड प्रश्नाक्षरो के आद्य वर्ण हों तो रोगी की मृत्यु या मृत्यु तुल्य कष्ट एव ल स ज आद्य वर्ण हों तो बहुत समय के बाद प्रयत्न करने पर रोगनिवृत्ति कहनी चाहिये ।

यदि प्रश्नाक्षरों के आद्य वर्ण चतुर्थ वर्ग के–ई औ घ झ ढ ध भ व ह हो या प्रश्नाक्षरो में इन वर्णों की अधिकता हो तो चोरी के प्रश्न में वृद्ध, गेहुआँ वर्ण वाला, उत्तर दिशा का निवासी एव लम्बे कद का व्यक्ति चोर कहना चाहिये । उपर्युक्त प्रश्नाक्षरो के होने पर चोरी गई वस्तु एक महीने के भीतर प्रयत्न करने से मिल जाती है तथा चोरी गई वस्तु की स्थिति बक्स या तिजोरी में बतलाना चाहिये । यदि पशु चोरी का प्रश्न हो तो जङ्गल में उस पशु का निवास कहना चाहिये । यहाँ इतना और स्मरण रखना होगा कि

---

१ द्रष्टव्यम्–के० प्र० र० पृ० ८ । बृहज्ज्योतिषार्णव अ० ५ । २ शुक्ला:, पीता:–क० मू० । ३ अरुणाक्षरा:—क० मू० । ४ गौरव: श्याम: कृष्णसंवत्सराक्षरा:—क० मू० । ५ दर्शित:–ता० मू० ।

चोरी गया हुआ पशु थोड़े दिनों के बाद अपने आप ही आ जायगा ऐसा फल कहना चाहिये। इसका कारण यह है कि तृतीय वर्ग के वर्ण नागोरग जाति के हैं अत: उनका फल चौपाइयों की चोरी का अभाव है। सन्तान प्रश्न में जब आद्य प्रश्नाक्षर चतुर्थ वर्ग के हों तो सन्तानप्राप्ति का अभाव कहना चाहिये। यदि आद्य प्रश्नाक्षर झ ढ हों तो गर्भ का विनाश; भ व ई हों तो कन्याप्राप्ति और ह व प्रश्नाक्षरों के होने पर पुत्रलाभ, किन्तु उसका तत्काल मरण फल कहना चाहिये। धनलाभ के प्रश्न में आद्य प्रश्नाक्षर चतुर्थ वर्ग के अक्षर हों या समस्त प्रश्नाक्षरों में चतुर्थ वर्ग के अक्षरों की अधिकता हो तो साधारण लाभ; घ भ व आद्य प्रश्नाक्षर हों तो अल्प लाभ, सम्मान प्राप्ति एवं यशोलाभ, झ औ ह आद्य प्रश्नाक्षर हों या प्रश्नाक्षरों में इन वर्णों की अधिकता हो तो धनहानि, अपमान और पदच्युति आदि अनिष्ट-कारी फल कहना चाहिये। जय-विजय के प्रश्न में चतुर्थ वर्ग के आद्य प्रश्नाक्षरो के होने पर विजय लाभ, समस्त प्रश्नाक्षरों में चतुर्थ वर्ग के पाँच अक्षरों के होने पर ससम्मान विजयलाभ; तीन या सात अक्षरों के होने पर विजय और छ:, आठ और दस अक्षरों के होने पर पराजय कहनी चाहिये। यदि आद्य प्रश्नाक्षर झ ढ औ ह हों तो निश्चय पराजय; भ व ई हों तो जय और घ आद्य प्रश्नाक्षर हो तो सन्धि फल कहना चाहिये।

यदि पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण पञ्चम वर्ग के अक्षर हों तथा समस्त प्रश्नाक्षरों में पञ्चम वर्ग के अक्षरों की अधिकता हो तो चोरी के प्रश्न में चोरी गया द्रव्य एक वर्ष के भीतर अवश्य मिल जाता है तथा चोर का सम्यक् पता भी लग जाता है। जब ङ ञ न आद्य प्रश्नाक्षर होते हैं उस समय चोरी की वस्तु का पता एक माह में लग जाता है, लेकिन जब ण ञ ऊ प्रश्नाक्षर होते हैं उस समय चोरी गई वस्तु का पता नहीं लगता है; हाँ, कुछ वर्षों के पश्चात् उस वस्तु के सम्बन्ध में समाचार अवश्य मिल जाता है। आलिङ्गितकाल में जब प्रश्नाक्षरो में पञ्चम वर्ग के वर्णों की अधिकता आवे तो चोरी के प्रश्न में पृच्छक के घर में ही चोरी की चीज को समझना चाहिये। अभिधूमित काल के प्रश्न में आद्याक्षर म न के होने पर चोरी की वस्तु का पता शीघ्र लग जाने का फल बताना चाहिये। यहाँ इतना और स्मरण रखना होगा कि दग्ध काल में किया गया प्रश्न सदा निरर्थक या विपरीत फल देने वाला होता है; अत: दग्ध काल में पञ्चम वर्ग के वर्णों के अधिक होने पर भी चोरी की गई वस्तु का अभाव-अप्राप्ति फल ज्ञात करना चाहिये। सन्तानप्राप्ति के प्रश्न में जब आद्य वर्ण पञ्चम वर्ग के—उ ऊ ङ ञ ण न म अ अ: हों तो विलम्ब से सन्तान लभ समझना चाहिये। यदि आलिङ्गित काल में सन्तानप्राप्ति का प्रश्न किया हो और आद्य प्रश्नाक्षर अ: न म हों तो निश्चित रूप से पुत्रप्राप्ति; तथा आद्य अक्षर उ ऊ हो तो कन्या प्राप्ति का फल बताना चाहिये। अभिधूमित काल में यदि यही सन्तान प्राप्ति का प्रश्न किया गया हो तो जप, तप आदि शुभ कार्यों के करने पर सन्तानप्राप्ति एव दग्ध काल में यदि प्रश्न किया हो तो सन्तान के अभाव का फल बतलाना चाहिये। लाभालाभ के प्रश्न में आद्य प्रश्नाक्षर पञ्चम वर्ग के वर्ण हों या पञ्चम वर्ग के वर्णों की प्रश्नाक्षरों के वर्णों में सख्या अधिक हो तो लाभाभाव; यदि आलिङ्गित काल में प्रश्न किया गया हो और आद्य प्रश्नाक्षर म न ण हों तो स्वर्णमुद्राओं का लाभ कहना चाहिये। आलिङ्गित काल के प्रश्न में प्रथम वर्ग के तीन वर्ण और पंचम वर्ग के पाँच वर्ण हों तो जमीन के नीचे से धनलाभ; द्वितीय वर्ग के चार वर्ण, तृतीय वर्ग के तीन वर्ण और पंचम वर्ण के छ: वर्ण हो तो स्त्रीलाभ, सम्मानप्राप्ति; प्रथम वर्ग के दो वर्ण, चतुर्थ वर्ग के सात वर्ण और पंचम वर्ण के आठ वर्ण हो तो यशोलाभ एवं चतुर्थ वर्ग के चार वर्ण और पचम वर्ग के चार से अधिक वर्ण हों तो धन-कुटुम्ब हानि, शारीरिक कष्ट, कलह आदि अनिष्ठ फल कहना चाहिये। जय-पराजय के प्रश्न में आद्य प्रश्नाक्षर उ ऊ ङ ञ ण न म अं अ: वर्ण हो तो विजयप्राप्ति तथा समस्त प्रश्नाक्षरों में पंचम वर्ग के वर्णों की अधिकता हो तो साधारणत: विजय तथा आद्य प्रश्नाक्षर अं अ: मात्रा वाले हों तो पराजय फल समझना चाहिये। रोगनिवृत्ति के प्रश्न में आलिङ्गित काल में पंचम वर्ग के वर्णो की संख्या प्रश्नश्रेणी में

अधिक हो तो जल्द रोग निवृत्ति; चतुर्थ वर्ग के वर्णों की संख्या अधिक हो तो विलम्ब से रोगनिवृत्ति और ण ङ आद्य प्रश्नाक्षर हों तो प्रयत्न करने पर एक वर्ष में रोगनिवृत्ति का फल बतलाना चाहिये। जब पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण पंचम वर्ग का हो तो रोगनिवृत्ति के प्रश्न में डाक्टरी इलाज करने से जल्दी लाभ होता है। अभिधूमित काल के प्रश्न में रोग-आरोग्य विचार करने के लिये प्रत्येक वर्ग के वर्णों को प्रश्नाक्षरों में से अलग अलग लिख लेना चाहिये। पुनः द्वितीय वर्ग की मात्राओं की सख्या को चतुर्थ वर्ग की मात्राओं की संख्या से गुणाकर पृथक् गुणनफल को लिख लेना चाहिये। पश्चात् प्रथम, तृतीय और पचम वर्ग की व्यञ्जन संख्याओं को परस्पर गुणा कर गुणनफल को दो स्थानों में रखना चाहिये। प्रथम स्थान में पूर्व स्थापित गुणनफल से भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान के गुणनफल में जोड़ देना चाहिये। पश्चात् जो योगफल आवे उसमें समस्त प्रश्नाक्षरों की मात्रासंख्या से भाग देने से सम शेष में निश्चय रोगनिवृत्ति और विषम शेष में मृत्यु फल कहना चाहिये। यहाँ इतनी और विशेषता है कि सम लब्धि और सम शेष में जल्दी अल्प कष्ट में ही रोगनिवृत्ति; विषम लब्धि और सम शेष में कुछ विलम्ब से बीमारी भोगने के बाद रोगनिवृत्ति; सम लब्धि और विषम शेष में अधिक कष्ट भोगने के उपरान्त रोगनिवृत्ति एवं विषम लब्धि और विषम शेष में मृत्युप्राप्ति कहनी चाहिये।

मासपरीक्षा विचार

अथ दिनमाससंवत्सरपरीक्षां वक्ष्यामः—तत्र अ ए कं[1] (का·) फाल्गुनः, चे ट (चटौ)[2] चैत्रः, तपौ कार्तिकः, यशौ मार्गशीर्षः[3], आ ऐ ख छ ठ थ फ र षाः माघः, इ ओ ग ज ड दाः वैशाखः, द ब ल साः ज्येष्ठः, ई औ घ झ ढा आषाढः, ध भ व हाः श्रावणः, उ ऊ ङ ञ णाः भाद्रपदः, न म अं अः आश्वियुँजाः (युक्), [आ ई ख छ ठाः पौषः]।[4]

अर्थ—दिन, मास और संवत्सर की परीक्षा को कहते हैं। इन दिनादि की परीक्षा में सर्व प्रथम मासपरीक्षा का विचार किया जाता है। यदि प्रश्नाक्षर अ ए क हों तो फाल्गुन, च ट हों तो चैत्र, त प हों तो कार्तिक, य श हों तो अगहन, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष हों तो माघ, इ ओ ग ज ड द हों तो वैशाख, द ब ल स हों तो ज्येष्ठ; ई औ घ झ ढ हों ता आषाढ़, ध भ व ह हो तो श्रावण, उ ऊ ङ ञ ण हों तो भाद्रपद, आ ई ख छ ठ हों तो पौष एवं न म अं अः हों तो आश्विन—क्वार मास समझना चाहिये। अभिप्रायः यह है कि अ ए क अक्षर फाल्गुन संज्ञक, च ट चैत्र संज्ञक, त प कार्तिक संज्ञक, य श मार्गशीर्ष संज्ञक, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष माघ संज्ञक, इ ओ ग ज ड वैशाख संज्ञक, द ब ल स ज्येष्ठ संज्ञक, ई औ घ झ ढ आषाढ़ संज्ञक, ध भ व ह श्रावण संज्ञक, उ ऊ ङ ञ ण भाद्रपदसंज्ञक, न म अं अः आश्विन संज्ञक और आ ई ख छ ठ पौष संज्ञक हैं।

---

१ अ ए कः—ता० मू०। २ चटः—ता० मू०; चटौ—क० मू०। ३—मार्गशिरः—क० मू०; अग्रहायणः—ता० मू०। ४ "होइ चटेहिं चित्तो वैसाहो होइ गजडेहिं वण्णेहिं। जिट्ठोवि दबलसेहिं ई ओघझढेहिं आसाढो॥ बहु होइ धभवहेहिं सरिरिउ सरङञणेहिं भजवउए। बिंदुविसग्गा असेसय पञ्चमवण्णेहिं आसिण सु॥ तहत्तप कत्तिकमासो कहितु पढमेहिं दोहिं वण्णेहिं। यसवण्णेहि वि दोहि मिगसर णामो अ मासो अ॥ आईखछट्ठेहिं सोऽथ फरषवण्णेहिं होइ तहा माहो। फग्गुणमासो ससिमुणि सरसहि तहकवारेण॥"—अ० मू० सा० गा० ६९–७२।

माससंज्ञाबोधकचक्र

मास नाम	अक्षरों का विवरण	अर्हच्चूडामणिसारोक्त संज्ञाएँ
चैत्र	च ट	च ट
वैशाख	इ ओ ग ज ड द	ग ज ड
ज्येष्ठ	द ब ल स	द ब ल स
आषाढ़	ई औ घ झ ढ	ई औ घ झ ढ
श्रावण	ध भ व ह	ध भ व ह
भाद्रपद	उ ऊ ङ ञ ण	उ ऊ ङ ञ ण न
क्कार	न म अं अः	अं अः अनुस्वार विसर्ग
कार्तिक	त प	त प
अगहन	य श	य श
पौष	आ ई ख छ ठ	आ ई ख छ ठ
माघ	आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष	थ फ र ष
फाल्गुन	अ ए क	अ ए क

विवेचन–आचार्य ने जो मास संज्ञक अक्षर बतलाये हैं उनका उपयोग नष्टजातक, कार्यसिद्धि, नष्ट वस्तु की प्राप्ति, पथिक आगमन, लाभालाभ, जयपराजय एवं अन्य समयसूचक प्रश्नों के फल अवगत करने के लिये करना चाहिये। यदि पृच्छक के आद्य प्रश्नाक्षर अ ए क हों या समस्त प्रश्नाक्षरो में ये तीन अक्षर हो तो कार्य सिद्धि के प्रश्न में फाल्गुन मास में कार्यसिद्धि कहनी चाहिये। इसी प्रकार नष्ट वस्तु की प्राप्ति भी फाल्गुन मास में उक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर कहनी चाहिये।

इन मास संज्ञाओं का सबसे बड़ा उपयोग नष्टजातक बनाने के लिये करना चाहिये। जिन लोगो की जन्मपत्री खो गई है या जिनकी जन्मपत्री नहीं है, उनकी जन्मपत्री इस दिन, मास, संवत्सर परीक्षा पर से बनाई जा सकती है। यों तो ज्योतिषशास्त्र में अनेक गणित के नियम प्रचलित हैं जिन पर से जातक की जन्मपत्री बनाई जाती है। पर प्रस्तुत प्रकरण में आचार्य ने केवल प्रश्नाक्षरों पर से बिना गणित क्रिया के ही जन्ममास, जन्मतिथि और जन्मदिन निकाला है। यदि पृच्छक स्वस्थ मन से अपने इष्टदेव की आराधना कर प्रश्न करे तो उसके प्रश्नाक्षरो का विश्लेषण कर विचार करना चाहिये। आद्य प्रश्नाक्षर अ ए क हो तो पृच्छक का जन्म फाल्गुन मास में, च ट हों तो चैत्र मास में, त प हो तो कार्त्तिक मास में, य श हो तो मार्गशिर मास में, थ फ र ष हों तो माघ मास में, ग ज ड हों तो वैशाख मास में, द ब ल स हो तो ज्येष्ठ मास में, ई औ घ झ ढ हों तो आषाढ़ मास में, ध भ व ह हों तो श्रावण मास में, उ ऊ ङ ञ ण न हों तो भाद्रपद में, अनुस्वार और विसर्गयुक्त आद्य प्रश्नाक्षर हो तो क्कार मास में एव आ ई ख छ ठ हों तो पौष मास में समझना चाहिये। परन्तु यहाँ इतना स्मरण रखना होगा कि प्रश्नाक्षरों का ग्रहण करते समय आलिङ्गितादि पूर्वोक्त समय का ऊहापोह साथ साथ करना है, बिना समय का विचार किये प्रश्नाक्षरों का फल सम्यक् नहीं घटता है। आलिङ्गित और अभिधूमित समय के प्रश्न तो सार्थक निकलते हैं। लेकिन दग्ध समय के प्रश्न प्रायः निरर्थक होते हैं, अतएव दग्ध समय में नष्टजातक का विचार नहीं करना चाहिये। आचार्य ने उपर्युक्त प्रकरण में वर्ग विभाजन की प्रणाली पर जो संज्ञाएँ निश्चित की हैं, उनसे दग्ध समय का निषेध अर्थात् निकल आता है। यों तो नष्ट-जातक के मास का निर्णय करने की और भी अनेक प्रक्रिया हैं, जिनमें गणित के आधार पर से नष्टजातक का विचार किया गया है। एक स्थान पर बताया है कि प्रश्न की आलिङ्गित मात्राओं को प्रश्न की दग्ध मात्राओं से गुण कर गुणनफल में प्रश्न की अभिधूमित मात्राओं से गुणा कर १२ का भाग देना चाहिये। एकादि शेष में क्रमशः चैत्रादि मासों को समझना चाहिये। तात्पर्य यह है कि प्रश्न की $\frac{\text{आलिं०} \times \text{अभि०} \times \text{दग्ध मा०}}{१२}$ = एकादि शेष मास आते हैं।

पक्षका विचार

अ ए क च ट त प य शाः शुक्लपक्षः, आ ऐ ख छ ठ थ फ र षाः कृष्णपक्षः, इ ओ[1] ग ज ड द ब ल साः शुक्लपक्षः, चतुर्थवर्गोऽपि ई औ घ झ ढ ध भ व हाः कृष्णपक्षः, पञ्चमवर्गोभयपक्षाभ्यामेकान्तरितभेदेन ज्ञातव्यः[3] ।

अर्थ–अ ए क च ट त प य श ये वर्ण शुक्लपक्षसंज्ञक, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये वर्ण कृष्णपक्ष संज्ञक, इ ओ ग ज ड द ब ल स ये वर्ण शुक्लपक्षसंज्ञक, ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये वर्ण कृष्णपक्ष सज्ञक और पंचम वर्ग आधा शुक्लपक्ष संज्ञक और आधा कृष्णपक्ष संज्ञक होता है। अभिप्राय: यह है कि उ ऊ ङ ञ ण न म ये वर्ण शुक्लपक्ष संज्ञक और अं अ: ये वर्ण कृष्णपक्ष संज्ञक होते हैं।

आचार्य का भाव यह है कि यदि आद्य प्रश्नाक्षर या समस्त प्रश्नाक्षरों में प्रथम वर्ग के वर्ण अधिक हों–अ ए क च ट त प य श अधिक हो तो शुक्लपक्ष, द्वितीय वर्ग के वर्ण–आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष अधिक हों तो कृष्णपक्ष, तृतीय वर्ग के वर्ण–इ ओ ग ज ड द ब ल स अधिक हों तो शुक्लपक्ष, चतुर्थ वर्ग के वर्ण–ई औ घ झ ढ ध भ व ह अधिक हों तो कृष्णपक्ष, पचम वर्ग के–उ ऊ ङ ञ ण न म ये वर्ण अधिक हो तो शुक्लपक्ष एवं पंचम वर्ग के–अं अ:–अनुसार और विसर्ग हो तो कृष्णपक्ष समझना चाहिये।

पक्षसंज्ञाबोधक चक्र

केवल ज्ञानप्रश्न चूड़ामणि का मत	अ ए क च ट त प य श	आ ऐ छ ख ठ थ फ र ष	इ ओ ग ज ड द ब ल स	ई औ घ झ ढ ध भ व ह	उ ऊ ङ ञ ण न म	अं अ:
केरल मत	अ क च ट त	आ ऐ ए ख छ ठ थ फ र ष	इ ग ज ड द ब ल स	ई औ घ झ ढ ध भ व ह	ऊ न म	प य श ओ अ अ:
स्वरशास्त्र का मत	अ इ	आ ई	उ ए	ऊ ऐ	अ औ	औ अ:
	शुक्लपक्ष	कृष्णपक्ष	शुक्लपक्ष	कृष्णपक्ष	शुक्लपक्ष	कृष्णपक्ष

विवेचन–नष्ट वस्तु किस पक्ष में प्राप्त होगी? यह जानने के लिये कोई व्यक्ति प्रश्न करे तो आद्य प्रश्नाक्षर अ ए क च ट त प य श होने से शुक्लपक्ष में, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष होने से कृष्णपक्ष में, इ ओ ग ज ड द ब ल स होने से शुक्लपक्ष में, ई औ घ झ ढ ध भ व ह होने से कृष्ण पक्ष में, उ ऊ ङ ञ ण न म होने से शुक्ल पक्ष में और अं अ: होने से कृष्ण पक्ष में पृच्छक की नष्ट वस्तु की प्राप्ति कहनी चाहिये। स्वरशास्त्र का मत है कि यदि प्रश्नाक्षरों की आद्य मात्राएँ अ इ हों तो शुक्लपक्ष में, आ ई हो तो कृष्णपक्ष में, उ ए हो तो शुक्लपक्ष में, ऊ ए हो तो कृष्णपक्ष में, अं आ हों तो शुक्लपक्ष में एव औ अ: हो तो कृष्णपक्ष में वस्तु की प्राप्ति समझनी चाहिये। नष्ट जन्मपत्री बनाने के लिये यदि प्रश्न हो तो प्रथम उपर्युक्त विधि से मास ज्ञान कर पक्ष का विचार करना चाहिये। यदि नष्टजातक के प्रश्न में प्रश्नाक्षरो की आद्य मात्रा अ इ हों तो शुक्ल पक्ष का जन्म, आ ई हों तो कृष्णपक्ष का जन्म; उ ए हों तो शुक्लपक्ष का जन्म, ऊ ऐ हों तो कृष्णपक्ष का जन्म, अं ओ हो तो शुक्लपक्ष का जन्म और औ अ: हों तो कृष्णपक्ष का जन्म जातक का कहना चाहिये।

---

१ 'ओ, इति पाठो नास्ति–क० मू०। २ चतुर्थवर्ग: कृष्णपक्ष:–क० मू०। ३ के० प्र० र० पृ० ११।

१–पृच्छक के समस्त प्रश्नाक्षरों में से आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध स्वर एवं व्यञ्जनों को पृथक्-पृथक् कर लिख लेना चाहिये। पश्चात् आलिङ्गित और दग्ध वर्णों की संख्या को परस्पर गुणा कर अभिधूमित वर्ण संख्या को आगत गुणनफल में जोड़ देना चाहिये। अनन्तर उस योगफल में दो का भाग देने से एक शेष में शुक्लपक्ष और शून्य या दो शेष में कृष्णपक्ष अवगत करना चाहिये।

२–प्रश्नाक्षरों में से द्वितीय और चतुर्थ वर्ग के अक्षरों को पृथक् कर दोनों संख्याओं का परस्पर गुणा कर लेना चाहिये। पश्चात् इस गुणनफल में प्रश्नाक्षरो में रहने वाले प्रथम और पञ्चम वर्ग के वर्णों की संख्या को जोड़ देना चाहिये और इस योगफल में से तृतीय वर्ग के वर्णों की संख्या को घटा देना चाहिये। पश्चात् जो शेष बचे उसमें दो का भाग देने पर एक शेष में शुक्लपक्ष और शून्य या दो शेष में कृष्ण पक्ष समझना चाहिये।

३–प्रश्नाक्षरो में रहने वाली सिर्फ आलिङ्गित मात्राओ को तीन से गुणा कर, गुणनफल में अभिधूमित और दग्ध मात्राओ की सख्या को जोड़ देने पर जो योगफल हो, उसमें दो का भाग देने पर एक शेष में शुक्लपक्ष और शून्य या दो शेष में कृष्णपक्ष समझना चाहिये।

४–अधराक्षर प्रश्नवर्ण हों तो कृष्णपक्ष और उत्तराक्षर प्रश्नवर्ण हों तो शुक्लपक्ष ज्ञात करना चाहिये।

तिथिविचार

अथ तिथयः–अ इ ए शुक्लपक्षप्रतिपत्। क २, च ३, ट ४, त ५, प ६, य ७, श ८, ग ९, ज १०, ड ११, द १२, ब १३, ल १४, स १५ इति शुक्लपक्षः। अं पञ्चम्यादि, अः त्रयोदश्याम्, अवर्गे ग्रामं कवर्गे ग्रामबाह्यं चवर्गे गव्यूतिमात्रम्, टवर्गे ६, तवर्गे १२, पवर्गे[1] १५, यवर्गे ४८, शवर्गे ९६, ङ ञ ण न म वर्गे १९२। एतदेवं[2] दिनमाससंवत्सराणां दृष्टप्रमाणमिति सर्वेषामेव गुणानां स एव कालो द्रष्टव्यः।

अर्थ–अब तिथिविचार कहते हैं–अ इ ए शुक्लपक्ष के प्रतिपदा संज्ञक, क वर्ण शुक्लपक्ष का द्वितीया संज्ञक, च वर्ण शुक्लपक्ष का तृतीया संज्ञक, ट वर्ण शुक्लपक्ष का चतुर्थी सज्ञक, त वर्ण शुक्लपक्ष का पञ्चमी संज्ञक, प वर्ण शुक्लपक्ष का षष्ठी संज्ञक, य वर्ण शुक्लपक्ष का सप्तमी संज्ञक, श वर्ण शुक्लपक्ष का अष्टमी संज्ञक, ग वर्ण शुक्लपक्ष का नौमी सज्ञक, ज वर्ण शुक्लपक्ष का दशमी सज्ञक, ड वर्ण शुक्लपक्ष का एकादशी संज्ञक, द वर्ण शुक्लपक्ष का द्वादशी सज्ञक, व वर्ण शुक्लपक्ष का त्रयोदशी संज्ञक, ल वर्ण शुक्लपक्ष का चतुर्दशी संज्ञक एव स वर्ण पूर्णिमा संज्ञक है। इस प्रकार शुक्लपक्ष की तिथियो का निरूपण किया गया है।

अं वर्ण कृष्णपक्ष की पञ्चमी का बोधक और अः कृष्णपक्ष की त्रयोदशी का बोधक है। ख वर्ण कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का बोधक, छ वर्ण कृष्णपक्ष की द्वितीया का बोधक, ठ वर्ण कृष्णपक्ष की तृतीया का बोधक, फ वर्ण कृष्णपक्ष की चतुर्थी का बोधक, र वर्ण कृष्णपक्ष की षष्ठी का बोधक, ष वर्ण कृष्णपक्ष की सप्तमी का बोधक, घ वर्ण कृष्णपक्ष की अष्टमी का बोधक, झ वर्ण कृष्णपक्ष की नौमी का बोधक, ढ वर्ण कृष्णपक्ष की दशमी का बोधक, ध वर्ण कृष्णपक्ष की एकादशी का बोधक, भ वर्ण कृष्णपक्ष की द्वादशी का बोधक, व वर्ण कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का बोधक और ह वर्ण अमावास्या का बोधक है।

प्रश्नाक्षर अवर्ग–अ आ इ ई उ ऊ हों तो गाँव में वस्तु, कवर्ग–क ख ग घ हों तो गाँव से बाहर जंगलादि में वस्तु, चवर्ग–च छ ज झ हो तो दो कोश की दूरी पर वस्तु, टवर्ग–ट ठ ड ढ हों तो बारह

१ पवर्गे २५–क० मू०। २ तदेव–क० मू०।

कोश की दूरी पर वस्तु, त वर्ग–त थ द ध हों तो २४ कोश की दूरी पर वस्तु, प वर्ग–प फ ब भ हों तो ३० कोश की दूरी पर वस्तु, य वर्ग–य र ल व हों तो ९६ कोश की दूरी पर वस्तु, श वर्ग–श ष स ह हों तो तो १९२ कोश की दूरी पर वस्तु और ङ ञ ण न म हों तो ३८४ कोश की दूरी पर वस्तु समझनी चाहिये। इस प्रकार दिन, मास, संवत्सर और स्थान प्रमाण कहा है, इसे सब प्रकार के प्रश्नों में घटा लेना चाहिये।

विवेचन–आचार्य ने उपर्युक्त प्रकरण में जो स्थान प्रमाण बतलाया है उसका प्रयोजन चोरी की गई वस्तु की स्थिति का पता लगाने के लिये है। चोरी के प्रश्न में जब प्रश्नाक्षर अ आ इ ई उ ऊ हों तो चोरी की वस्तु गाँव के भीतर और क ख ग घ प्रश्नाक्षर हो तो गाँव के बाहर वस्तु की स्थिति समझनी चाहिये। च छ ज झ प्रश्नाक्षरो के होने पर दो कोश की दूरी पर गाँव से बाहर, ट ठ ड ढ प्रश्नाक्षरों के होने पर १२ कोश की दूरी पर, त थ द ध प्रश्नाक्षरों के होने पर २४ कोश की दूरी पर, प फ ब भ प्रश्नाक्षरों के होने पर ५० कोश की दूरी पर, य र ल व प्रश्नाक्षरो के होने पर ९६ कोश की दूरी पर, श ष स ह के होने पर १९२ कोश की दूरी पर एवं ङ ञ ण न म प्रश्नाक्षरों के होने पर ३८४ कोश की दूरी पर वस्तु की स्थिति अवगत करनी चाहिये। परदेश में गये व्यक्ति की दूरी ज्ञात करने के प्रश्न में भी उपर्युक्त प्रश्नविधि से विचार किया जाता है।

नष्ट जन्मपत्री बनाने के लिये केवल तिथि विचार ही उपयोगी है। जैनाचार्य ने गणित क्रिया के अवलम्बन के बिना ही इस विषय का सम्यक् प्रतिपादन किया है।

वर्णों की गव्यूति संज्ञा का कथन

अ आ १; इ ई २; उ ऊ ३; ए ऐ ४; ओ औ ५; अं अः ६; यावत्तत्राक्षराणि तावद्योज्यम्। केवलिप्रश्ने दृश्यन्ते ताश्चवर्गे स्वरे ता संख्या यावदन्यवर्णसंयुक्ताक्षराणि दृश्यन्ते तदेव.संख्यां व्याख्यास्यामः–अ क च ट त प य शादयोऽवर्गे ग्रामम्; कवर्गे ग्रामबाह्यम्: द्विगव्यूतिः; चवर्गे ४ गव्यूतिः; टवर्गे ६ गव्यूतिः; तवर्गे १२ गव्यूतिः; पवर्गे २४ गव्यूतिः, यवर्गे ४८ गव्यूतिः; शवर्गे ९६ गव्यूतिः; ङ ञ ण न माः १०० गव्यूतिः। या गव्यूतिस्तदेव दिनमासवर्षसंख्यास्वरसंयोगेऽस्ति तथा सा वर्गस्य पूर्वोक्तक्रमेण क च ट त प य शादीनां विनिर्दिशेत्।

अर्थ—अ आ इन उभय वर्णों की एक संख्या, इ ई इन दोनों वर्णों की दो संख्या, उ ऊ इन दोनो वर्णों की तीन संख्या, ए ऐ इन दोनों वर्णों की चार संख्या, ओ औ इन दोनों वर्णों की पाँच संख्या एवं अं अः इन दोनो वर्णों की छः संख्या निर्धारित की गई है। जहाँ जितने अक्षर हों, वहाँ उतनी संख्या ज्ञात कर लेनी चाहिये। केवलज्ञान में जो स्वर संख्या और स्वर व्यञ्जन संयुक्त संख्या देखी गई है, यहाँ उसीका व्याख्यान किया जाता है।

अ क च ट त प य शादि वर्गों में–अ वर्ग प्रश्नाक्षर में गाँव में, कवर्ग में ग्राम बाह्य दो गव्यूति[५] मात्र; चवर्ग में ४ गव्यूति, टवर्ग में ६ गव्यूति; तवर्ग में १२ गव्यूति; पवर्ग में २४ गव्यूति, यवर्ग में ४८ गव्यूति,

१ यावत्वर्णाः–क० मू०। २ चवर्गे त्रिगव्यूतिः–क० मू०। ३ पवर्गे २८ गव्यूतिः–क० मू०। ४ तदा –क० मू०। ५ "गोर्यूतिः, क्रोशद्वये, क्रोशे च"—श० म० नि० पृ० १४१। "गव्यूतिः संख्यावाचकः—बृ० ज्यो०अ० केरल प्रकरण।

शवर्ग में ९६ गव्यूति और ङ ञ ण न म में १०० गव्यूति समझना चाहिये। जिस वर्ग की जो गव्यूति संख्या बतलाई गई है वही उसकी दिन, मास, वर्ष सख्या स्वरों के सयुक्त होने पर भी मानी जाती है। तथा पहले बताई हुई विधि से क च ट त प य शादि वर्गों की संख्या का निर्देश करना चाहिये।

विवेचन–यों तो आचार्य ने पहले भी तिथियो की संज्ञाओ के साथ वर्णों की गव्यूति संख्या कही है, पर वहाँ पर उसका अभिप्राय: वस्तु की दूरी निकालने का है और जो ऊपर वर्णों की गव्यूति बताई है उसका रहस्य दिन, मास, वर्ष संख्या निकालने का है। अभिप्राय यह है कि पहली गव्यूति संज्ञा द्वारा स्थान दूरी निकाली गई है और इसके द्वारा समय सम्बन्धी दूरी–कालावधिका निर्देश किया गया है अतएव यहाँ गव्यूति शब्द का अर्थ कोश न लेकर समय की सख्या का बोधक द्विगुनी राशि लेना चाहिये। बृहज्ज्योतिषार्णव के पंचम अध्याय के रत्न प्रकरण में गव्यूति शब्द सामान्य संख्या वाचक तथा जैन प्रश्नशास्त्र में दो संख्या का वाचक आया है। अतएव यहाँ पर जिस वर्ग की जितनी गव्यूति बतलाई गई हैं, उसकी दूनी संख्या ग्रहण करनी चाहिये। ऊपर जो स्वरो की सख्या कही है, उसमें भी गव्यूति सख्या ही समझनी चाहिये। अत: अ = १, आ = २, इ = ३, ई = ४, उ = ५, ऊ = ६, ए = ७, ऐ = ८, ओ = ९, औ = १०, अं = ११, अः = १२ हैं। तात्पर्य यह है कि यदि किसी का प्रश्न यह हो कि अमुक कार्य कब पूरा होगा? तो इस प्रकार के प्रश्न में यदि प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण अ हो तो एक दिन या एक मास अथवा एक वर्ष में, आ हो तो दो दिन या दो माह अथवा दो वर्षों में, इ हो तो तीन दिन या तीन माह अथवा तीन वर्षों में, ई हो तो चार दिन या चार मास अथवा चार वर्षों में, उ हो तो पाँच दिन या पाँच मास अथवा पाँच वर्षों मे, ऊ हो तो छ: दिन या छ: मास अथवा छ: वर्षों मे, ए हो तो सात दिन या सात मास अथवा सात वर्षों में, ऐ हो तो आठ दिन या आठ मास अथवा आठ वर्षों में, ओ हो तो नौ दिन या नौ मास अथवा नौ वर्षों में, औ हो तो दस दिन या दस मास अथवा दस वर्षों में, अं हो तो ग्यारह दिन या ग्यारह मास अथवा ग्यारह वर्षों में एव अ: हो तो बारह दिन या बारह मास अथवा बारह वर्षों में कार्य पूरा होता है। समयमर्यादा से सम्बन्ध रखने वाले जितने प्रश्न हैं, उन सबकी अवधि उपर्युक्त ढग से ही ज्ञात करनी चाहिये। इसी प्रकार स्वर सयुक्त क ख ग घ–का कि की कु कू के कै को कौ कं क:, खा खि खी खु खू खे खै खो खौ खं ख:, ग गा गि गी गु गू गे गै गो गौ गं ग:, घ घा घि घी घु घू घे घै घो घौ घं घ: प्रश्नाक्षरो के होने पर गाँव से बाहर चार कोश की दूरी पर पृच्छक की वस्तु एव चार दिन या चार मास अथवा चार वर्षों के भीतर उस कार्य की सिद्धि कहनी चाहिये। च छ ज झ स्वर संयुक्त प्रश्नाक्षरों- चा चि ची चु चू चे चै चो चौ चं च:, छ छा छि छी छु छू छे छै छो छौ छं छ:; ज जा जि जी जु जू जे जै जो जौ जं ज:, झ झा झि झी झु झू झे झै झो झौ झं झ:, के होने पर आठ दिन या आठ मास अथवा आठ वर्षों में कार्य होता है। ट ठ ड ढ स्वर संयुक्त प्रश्नाक्षरो—ट टा टि टी टु टू टे टै टो टौ टं ट:, ठ ठा ठि ठी ठु ठू ठे ठै ठो ठौ ठं ठ:; ड डा डि डी डु डू डे डै डो डौ डं ड:; ढ ढा ढि ढी ढु ढू ढे ढै ढो ढौ ढं ढ:; के होने पर बारह दिन या बारह मास अथवा बारह वर्षों में कार्य सिद्ध होता है। इसी प्रकार आगे भी स्वर संयोग की प्रक्रिया समझ लेनी चाहिये। जब नष्टजातक का प्रश्न हो उस समय इस स्वर-व्यञ्जन संयुक्त प्रक्रिया पर से जातक की गत आयु निकालनी चाहिये; पश्चात् पूर्वोक्त विधि से जन्ममास, जन्मदिन, जन्मपक्ष और जन्म संवत् जान कर आगे वाली विधि पर से इष्ट काल और लग्न का साधन कर नष्ट जन्मपत्री बना लेनी चाहिये।

इस गव्यूति संख्या पर से जय-पराजय का समय बड़ी आसानी से निकाला जा सकेगा; क्योंकि पृच्छक के प्रश्नाक्षरों पर से जय-पराजय की व्यवस्था का विचार कर पुन: उपर्युक्त विधि से समय अवधि का निर्देश करना चाहिये। सुख दु:ख, रोग नीरोग, हानि-लाभ एव समय के शुभाशुभत्व के निरूपण के लिये भी उपर्युक्त दिन, मास और संवत्सर संख्या की व्यवस्था परमोपयोगी है। अभिप्राय यह है समस्त कार्यों की समय मर्यादा के कथन में उपर्युक्त व्यवस्था का अवलम्बन लेना चाहिये।

गादि शब्दों के स्वर संयोग का विचार

अथ गादीनां स्वरसंयोगमाह–ग गा २, गि गी ३, गु गू ४, गे गै ५, गो गौ ६, गं गः ७। अथ खादीनां स्वरसंयोगमाह–ख खा ३, खि खी ४, खु खू ५, खे खै ६, खो खौ ७, खं खः ८। घादीनां चैवमेव–घ घा ४, घि घी ५, घु घू ६, घे घै ७, घो घौ ८, घं घः ९। ङ ङा ५, ङि ङी ६, ङु ङू ७, ङे ङै ८, ङो ङौ ९, ङं ङः १०। क का १, कि की २, कु कू ३, के कै ४, को कौ ५, कं कः ६। ककारादीनां[1] या संख्या ङकारस्य सा संख्या। क च ट त प य शादीनां या संख्या ठकारस्य सा संख्या ज्ञेया[2]। चकारस्य छ ठ थ फ र षादीनां च या संख्या यकारस्य संयोगे घ झ ढ ध भादीनां सा संख्या। थ संयोगे जकारादीनां [सा संख्या] ङ ञ ण न मादीनां च या संख्या। तत्र गृहीत्वाऽधराक्षराणि[3] च द्वितीयस्थानादौ राशी निरीक्षयेत्। या यस्य संख्या निश्चिता तस्मै[4] तस्यां दिशि मध्ये विनियोजयेत्। सम्मितां द्विगुणीकृत्य दशभिर्गुणयेत्[5]। सैषा[6] कालसंख्या विनिर्दिशेत्।

अर्थ–गादि वर्णों के स्वरयोग को कहते हैं–ग गा इन वर्णों की दो सख्या; गि गी इन वर्णों की तीन संख्या, गु गू इन वर्णों की चार संख्या, गे गै इन वर्णो की पाँच सख्या, गो गौ इन वर्णों की छः सख्या और गं गः इन वर्णों की सात सख्या है।

अब खादि वर्णों के स्वर सयोग को कहते हैं–ख खा इन वर्णों की तीन संख्या, खि खी इन वर्णो की चार संख्या, खु खू इन वर्णों की पाँच सख्या; खे खै इन वर्णो की छः सख्या; खो खौ इन वर्णों की सात और खं खः इन वर्णों की आठ सख्या होती है।

घादि वर्णों की सख्या का क्रम भी इस प्रकार अवगत करना चाहिये–घ घा इन वर्णो की चार सख्या; घि घी इन वर्णों की पाँच सख्या; घु घू इन वर्णों की छः सख्या, घे घै इन वर्णो की सात संख्या, घो घौ इन वर्णों की आठ सख्या एव घं घः इन वर्णो की नौ सख्या है।

ङ ङा इन वर्णों की पाँच सख्या, ङि ङी इन वर्णों की छः सख्या, ङु ङू इन वर्णों की सात संख्या; ङे ङै इन वर्णो की आठ सख्या; ङो ङौ इन वर्णों की नौ सख्या और ङं ङः इन वर्णों की दस सख्या है।

क का इन वर्णों की एक सख्या, कि की इन वर्णों की दो सख्या, कु कू इन वर्णों की तीन सख्या; के कै इन वर्णो की चार सख्या; को कौ इन वर्णो की पाँच सख्या और कं कः इन वर्णो की छः सख्या है। क का, कि की आदि की जो सख्या है ङ ङा, ङि ङी आदि की भी वही सख्या है अर्थात् ङ ङा इन वर्णों की एक संख्या, ङि ङी इन वर्णो की दो सख्या, ङु ङू इन वर्णो की तीन सख्या, ङे ङै इन वर्णो की चार संख्या, ङो ङौ इन वर्णों की पाँच संख्या और ङं ङः इन वर्णों की छः सख्या है। क च ट त प य शादि वर्णों की जो संख्या है, ठकार की वही संख्या है अर्थात् ठ ठा इन वर्णो की दो सख्या, ठि ठी इन वर्णो की चार संख्या, ठु ठू इन वर्णों की छः सख्या,, ठे ठै इन वर्णो की बारह सख्या, ठो ठौ इन वर्णों की चौबीस संख्या और ठं ठः इन वर्णों की अड़तालीस संख्या होती है। चकार की और छ ठ थ फ र ष इन वर्णों की जो संख्या है, यकार के संयोग होने पर घ झ ढ ध भ की वही संख्या होती है। ङ ञ ण न म की जो संख्या है थ संयुक्त जकार की वही संख्या होती है अर्थात् थ ज की संख्या १०० है।

---

१ के कादीनां–ता० मू०। २ ज्ञेया इति पाठो नास्ति–ता०मू०। ३ अधराक्षराः–क० मू०। ४ तस्ये-तस्य दिशि मध्ये–ता०मू०। ५ गुणयेच्च–ता० मू०। ६ एषा–क०मू०।

प्रश्नाक्षरों को ग्रहण कर द्वितीय स्थान में राशि का निरीक्षण करना चाहिये। जिस वर्ण की जो संख्या निश्चित की गई है उसको उसकी दिशा में लिख देना चाहिये। समस्त संख्याओं को जोड़ कर योगफल को दूना कर दस से गुणा करना चाहिये। गुणा करने से जो गुणनफल आवे वही काल संख्या समझनी चाहिये।

विवेचन—आचार्य ने उपर्युक्त प्रकरण में समयमर्यादा निकालने की एक निश्चित प्रक्रिया बतलाई है; इसमें प्रश्न के सभी वर्णों का उपयोग हो जाता है तथा सभी वर्णों की संख्या पर से एक निश्चित सख्या की निष्पत्ति होती है। यदि इस प्रक्रिया के अनुसार समयमर्यादा निकाली जाय तो निश्चित समयसंख्या दिनों में अवगत करनी चाहिये। जहाँ उलझन का सवाल हो वहाँ भले ही इस संख्या को मासों में ज्ञात करे। इस समयसख्या का उपयोग प्राय: सभी प्रकार के प्रश्नों के निर्णय में होता है। इसीलिये आचार्य ने समस्त संयुक्त, असयुक्त वर्णों की सख्याएँ पृथक् पृथक् निश्चित की हैं। अतएव समस्त प्रश्नाक्षरों की सख्या को एक स्थान में जोड़ कर रख लेना चाहिये, पश्चात् इस योगफल को दूना कर दस से गुणा करे और गुणनफल प्रमाण समयसंख्या समझे।

किसी भी प्रश्न के समय की सख्या को ज्ञात करने का एक नियम यह भी है कि स्वर और व्यञ्जनों की सख्या को पृथक्-पृथक् निकाल कर योग कर ले। यहाँ सख्या का क्रम निम्न प्रकार अवगत करे—अ = १, आ = २, इ = ३, ई = ४ उ = ५, ऊ = ६, ए = ७, ऐ = ८, ओ = ९, औ = १०, अं = ११, अः = १२, क = १३, ख = १४, ग = १५, घ = १६, च = १७, छ = १८, ज = १९, झ = २०, ट = २१, ठ = २२, ड = २३. ढ = २४, त = २५, थ = २६, द = २७, ध = २८, प = २९, फ = ३०, ब = ३१, भ = ३२, य = ३३, र = ३४, ल = ३५, व = ३६, श = ३७, ष = ३८, स = ३९, ह = ४० । ङ ञ ण न म = १०० ।

प्रश्न के स्वर और व्यञ्जनों की सख्या के योग में २० से गुणा करे और गुणनफल में व्यञ्जन सख्या का आधा जोड़ दे तो दिनात्मक समय संख्या आ जायगी।

उदाहरण-जैसे मोहन ने अपने कार्यसिद्धि की समयअवधि पूछी है। यहाँ मोहन से प्रश्नवाक्य पूछा तो उसने 'कैलाश पर्वत' कहा। यहाँ पर मोहन के प्रश्नवाक्य में स्वर और व्यञ्जनों का विश्लेषण किया तो निम्न रूप हुआ–

क् + ऐ + ल् + आ + स् + अ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ इस विश्लेषण में क् + ल् + स् + प् + र् + व् + त् व्यञ्जन हैं और ऐ + आ + अ + अ + अ + अ स्वर हैं। उपर्युक्त संख्या विधि से स्वर और व्यञ्जनों की सख्या निकाली तो–

१३ + ३५ + ३९ + २९ + ३६ + ३४ + २५ = २११ व्यञ्जन संख्या का योग।

८ + २ + १ + १ + १ + १ = १४ स्वर सख्या का योग।

२११ + १४ = २२५ योगफल, २२५ × २० = ४५०० ।

२११ ÷ २ = १०५½ = व्यञ्जनसख्या का आधा।

४५०० + १०५½ = ४६०५½ दिन अर्थात् १२ वर्ष ९ महीना १५ दिन के भीतर वह कार्य अवश्य सिद्ध होगा।

सीधे-सादे प्रश्नों की जो जल्दी ही हल होने वाले हों उनकी समय संख्या निकालने के लिये स्वर और व्यञ्जन सख्या को परस्पर गुणाकर ३० का भाग देने पर दिनात्मक समय आता है, इस दिनात्मक समय में से स्वर सख्या को घटाने पर कालावधिकी दिनात्मक सख्या आती है। उदाहरण–प्रश्नवाक्य पहले का ही है, इसकी स्वर सख्या १४ और व्यञ्जन सख्या २११ है, इन दोनों को गुणा किया—

१४ × २११ = २९५४ ÷ ३० = ९८ – १४ = ८४ दिन अर्थात् दो महीना चौबीस दिन में कार्य सिद्ध होगा। इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र में आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध समय में किये गये प्रश्नों की समय संख्या निकालने की भिन्न भिन्न प्रणालियाँ हैं, जिन पर से विभिन्नप्रश्नों की समय-संख्या विभिन्न आती है।

बृहज्ज्योतिषार्णव में समय संख्या निकालने की अंक विधि एक प्रश्न पर से बताई है। उसमें कहा गया है कि पृच्छक से कोई अंक पूछ कर उसमें उसी अंक का चौथाई हिस्सा जोड़कर तीन का भाग देने पर समय-संख्या निकल आती है। पर यहाँ इतना स्मरण रखना होगा कि यह समय छोटे-मोटे प्रश्नों के उत्तर के लिये ही उपयोगी हो सकती है, बड़े प्रश्नों के लिये नहीं।

उपर्युक्त समयसूचक प्रकरण से नष्टजातक का इष्टकाल भी सिद्ध किया जा सकता है। इसके साधन की प्रक्रिया यह है कि समस्त प्रश्नाक्षरों का उक्त विधि से जो कालमान आवेगा वह पलात्मक इष्टकाल होगा। इसमें ६० का भाग देने से घट्यात्मक होगा तथा घटी स्थान में साठ से अधिक होने पर इसमें भी ६० का भाग देने से जो शेष बचेगा, वही घट्यात्मक जन्मसमय का इष्टकाल होगा। प्रथम आचार्य द्वारा प्रतिपादित प्रक्रिया से इष्टकाल साधन का उदाहरण दिया जाता है–

प्रश्नवाक्य यहाँ भी 'कैलाश पर्वत' ही है। इसकी कालसंख्या उक्त विधि से बनाई तो ४+४८+९६+२४+४८+४८+१२=२८०×२=५६० इसको १० गुणा किया तो –५६०×१०=५६००पलात्मक इष्टकाल हुआ।

५६००÷६०=९३ घटी २० पल। यहाँ घटी स्थान में ६० से अधिक है अतः ६० का भाग देकर शेष मात्र ३३ घटी ग्रहण किया। इसलिये यहाँ इष्टकाल ३३ घटी २० पल माना जायगा।

अन्य ग्रन्थान्तरों में प्रतिपादित कालसाधन के नियमों पर से भी इष्टकाल का साधन किया जा सकता है। पहले जो संख्यामान प्रतिपादक वर्णों द्वारा इसी प्रश्न का ४६०५½ काल मान आया है, इसीको यहाँ पलात्मक इष्ट काल मान लिया जायगा अतः ४६०५½÷६०=७४ घटी ४५½ पल, घटीस्थान में पुनः ६० का भाग दिया तो ७६÷६०=१ लब्धि और शेष १६ आया, अतएव १६ घटी ४५½ पल इष्टकाल माना जायगा। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति के प्रश्नाक्षरों को ग्रहण कर इस काल साधन नियम द्वारा जन्मसमय का इष्टकाल लाया जा सकता है। मास, पक्ष, तिथि और इष्टकाल के ज्ञात हो जाने पर लग्नसाधन के नियम द्वारा लग्न लाकर जन्मकुण्डली बना लेनी चाहिये।

ग्रह और राशियों का कथन

अष्टसु वर्गेषु राहुपर्यन्ताः अष्टग्रहाः[1], ङ ञ ण न मेषु केतुर्ग्रहश्च[2]। अकारादिद्वादशमात्राः स्युर्द्वादशराशयः[3]। एकारादयस्ते च मासाः, ये च तानि लग्नानि। यान्यक्षराणि तानि नक्षत्राणि [तान्यंशानि] भवन्ति। ककारादिहकारान्तमश्विन्यादिनक्षत्राणि क्षिपेत्। ङ ञ ण न मान् वर्जयित्वा उत्तराक्षरेषु अश्विन्याद्याः[4], अधराक्षरेषु धनिष्ठाद्याः[5]। एव्वेकान्तरितनक्षत्रं विचारयेत्। अधराक्षरं संसाधयेत्। अथ राशिषूत्तराधरं उत्तराधरनक्षत्रञ्च[6] निर्दिशेत्। इति नष्टजातकम्[7]।

अर्थ–अष्टवर्गों में राहुपर्यन्त आठ ग्रह होते हैं और ङ ञ ण न म इन वर्णों में केतु ग्रह होता है। अकारादि १२ स्वर द्वादश राशि संज्ञक होते हैं। एकारादिक बारह महीने के वर्ण कहे गये हैं, वे ही द्वादश लग्न संज्ञक होते हैं। प्रश्न में जितने अक्षर होते हैं उतने ही लग्न के अंश समझने चाहिये।

---

१ ग्रहान् क्षिपेत्–क० मू०। २ केतवे–क० मू०। ३ द्वादशमात्रासु द्वादश राशयः–क० मू०। ४ अश्विन्यादी–क० मू०। ५ धनिष्ठादौ–क० मू०। ६ वापि तस्याधराक्षराणां नक्षत्रं–क० मू०। ७ तुलना–च० ज्यो० पृ० ९३। के० प्र० र० पृ० ११३-११४।

क अक्षर से लेकर हकार पर्यन्त—क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ त थ द ध प फ ब भ य र ल व श ष स ह ये २८ अक्षर क्रमशः अश्विन्यादि २८ नक्षत्र संज्ञक हैं। ङ ञ ण न म इनको छोड़कर उत्तराक्षरों—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स की अश्विन्यादि संज्ञा और अधराक्षरों—ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह की धनिष्ठादि संज्ञा होती है। यहाँ एकान्तरित रूप से नक्षत्रों का विचार कर अधराक्षरों को सिद्ध करना चाहिये। उत्तराधर राशियों में उत्तराधर नक्षत्रों का निरूपण करना चाहिये। इस प्रकार नष्टजातक की विधि अवगत करनी चाहिये।

विवेचन—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः इन प्रश्नाक्षरों का स्वामी सूर्य, क ख ग घ ङ इन वर्णों का चन्द्रमा; च छ ज झ ञ इन वर्णों का मंगल; ट ठ ड ढ ण इन वर्णों का बुध; त थ द ध न इन वर्णों का गुरु; प फ ब भ म इन वर्णों का शुक्र; य र ल व इन वर्णों का शनि, श ष स ह इन वर्णों का राहु और ङ ञ ण न म इन अनुनासिक वर्णों का केतु है। अ वर्ण प्रश्न का आद्यक्षर हो तो जातक की मेषराशि, आ प्रश्न का आद्यक्षर हो तो वृषराशि, इ प्रश्न का आद्यक्षर हो तो मिथुन राशि, ई प्रश्न का आद्यक्षर हो तो कर्क राशि, उ हो तो सिंह राशि, ऊ आद्य प्रश्नाक्षर हो तो कन्या राशि, ए आद्य प्रश्नाक्षर हो तो तुला राशि, ऐ आद्य प्रश्नाक्षर हो तो वृश्चिक राशि, ओ आद्य प्रश्नाक्षर हो तो धनु राशि; औ आद्य प्रश्नाक्षर हो तो मकर राशि, अं प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण हो तो कुम्भ राशि और अः आद्य प्रश्नाक्षर हो तो मीन राशि जन्मसमय की—जन्मराशि समझनी चाहिये। यहाँ जो वर्ण जिस राशि के लिये कहे गये हैं उनकी मात्राएँ भी लेनी चाहिये। एकारादि जो मास संज्ञक अक्षर हैं, वे ही मेषादि द्वादश लग्न संज्ञक होते हैं—अ ए क इन वर्णों की मेष लग्न संज्ञा, च ट इन वर्णों की वृष लग्न संज्ञा, त प इन वर्णों की मिथुन लग्न संज्ञा, य श इन वर्णों की कर्क लग्न संज्ञा, आ ई ख छ ठ इन वर्णों की सिंह लग्न संज्ञा, थ फ र ष इन वर्णों की कन्या लग्न संज्ञा, ग ज ड इन वर्णों की तुला लग्न संज्ञा, द ब ल स इन वर्णों की वृश्चिक लग्न संज्ञा, ई ओ घ झ ढ इन वर्णों की धनु लग्न संज्ञा, ध भ व ह इन वर्णों की मकर लग्न संज्ञा, उ ऊ ङ ञ ण इन वर्णों की कुम्भ लग्न संज्ञा एवं अं अः—अनुस्वार और विसर्ग की मीन लग्न संज्ञा हैं।

एक अनुभूत लग्नानयन का नियम यह है कि जो ग्रह जिन अक्षरों का स्वामी बताया गया है, प्रश्न के उन वर्णों में उसी ग्रह की राशि लग्न होती है। इसका विवेचन इस प्रकार है कि अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः, इन वर्णों का स्वामी सूर्य बताया है और सूर्य की राशि सिंह होती है, अतः उपर्युक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर सिंह लग्न जातक की अवगत करनी चाहिये। इसी प्रकार क ख ग घ ङ इन वर्णों का स्वामी मतान्तर में मङ्गल बताया है अतः मेष और वृश्चिक इन दोनों में से कोई लग्न समझनी चाहिये। यदि वर्ग का सम अक्षर प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण हो तो सम राशि संज्ञक लग्न और विषम प्रश्नाक्षर आद्य वर्ण हो तो विषम राशि लग्न होती है। तात्पर्य [1] यह है कि क ग ङ इन आद्य प्रश्नाक्षरों में मेष लग्न, छ झ इन आद्य प्रश्नाक्षरों में वृष लग्न, ट ड ण इन आद्य प्रश्नाक्षरों में मिथुन लग्न, य र ल व श ष स ह इन प्रश्नाक्षरों में कर्क लग्न, अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः इन आद्य प्रश्नाक्षरों में सिंह लग्न, ठ ढ इन वर्णों की कन्या लग्न, च ज ञ इन वर्णों की तुला लग्न, ख घ इन वर्णों की वृश्चिक लग्न, त द इन वर्णों की धनु लग्न, फ भ इन वर्णों की मकर लग्न, प ब इन वर्णों की कुम्भ लग्न एवं थ ध इन वर्णों की मीन लग्न होती है [2]।

नष्टजातक बनाने की व्यवस्थित विधि

सर्व प्रथम पृच्छक के प्रश्नाक्षरों को लिख कर, उनके स्वर और व्यञ्जन पृथक् कर अंक संख्या अलग अलग बना ले। पश्चात् स्वर संख्या और व्यञ्जन संख्या का परस्पर गुणा कर उस गुणनफल में नामाक्षरों

१ भा० ज्यो० पृ० ३४। २ भा० ज्यो० पृ० ३४।

की संख्या को जोड़ दे। अनन्तर संवत्सर, मास, पक्ष, दिन, तिथि, नक्षत्र, लग्न आदि के साधन के लिये अपने-अपने ध्रुवाङ्क और क्षेपक जोड़ कर अपनी राशि संख्या का भाग देने पर अर्थात् संवत्सर के लिये ६० का, मास के लिये १२ का, तिथि के लिये १५ का, नक्षत्र के लिये २७ का, योग के लिये २७ का, लग्न के लिये १२ का एवं ग्रहों के आनयन के लिये ९ का भाग देना चाहिये। इस प्रकार नष्टजातक का जन्मपत्र बनाया जाता है।

स्वरवर्णाङ्क चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त
१	२	३	४	५	६	७	८	९	०	१	२	३	४	५	६
थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स
७	८	९	०	१	२	३	४	५	१	२	३	४	५	६	७
ह	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
८	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

संवत्सर, मास, तिथि आदि के ध्रुव-क्षेपाङ्क

संवत्सर	मास	तिथि	वार	नक्षत्र	योग	लग्न	संज्ञाएँ
३२	८	१०	७	७	२०	२१	ध्रुवाङ्क
१४८	५६	६०	५८	७३	५८	५७	क्षेपाङ्क
०	५३	५३	१०६	१०६	१०६	१०६	वर्गाङ्क

ग्रहों के ध्रुव-क्षेपाङ्क

सूर्य	च०	भौ०	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	ग्रह
३०	१६	२१	३२	२३	२४	२५	३६	ध्रुवाङ्क
१०३	०	३३	४०	६	५३	३	७७	क्षेपाङ्क
५१	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५३	वर्गाङ्क

उदाहरण—पृच्छक से प्रश्नवाक्य पूछा तो उसने 'कैलासपर्वत' कहा। इसका विश्लेषण किया तो—क् + ऐ + ल् + आ + स् + अ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ हुआ। इस विश्लेषण में स्वर और व्यञ्जनों की संख्याएँ पृथक् पृथक् ग्रहण कीं तो १ + ३ + ७ + १ + २ + ४ + ६ = २४ व्यञ्जन संख्या, १२ + २ + १ + १ + १ + १ = १८ स्वर संख्या, इन स्वर और व्यञ्जन संख्याओं का परस्पर गुणा किया तो २४ × १८ = ४३२ प्रश्नाङ्क हुआ। इसमें नामाक्षर जोड़ने हैं–पृच्छक का नाम मनोहरलाल है–अत: नाम वर्णों की ६ संख्या भी प्रश्नाङ्को में जोड़ी तो ४३२ + ६ = ४३८ पिण्डाङ्क हुआ। इसमें जन्म संवत् निकालने के लिये संवत्सर का ध्रुवाङ्क ३२ जोड़ा तो ४३८ + ३२ = ४७० हुआ। इसमें संवत्सर का क्षेपाङ्क जोड़ा तो ४७० + १०८ = ५७८ पिण्ड हुआ इसमें ६० का भाग दिया तो ५७८ ÷ ६० = ९ लब्धि और ३८ शेष अर्थात् ३८ वाँ सवत्सर क्रोधी हुआ। अतः जातक का जन्म क्रोधी सवत्सर में समझना चाहिये। संवत्सरों की गणना प्रभव से की जाती है।

संवत्सरबोधक सारणी

१ प्रभव	७ श्रीमुख	१३प्रमाथी	१९पार्थिव	२५ खर	३१ हेम लंबी	३७ शोभन	४३ सौम्य	४९ राक्षस	५५ दुर्मति
२ विभव	८ भरण	१४विक्रम	२० व्यय	२६ नंदन	३२विलंबी	३८क्रोधी	४४ साधारण	५० नल	५६ दुंदभि
३ शुक्ल	९ युवा	१५ वृष	२१ सर्वजित्	२७ विजय	३३विकारी	३९ विश्वावसु	४५विरोधकृत्	५१ पिंगल	५७रुधिरोद्गारी
४ प्रमोद	१० धाता	१६ चित्रभानु	२२ सर्वधारी	२८ जय	३४शार्वरी	४०पराभव	४६ परिधावी	५२ कालयुक्त	५८रक्ताक्षी
५प्रजापति	११ ईश्वर	१७सुभानु	२३ विरोधी	२९ मन्मथ	३५ प्लव	४१प्लवग	४७प्रमादी	५३सिद्धार्थी	५९ क्रोधन
६ अंगिरा	१२ बहुधान्य	१८ तारण	२४विकृति	३० दुर्मुख	३६शुभकृत्	४२कीलक	४८आनद	५४ रौद्र	६० क्षय

पिंडाङ्क ४३८ में मासानयन के लिये उसका ध्रुवाङ्क, क्षेपाङ्क और वर्गाङ्क जोड़ा तो ४३८ + ८ + ५६ + ५३ = ५५५ मास पिंड हुआ, इसमें १२ का भाग दिया तो ५५५ ÷ १२ = ४६ लब्धि ३ शेष रहा है। मासो की गणना मार्गशीर्ष से ली जाती है अतः गणना करने पर तीसरा माह माघ हुआ। इसलिये जातक का जन्म माघ मास में हुआ कहना चाहिये।

पक्ष विचार के लिये यदि प्रश्नाक्षरों में समसख्यक मात्राएँ हो तो शुक्लपक्ष और विषमसंख्यक मात्राएँ हो तो कृष्ण पक्ष समझना चाहिये। प्रस्तुत उदाहरण में ६ मात्राएँ हैं, अतः समसख्यक मात्राएँ होने के कारण शुक्लपक्ष का जन्म माना जायगा।

तिथ्यानयन के लिये पिण्डाङ्क ४३८ में तिथि के ध्रुवाङ्क, क्षेपाङ्क और वर्गाङ्क जोड़े तो ४३८ + १० + ६० + ५३ = ५६१ पिण्ड हुआ, इसमें १५ का भाग दिया तो ५६१ ÷ १५ = ३७ लब्धि, ६ शेष, यहाँ प्रतिपदा से गणना की तो षष्ठी तिथि आई।

नक्षत्रानयन के पिण्डाङ्क में नक्षत्र के ध्रुवाङ्क, क्षेपाङ्क, वर्गाङ्क जोड़े तो४३८ + ७ + ७३ + १०६ = ६२४ पिण्ड, ६२४ ÷ २७ = २३ लब्धि, ३ शेष, कृत्तिकादि से नक्षत्र गणना की तो ३ री संख्या मृगशिर नक्षत्र की आई, अतः मृगशिर जन्मनक्षत्र हुआ।

नक्षत्रनामावली

१ कृत्तिका	८ मघा	१५ अनुराधा	२२ शतभिषा
२ रोहिणी	९ पूर्वाफाल्गुनी	१६ ज्येष्ठा	२३ पूर्वाभाद्रपद
३ मृगशिर	१० उत्तराफाल्गुनी	१७ मूल	२४ उत्तराभाद्रपद
४ आर्द्रा	११ हस्त	१८ पूर्वाषाढा	२५ रेवती
५ पुनर्वसु	१२ चित्रा	१९ उत्तराषाढा	२६ अश्विनी
६ पुष्य	१३ स्वाति	२० श्रवण	२७ भरणी
७ आश्लेषा	१४ विशाखा	२१ धनिष्ठा	

वारानयन के लिये–४३८ पिण्ड में + ७ ध्रुवाङ्क + ५८ क्षेपाङ्क + १०६ वर्गाङ्क = ४३८ + ७ + ५८ + १०६ = ६०९ ÷ २७ = २२ लब्धि, ५ शेष, ५ वाँ वार गुरुवार हुआ।

योगनामावली

१ विष्कम्भ	८ धृति	१५ वज्र	२२ साध्य
२ प्रीति	९ शूल	१६ सिद्धि	२३ शुभ
३ आयुष्मान्	१० गड	१७ व्यतीपात	२४ शुक्ल
४ सौभाग्य	११ वृद्धि	१८ वरीयान्	२५ ब्रह्म
५ शोभन	१२ ध्रुव	१९ परिघ	२६ ऐन्द्र
६ अतिगड	१३ व्याघात	२० शिव	२७ वैधृति
७ सुकर्मा	१४ हर्षण	२१ सिद्ध	

योगानयन–४३८ + २० + ५८ + १०६ = ६२२ ÷ २७ = २३ लब्धि, १ शेष, पहला योग विष्कम्भ हुआ।

लग्नानयन के लिये प्रक्रिया

४३८ पिण्डाङ्क + २१ ध्रुवाङ्क + ५७ क्षेपाङ्क + १०६ वर्गाङ्क = ४३८ + २१ + ५७ + १०६ = ६२२ ÷ १२ = ५१ लब्धि, शेष १०, मेषादि गणना की तो १० वीं लग्न मकर हुई, यहाँ कुल स्वर-व्यञ्जन संख्या प्रश्नाक्षरों की १३ है, अतः मकर लग्न के १३ अंश लग्न राशि के माने जायँगे।

ग्रहानयन

सूर्यानयन–४३८ पिण्डाङ्क + ३० सूर्य ध्रुवाङ्क + १०३ सूर्य क्षेपाङ्क + ५१ वर्गाङ्क = ४३८ + ३० + १०३ + ५१ = ६२२ ÷ १२ = ५२ लब्धि, १० शेष, अतः मकर राशि का सूर्य है। यहाँ इतना और स्मरण रखना होगा कि माससंख्या और सूर्यराशि की समता के लिये माससंख्या में एक जोड़ना या घटाना होता है।

चन्द्रानयन–४३८ + १६ + ० + ५३ = ५०७ ÷ १२ = ४२ लब्धि, ३ शेष, मेष से गणना करने पर तीसरी संख्या मिथुन की हुई अतः मिथुन राशि का चन्द्रमा है।

मंगलानयन–४३८ + २१ + ३३ + ५३ = ५४५ ÷ १२ = ४५ लब्धि, ५ शेष, यहाँ पाँचवीं संख्या सिंह राशि की हुई।

बुधानयन–४३८ + ३२ + ४० + ५३ = ५६३ ÷ १२ = ४६ लब्धि, ११ शेष। यहाँ ११ वीं संख्या कुम्भ राशि की हुई।

गुरु-आनयन–४३८ + २३ + ६ + ५३ = ५२० ÷ १२ = ४३ लब्धि ४ शेष, चौथी संख्या कर्क राशि की है अतः गुरु कर्क राशि का हुआ।

शुक्रानयन–४३८ + २४ + ५३ + ५३ = ५६८ ÷ १२ = ४७ लब्धि, ४ शेष, चौथी संख्या कर्क राशि की है अतः शुक्र कर्क का राशि का हुआ।

शन्यानयन–४३८ + २५ + ३ + ५३ = ५१९ ÷ १२ = ४३ लब्धि, ३ शेष, तीसरी राशि मिथुन है अतः शनि मिथुन का है।

राहु-आनयन–४३८ + ३६ + ७७ + ५३ = ६०४ ÷ १२ = ५० लब्धि, ४ शेष, चौथी राशि कर्क है अतः राहु कर्क का हुआ। राहु की राशि में ६ राशि जोड़ने से केतु की राशि आती है अतः यहाँ केतु मकर राशि का है।

नष्ट जन्मपत्रिका स्वरूप

जन्म सवत् क्रोधी, शुभ मास माघ मास, शुक्लपक्ष षष्ठी तिथि, गुरुवार को विष्कुम्भ योग में जन्म हुआ है। जातक की जन्मलग्न ९। १३ है, जन्मकुण्डली निम्न प्रकार है–

जन्मकुंडली चक्र

बु० ११
९
१२
के० १० सू०
८
१
७
शु०
२
४ गु० रा०
६
च. ३ श.
५ म०
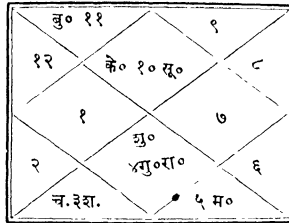
विशेष–नष्ट विधि से बनाई गई जन्मकुण्डली का फल जातक ग्रन्थों के आधार से कहना चाहिये। तथा पहले जो मास, पक्ष, दिन और इष्टकाल का आनयन किया है उस इष्टकाल पर से गणित द्वारा लग्न का साधन कर उसी समय के ग्रह लाकर गणित से नष्ट जन्मपत्री बनाई जा सकती है। इस इष्टकाल की विधि पर से जन्मकुण्डली के समस्त गणित को कर लेना चाहिये।

गमनागमनप्रश्नविचार

अथ गमनागमनमाह–आ ई ऐ औ दीर्घस्वरसंयुक्तानि प्रश्नाक्षराणि भवन्ति, तदा गमनं भवत्येव। उत्तराक्षरेषु उत्तरस्वरसंयुक्तेषु अ इ ए ओ एवमादिष्वागमनमादिशेत्। उत्तराक्षरेषु नास्ति गमनम्। यत्र प्रश्ने द्विपादाक्षराणि भवन्ति ड ग क ख अन्तर्दीर्घस्वरसंयोगे[1] अनभिहतश्च[2] गमनहेत्वर्थः। इति गमनागमनम्[3]।

अर्थ–गमनागमन प्रश्न को कहते हैं–आ ई ऐ औ इन दीर्घ स्वरों से युक्त प्रश्नाक्षर हों तो पृच्छक का गमन होता है। यदि उत्तराक्षरों–क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स में उत्तर स्वर

१ अन्त:दीर्घस्वरसंयोगः–क० मू०। २ अभिहत–क० मू०। ३ के० प्र० र० पृ ९१। बृहज्ज्योतिषार्णव अ०५।

अ इ ए ओ संयुक्त हों तो पृच्छक जिस परदेशी के सम्बन्ध में प्रश्न करता है, वह अवश्य आता है। यदि पृच्छक के प्रश्नाक्षर उत्तर संज्ञक हों तो गमन नहीं होता है। जहाँ प्रश्न में द्विपादसंज्ञक अ ए क च ट त प य श वर्ण, ङ ग क ख तथा य र ल व ये वर्ण दीर्घ मात्राओं से युक्त हों एवं अनभिहत संज्ञक वर्ण प्रश्नाक्षर हों वहाँ गमन करने में कारण होते हैं अर्थात् उपर्युक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर गमन होता है। इस प्रकार गमनागमन प्रकरण समाप्त हुआ।

विवेचन–इस प्रकरण में आचार्य ने पथिक के आगमन एवं गमन के प्रश्न का विचार किया है। यदि प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण दीर्घ मात्रा से युक्त हो तो पृच्छक का गमन कहना चाहिये। क ग च ज ट ड त द न प ब म य ल श स इन वर्णों में से ह्रस्व मात्रा युक्त कोई वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो पथिक का आगमन बतलाना चाहिये। यदि प्रश्नाक्षरों में आद्य प्रश्नाक्षर द्विपाद संज्ञक हो और द्वितीय प्रश्नाक्षर चतुष्पाद संज्ञक हो तो सवारी द्वारा गमन कहना चाहिये। यदि आद्य प्रश्नाक्षर द्विपाद संज्ञक और द्वितीय प्रश्नाक्षर अपाद संज्ञक हो तो बिना सवारी के पैदल गमन बतलाना चाहिये। प्रश्न का आद्याक्षर अ ए क च ट त प य श इनमें से कोई हो और वह दीर्घ हो तो निश्चय ही गमन कहना चाहिये। यदि प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण अधर मात्रा वाला हो तो शीघ्र गमन और उत्तर मात्रा वाला हो तो गमनाभाव कहना चाहिये।

पथिकागमन के प्रश्न में जितने व्यञ्जन हो उनकी संख्या का द्विगुणित कर मात्रा संख्या की त्रिगुणित राशि में जोड़ दे और जो योगफल हो उसमें दो का भाग दे, एक शेष रहे तो शीघ्र आगमन और शून्य शेष में विलम्ब से आगमन कहना चाहिये।

प्रश्नशास्त्र के ग्रन्थान्तरों में कहा गया है कि यदि प्रश्नलग्न से चौथे या दसवें स्थान में शुभ ग्रह हो तो गमनाभाव और पाप ग्रह हो तो अवश्य गमन होता है।

आगमन के प्रश्न में यदि प्रश्नकाल की कुण्डली में २।५।८।११ स्थानों में ग्रह हो तो विदेश गये हुए पुरुष का शीघ्र आगमन होता है। २।५।११ इन स्थानों में चन्द्रमा स्थित हो तो सुखपूर्वक पथिक का आगमन होता है। प्रश्नकुण्डली के आठवें भाव में स्थित चन्द्रमा पथिक के रोगी होने की सूचना देता है। यदि प्रश्नलग्न से सप्तम भाव में चन्द्रमा हो तो पथिक को मार्ग में आता हुआ कहना चाहिये। प्रश्नकाल में चर राशियों–मेष, कर्क, तुला और मकर में से कोई राशि लग्न हो और चन्द्रमा चतुर्थ में बैठा हो तो विदेशी किसी निश्चित स्थान पर स्थित है, ऐसा फल समझना चाहिये।

यदि लग्न का स्वामी लग्न स्थान में स्थित हो या दसवें स्थान में स्थित हो अथवा ४।७ इन भावों में स्थित हो और लग्न स्थान के ऊपर उसकी दृष्टि हो तो प्रवासी सुखपूर्वक परदेश में रहता हुआ वापस आता है। यदि लग्नेश ९।३।८।२ इन स्थानों में हो तो परदेशी रास्ते में आता हुआ समझना चाहिये। लग्न चर हो, चन्द्रमा चर राशि पर और सौम्य ग्रह-चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र १।३।४।५।६।१० में स्थित हो और चन्द्रमा वक्र गति वाला हो तो परदेशी थोड़े ही समय में लौट आता है। २।३।५।६।७ इन स्थानों में रहने वाले ग्रह वक्र गति हों, गुरु १।४।७।१० स्थानों में हो और शुक्र नवम, पंचम स्थान में हो तो विदेशी शीघ्र आता है। शुक्र और गुरु लग्न में हो तो आने वाले की चोरी होती है। बृहस्पति अपनी उच्च राशि पर हो अथवा दसवें स्थान में हो तो परदेश में गये व्यक्ति को अधिक धन लाभ कहना चाहिये। यदि शुक्र, बुध, चन्द्रमा दसवें स्थान में स्थित हो तो परदेशी सुख पूर्वक धन, यश और सम्मान को प्राप्त कर कुछ दिनों में लौटता है। यदि सप्तम स्थान का स्वामी प्रश्नकुण्डली में लग्न में हो और लग्नेश सप्तम स्थान में स्थित हो तो प्रवासी जल्दी वापस आता है।

यदि प्रश्नकाल[1] में स्थिर लग्न हो और चन्द्रमा स्थिर राशि में स्थित हो तथा मन्दगति वाले ग्रह केन्द्र–१।४।७।१० स्थानों में स्थित हों, लग्न और लग्नेश दृष्टिहीन हो तो इस प्रकार की प्रश्न स्थिति में परदेशी का आगमन नहीं होता है। मङ्गल दसवें स्थान में स्थित हो तथा वक्रगति वाले ग्रहों के साथ इत्थशाल[2]

---

१ प्र० वै० पृ० ७०–७१। २ शीघ्र गति वाला ग्रह पीछे और मन्दगति वाला ग्रह आगे हो तो इत्थशाल होता है।

करता हो और चन्द्रमा सौम्य ग्रहों से अदृष्ट हो तो प्रवासी जीवित नहीं लौटता। तथा सौम्यग्रह–चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र ६।८।१२ इन भावों में स्थित हों और निर्बल पापग्रहों से दृष्ट हों और चन्द्रमा एवं सूर्य पाप ग्रहों से दृष्ट हों तो दूर स्थित प्रवासी की मृत्यु कहनी चाहिये। यदि पृष्ठोदय मेष, वृष, कर्क, धनु और मकर राशियाँ पाप ग्रह से युक्त हों एवं १।४।५।६।७।८।९।१० इन स्थानों में पाप ग्रह हो तथा शुभ ग्रहों की दृष्टि इन स्थानों पर न हो तो प्रवासी की मृत्यु कहनी चाहिये। सूर्य प्रश्नकुण्डली के नौवें भाव में स्थित हो तो प्रवासी को रोग पीड़ा; बुध इसी स्थान में हो तथा शुभग्रहों की दृष्टि हो तो सम्मानप्राप्ति; मंगल इसी भाव में शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तो सङ्कट; गुरु इसी भाव में लग्नेश या दशमेश होकर बैठा हो तो अर्थप्राप्ति और शनि इसी भाव में अष्टमेश होकर स्थित हो तो नाना प्रकार के कष्ट प्रवासी को कहने चाहिये। यदि प्रश्नकाल में कर्क, वृश्चिक, कुम्भ और मीन लग्न हों, लग्नेश पापग्रहो के साथ हो और चन्द्रमा चर राशि में स्थित हो तो विदेशी आने का विचार करने पर भी नहीं आ सकता है, हाँ वह सुखपूर्वक कुछ समयतक वहीं रह जाने के बाद आता है। लग्न द्विस्वभाव हो और चन्द्रमा चर राशि में हो तो शत्रु आते हुए प्रवासी को बीच में रोक कर कष्ट देता है। लग्न स्थान से जितने स्थान में बली ग्रह स्थित हो उतने ही मास में प्रवासी लौट आता है। यदि बलवान ग्रह चर राशि में स्थित हो तो एक महीने में, स्थिर राशि में हो तो तीन महीने में और द्विस्वभाव राशि में स्थित हो तो दो महीने में प्रवासी वापस आता है। लग्न से चन्द्रमा जितनी दूर पर हो उतने ही दिनो में लौटने का दिन कहना चाहिये।

लाभालाभप्रश्नविचार

अथ लाभालाभमाह–प्रश्ने सङ्कटविकटमात्रासंयुक्तोत्तराक्षरेषु[1] बहुलाभः। विकट[2]-मात्रासंयुक्तोत्तराक्षरेष्वल्पलाभः। सङ्कट[3]मात्रासंयुक्तोत्तराक्षरेष्वल्पलाभः, कष्टसाध्यश्च। जीवाक्षरेषु जीवलाभो धातुलाभश्च। मूलाक्षरेषु मूललाभः। इति पूर्वं कथयित्वा पुनः संख्यां विनिर्दिशेत्।

अर्थ-अब लाभालाभ का विचार करते हैं। प्रश्न में संकटविकट मात्राओं से युक्त संयुक्त उत्तराक्षर हो तो बहुत लाभ होता है। विकट मात्रा–आ ई ऐ औ मात्राओ से संयुक्त उत्तराक्षर–क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स हो तो इस प्रकार के प्रश्न में पृच्छक को अल्प लाभ होता है। संकट–अ इ ए ओ मात्राओं से संयुक्त उत्तराक्षर प्रश्न के हों तो अल्प लाभ और कष्ट से उसकी प्राप्ति होती है। जीवाक्षर प्रश्नाक्षर–अ आ इ ए ओ अः क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह हों तो जीवलाभ और धातुलाभ होता है। मूलाक्षर–ई ऐ औ ङ ञ ण न म ल र ष प्रश्नाक्षर हों तो मूल लाभ होता है। इस प्रकार पहले

---

१ "सररिउ सद्दिवाअर सराइ वग्गाण पञ्चमा वण्णा। डड्ढा वियड संकड अहराहर असुह णामाइ ॥ उ ऊ अं अः एते पचमषष्ठिका एकादशमद्वादशमाश्चत्वारः स्वराः तथा ङ ञ ण न मा इति वर्गाणा पञ्चमा वर्णाः दग्धाः विकटसंकटा अधरा अशुभनामकाश्च भवन्ति ॥"–अ० चू० सा० गा० ४।

२ "कुचुजुगवसुदिससरआ वीय चउत्थाइं वग्गवण्णाइं। अहिधूमिआइं मज्झा ते उण अहराइं वियडाइ ॥ आ ई ऐ औ द्वितीयचतुर्थाष्टमदशमाश्चत्वारः स्वराः तथा खछठथफरषाः घझढधभवहाः, एते द्वितीयचतुर्थ-वर्गाणां चतुर्दशवर्णाः अभिधूमिताः मध्यास्तथा उत्तराधरा विकटाश्च भवन्तीति ॥"–अ० चू० सा० गा० ३।

३ "पढम तईयसत्तम रवसर पढम तईयवग्गवण्णाइं। आलिंगियाहिं सुहया उत्तरसंकडअ णामाइं ॥ आ इ ए ओ एते प्रथमसप्तमनवमाश्चत्वारः तथा क च ट त प य शा ग ज ड द ब ल सा एते प्रथमतृतीयचतुर्दश-वर्णाश्च आलिंगिताः, सुभगाः, उत्तराः सकटनामकाश्च भवन्तीति"–अ० चू० सा० गा० २।

जीव, मूल और धातु का लाभ कहकर लाभ की संख्या निश्चित करनी चाहिये। संख्या लाने की प्रक्रिया समयावधि की विधि के अनुसार ज्ञात करनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि उ ऊ अं अः इन मात्राओं से संयुक्त क ग च ज ट ड त द न प ब म य ल श वर्णों में से कोई भी वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो पृच्छक को अत्यधिक लाभ होता है, आ ई ऐ औ इन मात्राओं से सयुक्त पूर्वोक्त अक्षरों में से कोई अक्षर आद्य प्रश्नाक्षर हो तो अल्पलाभ एवं अ इ ए ओ इन मात्राओं से सयुक्त पूर्व वर्णों में से कोई वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो पृच्छक को कष्ट से अल्पलाभ होता है।

विवेचन—लाभालाभ के प्रश्न का विचार ज्योतिषशास्त्र में दो प्रकारों से किया है–प्रथम प्रश्नाक्षर परसे और द्वितीय प्रश्नलग्न से। प्रश्नाक्षरवाले सिद्धान्त के सम्बन्ध में 'समयावधि' के प्रकरणों में काफी लिखा जा चुका है। यहाँ पर प्रश्नलग्नवाले सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया जाता है–

भुवनदीपक [1] नामक ग्रन्थ में आचार्य पद्मप्रभसूरि ने लाभालाभ का रहस्य बतलाते हुए लिखा है कि प्रथमलग्न का स्वामी लेने वाला और ग्यारहवें स्थान का स्वामी देने वाला होता है, जब प्रश्नकुण्डली में लग्नेश और एकादशेश दोनों ग्रह एक साथ हों तथा चन्द्रमा ग्यारहवें स्थान को देखता हो तो लाभ का पूर्ण योग समझना चाहिये। उपर्युक्त दोनों स्थान—लग्न और एकादश तथा उक्त दोनों स्थानों के स्वामी–लग्नेश और एकादशेश इन चारों की विभिन्न परिस्थितियों से लाभालाभ का निरूपण करना चाहिये।

लग्नेश, चन्द्रमा और द्वितीयेश ये तीनों एक साथ १।२।५।९ इन स्थानों में प्रश्नकुण्डली में हों तो शीघ्र सहस्रों रुपयों का लाभ पृच्छक को होता है। चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र पूर्ण बली हों २।११।९।५।१।४। ७। १० इन स्थानों में स्थित हों या अपनी उच्च राशि को प्राप्त हों और पाप ग्रहरहित हों तो पृच्छक को शीघ्र ही बहुत लाभ होता है। शुक्र अपनी उच्च राशि पर स्थित हुआ लग्न में बैठा हो या चौथे अथवा पाँचवें भाव में बैठा हो और शुभ ग्रहों से दृष्ट या युत हो तो गाँव, नगर, मकान और पृथ्वी आदि का लाभ होता है। यदि लग्न का स्वामी अपनी उच्च राशि पर हो या लग्न स्थान में हो और कर्म–दसवें स्थान का स्वामी लग्न को देखता हो तो पृच्छक को राजा [2] से धन लाभ होता है। यदि कर्म–दसवें भाव का स्वामी पाप ग्रहों के द्वारा देखा जाय तो स्वल्पलाभ राजा से होता है। चन्द्रमा, लग्नेश और द्वितीयेश इन तीनों का कंबूल [3] योग हो तो प्रचुर धन का लाभ होता है। धन स्थान–द्वितीय भाव का स्वामी अपने घर या उच्च राशि में बैठा हो तो प्रचुर द्रव्य का लाभ होता है। धनेश शत्रुराशि या नीच राशि में स्थित हो तो लाभाभाव समझना चाहिये। यदि प्रश्नकुण्डली में लग्न का स्वामी लग्न में, धन का स्वामी धन स्थान में और लाभेश लाभ स्थान में हो तो रत्न, सोना, चाँदी और आभूषणों का लाभ होता है। लग्नेश अपनी उच्च राशि का हो या लग्न स्थान में स्थित हो तथा लाभेश भी लग्न स्थान में हो अथवा लग्नेश और लाभेश दोनों लाभ स्थान में हों तो पृच्छक को द्रव्य का लाभ कराने वाला योग होता है। लग्नेश और धनेश लग्न स्थान में हों, बृहस्पति को चन्द्रमा देखता हो तथा बृहस्पति बली हो तो पूछने वाले व्यक्ति को अधिक लाभ करने वाला योग समझना चाहिये। धनेश और बृहस्पति ये दोनों शुक्र और बुध से युक्त हों तो अधिक धन मिलता है।

गुरु, बुध और शुक्र ये तीनों प्रश्नकुण्डली में नीच के हों तथा पाप ग्रहों से युत या दृष्ट हों तथा १। २। ५। ९। १० इन स्थानों को छोड़ अन्य स्थानों में ये ग्रह स्थित हों तो धन का नाश होता है। इस प्रकार के प्रश्नवाला व्यक्ति व्यापार में अपरिमित धन का नाश करता है। यदि लग्नेश शत्रुराशि में हो या नीचस्थ हो तथा धनेश नीचस्थ होकर छठवें स्थान में स्थित हो तो धनक्षति होती है।

---

१ भु० दी० श्लो० ८०–८१। २ प्र० वै० पृ० १३–१४। ३ लग्नेश और कार्येश इन दोनों का इत्थशाल हो तथा इन दोनों में से किसी एक के साथ चन्द्रमा इत्थशाल करता हो तो कंबूल योग होता है –ता० नी० पृ० ७९।

शुभाशुभप्रश्नविचार

अथ शुभाशुभमाह–अभिधूमितमात्रायां संयुक्ताक्षरे दीर्घायुः । प्रश्नेऽभिघातितेषु[1] दीर्घमरणमादिशेत् । सङ्कटमात्रासंयुक्ताधराक्षरेषु रोगो भवति । दीर्घस्वरसंयुक्तोत्तराक्षरेषु दीर्घरोगो भवति । अधोमात्रासंयुक्तोत्तराक्षरेषु देवताक्रान्तस्य मृत्युर्भवति । अधरोत्तरेषु धात्वक्षरेषु अभिधूमितस्वरसंयुक्तेषु स्त्रीभ्यो मृत्युर्भवति[2]। एते[3] स्वरसंयुक्तेषु[4]···।

अर्थ–शुभाशुभ प्रकरण को कहते हैं। प्रश्नाक्षरों में आद्य प्रश्न वर्ण अभिधूमित मात्रा से संयुक्त व्यञ्जन हो तो दीर्घायु होती है। प्रश्न में आद्य प्रश्नाक्षर अभिघातित वर्ण हो तो कुछ समय के बाद मृत्यु, संकट मात्राओं–अ इ ए ओ से युक्त अधराक्षरों–ख छ घ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह में से कोई वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो पृच्छक को रोग होता है। आ ई ऐ औ इन मात्राओं से युक्त उत्तराक्षरों–क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स में से कोई वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो लम्बी बीमारी–बहुत समय तक कष्ट देने वाला रोग होता है। अधोमात्राओं–आ ई ऐ औ से सयुक्त उत्तराक्षर–क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स में से कोई वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो देव के द्वारा पीड़ित होने–भूत, प्रेत द्वारा आविष्ट होने से मृत्यु होती है। अधरोत्तर धात्वक्षरों में–त थ द ध प फ ब भ व स इन वर्णों में अभिधूमित–आ ई ऐ औ स्वरों के सयुक्त होने पर स्त्रियों से मृत्यु होती है। ह्रस्व स्वर सयुक्त दग्ध प्रश्नाक्षर हों तो शत्रुओं के द्वारा या शास्त्रघात से मरण होता है।

विवेचन–आचार्य ने इस शुभाशुभ प्रकरण में पृच्छक की आयु का विचार किया है। प्रश्नाक्षर वाले सिद्धांत के अनुसार प्रश्नश्रेणी में आद्य वर्ण आलिङ्गित मात्रा हो तो रोगी का रोग यत्नसाध्य, अभिधूमित मात्रा हो तो कष्टसाध्य एव दग्ध मात्रा हो तो मृत्यु फल कहना चाहिये। पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण आ ई ऐ औ इन मात्राओं से संयुक्त संयुक्ताक्षर हो तो पृच्छक की दीर्घायु कहनी चाहिये। यदि आद्य प्रश्न-वर्ण क्या, च्या, छ्या, ज्या, झ्या, ट्या, ठ्या, ड्या, ढ्या, त्या, थ्या, द्या, ध्या, न्या, प्या, फ्या, ब्या, भ्या, म्या, न्या, ल्या, य्या, द्या, ष्या, स्या और ह्या, इनमें से कोई हो तो दीर्घायु, च्वि, क्वि,, ख्वि, ग्वि, घ्वि, छ्व्, ज्वि, झ्वि, ट्व्, ठ्व्, ड्व्, ढ्व्, त्वि, थ्वि, द्व्, ध्वि, न्वि, प्वि, फ्वि, ब्वि, भ्वि, म्वि, य्वि, न्वि, ल्वि, व्वि, श्वि, ष्वि, स्वि और ह्वि इन वर्णों में से कोई भी वर्ण हो तो प्रश्नकाल के बाद ५९, ४९ या ६९ वर्ष आयु कहनी चाहिये। यदि किसी का प्रश्न ऐसा हो कि मेरी कुल आयु कितनी है तो प्रश्नाक्षरों की व्यञ्जन सख्या और स्वर संख्या को परस्पर गुणाकर २ का भाग देने पर आयु के वर्ष आते हैं।

रोगी व्यक्ति की रोगावधि पूर्वोक्त समय अवधि के नियमों से भी निकाली जा सकती है। तथा निम्न गणित नियमों से भी प्रश्नाक्षरों पर से रोग–आरोग्य का निश्चय किया जा सकता है।

१–प्रश्नश्रेणी की वर्ण और मात्रा सख्या को जोड़कर, जो योगफल आवे उसमें एक और जोड़ना चाहिये, इस योग को दो से गुणाकर तीन का भाग दे, एकादि शेष में क्रमशः रोगनिवृत्ति, व्याधिवृद्धि और मरण–एक शेष में रोगनिवृत्ति, दो शेष में व्याधिवृद्धि और तीन शेष में मरण कहना चाहिये। जैसे रामदास की प्रश्नवर्णसंख्या ८ है–अतः ८+१=९×२=१८÷३=६ लब्धि, शेष ०। अतः मरण फल ज्ञात करना चाहिये।

---

१ प्रश्ने दशाभिघातितेषु–क० मू०। २ स्त्रीभ्यो मृत्युर्भवति—तपत इत्यर्थः।–क० मू०। ३ एते ह्रस्वस्वरसंयुक्तेषु···। इत्त मुदे अल्प इल्ल··क० मू०। ४ बृहज्ज्योतिषार्णवस्य चन्द्रोन्मीलनप्रकरण तथा चन्द्रोन्मीलनप्रश्नस्य द्वादशतमं प्रकरणं च द्रष्टव्यम्।

२–प्रश्नश्रेणी की अभिधूमित और आलिंगित मात्राओं की संख्या का परस्पर गुणाकर, इस गुणनफल में दग्ध मात्राओं की संख्या जोड़ देनी चाहिये। फिर योगफल को तीन से गुणा कर चार से विभाजित करना चाहिये। एक शेष में रोगनिवृत्ति, दो शेष में रोगवृद्धि, तीन शेष में मृत्यु और शून्य शेष में कुछ दिनों तक कष्ट पाने के पश्चात् रोग दूर होता है।

३–पूर्वोक्त समयावधि सूचक अंक संख्या के अनुसार स्वर और व्यञ्जनों की संख्या पृथक् पृथक् लाकर दोनों को जोड़ देना चाहिये। इस योगफल में पृच्छक के नामाक्षरों को तिगुना कर जोड़ दे, पश्चात् आगत योगफल में पाँच का भाग दे। एक शेष में विलम्ब से रोगनिवृत्ति, दो शेष में जल्दी रोगनिवृत्ति, तीन शेष में मृत्यु तुल्य कष्ट, चार शेष में मृत्यु या तत्तुल्य कष्ट और शून्य शेष में मृत्यु फल होता है।

प्रश्नकुण्डली वाले सिद्धान्त के अनुसार प्रश्नलग्न में [1]पाप ग्रहों–सूर्य, मङ्गल, शनि और क्षीण चन्द्रमा की राशि हो और अष्टम भाव पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तथा दो पाप ग्रहों के मध्यवर्ती या पाप ग्रहों से युक्त चन्द्रमा अष्टम भाव में हो तो रोगी का शीघ्र मरण होता है। यदि प्रश्नकुण्डली में सभी पापग्रह लग्न से १२ वें स्थान में हों और चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो अथवा पापग्रह सप्तम भाव में हो और चन्द्रमा लग्न में हो या पापग्रह अष्टम भाव में हों और चन्द्रमा छठवें स्थान में हो तो रोगी का शीघ्र मरण होता है। चन्द्रमा लग्न में हो और सूर्य सप्तम में हो तो रोगी का मरण शीघ्र होता है। चन्द्रयुक्त मङ्गल मेष या वृश्चिक राशि के २३ अंश से लेकर २७ अंश तक स्थित हो तो रोगी का निश्चय मरण होता है। यदि प्रश्न-लग्न से सप्तम भाव शुभग्रह युक्त हो तो रोगी को शुभ और पापग्रह युक्त हो तो रोगी को अशुभ होता है। यदि सप्तम भाव में शुभ और अशुभ दोनों ही प्रकार के ग्रह मिश्रित हों तो कुछ समय तक बीमारी का कष्ट होने के बाद रोगी अच्छा हो जाता है। प्रश्नकुण्डली के अष्टम भाव में यदि सूर्य या मङ्गल हो तो रोगी को रक्त और पित्त जनित रोग होता है। यदि अष्टम में बुध हो तो सन्निपात रोग होता है। यदि राहु युक्त रवि षष्ठ भाव में हो तो कुष्ठ और राहु युक्त रवि अष्टम भाव में हो तो महाकष्ट होता है।

यदि लग्नेश निर्बल हो, अष्टमेश बलवान् हो और चन्द्रमा छठवें या आठवें स्थान में हो तो रोगी की मृत्यु होती है। लग्नेश यदि उदित हो और अष्टमेश दुर्बल हो एवं एकादशेश बलवान् हो तो रोगी चिरञ्जीवी होता है। यदि प्रश्नकुण्डली के अष्टम स्थान में राहु हो तो भूत, पिशाच, जादू-टोना, नजर आदि से रोग उत्पन्न होता है। शनि लग्न या अष्टम स्थान में हो तो केवल भूत, पिशाच से रोग उत्पन्न होता है।

प्रश्नलग्न में क्रूरग्रह हों तो आयुर्वेद के इलाज से रोग दूर नहीं होता है, बल्कि जैसे-जैसे उपचार किया जाता है, वैसे-वैसे रोग बढ़ता है। यदि प्रश्नलग्न में बलवान् शुभ ग्रह हों तो इलाज से रोग जल्द दूर होता है। प्रश्नकुण्डली के सातवें भाव में पाप ग्रह हो तो वैद्यक के इलाज से हानि और शुभ ग्रह हो तो डाक्टरी इलाज से लाभ समझना चाहिये। प्रश्नलग्न से दसवें भाव में शुभ ग्रह हो तो इलाज, पथ्य आदि उपचारों से रोगनिवृत्ति एवं अशुभ ग्रह हों तो उपचार आदि से रोगवृद्धि अवगत करनी चाहिये। शुभ ग्रह के साथ अथवा लग्नस्वामी के साथ चन्द्रमा इत्थशाल[1] योग करता हो और शुभ ग्रहों से युक्त होकर केन्द्र में स्थित हो तो रोगी का रोग जल्द अच्छा होता है। केन्द्र में लग्नेश या चन्द्रमा हो और ये दोनों शुभग्रहों से युक्त और दृष्ट हों तो शीघ्र रोगनिवृत्ति और पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो विलम्ब से रोगनिवृत्ति होती है। प्रश्न-लग्न चर या द्विस्वभाव हो, लग्नेश और चन्द्रमा शुभ ग्रहों से युक्त होकर अपनी राशि या १।४।१० भावों में स्थित हों तो जल्द रोग दूर होता है। लग्न में कोई ग्रह वक्री हो तो रोग यत्न करने पर दूर होता है, लग्न में अष्टमेश हो तथा चन्द्रमा और लग्नेश आठवें भाव में हो तो रोगी की मृत्यु कहनी चाहिये। लग्नेश और अष्टमेश का इत्थशाल योग हो या ये ग्रह पाप ग्रहों से देखे जाते हों तो रोगी की मृत्यु होती है। लग्नेश चतुर्थ भाव में न हो, चन्द्रमा छठवें भाव में हो और चन्द्रमा सप्तमेश के साथ इत्थशाल योग करता हो

---

१ प्र० भू० वि० पृ० ५३-५४। २ ता० नी० पृ० ६५।

अथवा सप्तमेश छठवें घर में हो तो निश्चय से रोगी की मृत्यु होती है। लग्नेश और चन्द्रमा का अशुभ ग्रह के साथ इत्थशाल हो या लग्नेश और चन्द्रमा ४।८।६ में स्थित हों एवं पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो रोग नाशक, ६।८।१० इन भावों में पाप ग्रह हों और चन्द्रमा अष्टम स्थान में स्थित हो तो रोगी की मृत्यु होती है। लग्न, सप्तम और अष्टम इन स्थानों में पाप ग्रह हों और शुभ ग्रह निर्बल हों, चन्द्रमा चतुर्थ, अष्टम स्थान में हो एवं चन्द्रमा के पास के दोनों स्थानों में पाप ग्रह हों तो रोगी की मृत्यु होती है।

चवर्गपञ्चाधिकार

गर्गः—आलिङ्गितेषूत्तराक्षरेषूत्तरस्वरसंयुक्तेषु यवर्गं प्राप्नोति। सिंहावलोकनक्रमेणा-वर्गे [क्रमेण चवर्गे]ऽभिघातिते कवर्गं प्राप्नोति। मण्डूकप्लवनक्रमेण कवर्गेऽभिधूमिते पवर्गं प्राप्नोति। अश्वमोहितक्रमेण चवर्गे दग्धे पवर्गं प्राप्नोति। गजविलोकितक्रमेण चवर्ग-मालिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुकेऽवर्गं प्राप्नोति। सिंहदृशानुक्रमेण चवर्गे दग्धे अवर्गं भेकप्लुत्या प्राप्नोति। इति चवर्गपञ्चाधिकारम्।[1][2][3][4]

अर्थ—गर्गाचार्य द्वारा कहे गये वर्गानयन के नियम को बताते हैं। आलिङ्गित उत्तराक्षराक्षर उत्तर स्वर संयुक्त होने पर प्रश्न का चवर्ग यवर्ग को प्राप्त हो जाता है। सिंहावलोकन क्रम से चवर्ग के अभिघातित होने पर प्रश्न का चवर्ग कवर्ग को प्राप्त हो जाता है। मण्डूकप्लवनक्रम से चवर्ग के अभिधूमित होने पर प्रश्न का चवर्ग पवर्ग को प्राप्त होता है। अश्वमोहित क्रम से चवर्ग के दग्ध होने पर प्रश्न का चवर्ग पवर्ग को प्राप्त हो जाता है। गजविलोकन क्रम से आलिङ्गित में उत्तर स्वर संयुक्त उत्तराक्षर प्रश्न वर्णों के होने पर चवर्ग अवर्ग को प्राप्त हो जाता है। सिंहदृष्टि अनुक्रम से चवर्ग के दग्ध होने पर भेकप्लवन सिद्धान्त द्वारा चवर्ग अवर्ग को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रश्न का चवर्ग पाँचों वर्गों को प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि प्रश्न का प्रत्येक वर्ग विशेष-विशेष नियमों के द्वारा पाँचों वर्गों को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार चवर्ग का पञ्च-वर्गाधिकार पूर्ण हुआ।

विवेचन—आचार्य ने मूकप्रश्न, मुष्टिकाप्रश्न, लूकाप्रश्न आदि के लिये उपयोगी वर्गनिष्कासन का नियम ऊपर गर्गाचार्य द्वारा प्रतिपादित लिखा है। इस नियम का भाव यह है कि मन में चिन्तित या मुट्ठी की वस्तु का नाम किस वर्ग के अक्षरों का है। यह निश्चित है कि प्रश्नाक्षर जिस वर्ग के होते हैं, वस्तु का नाम उस वर्ग के अक्षर पर नहीं होता है। प्रत्येक प्रश्न में सिंहावलोकन, गजावलोकन, नद्यावर्त, मण्डूकप्लवन, अश्वमो हितक्रम ये पाँच प्रकार के सिद्धान्त वर्गाक्षरों के परिवर्तन में काम करते हैं। चन्द्रोन्मीलन प्रश्नशास्त्रमें आठ प्रकार के परिवर्तन सम्बन्धी सिद्धान्तों का निरूपण किया है। यहाँ उपर्युक्त पाँचो सिद्धान्तों का स्वरूप दिया जाता है।

१—सिंहावलोकन क्रम—अकारादि बारह स्वरों के अङ्क-स्थापन कर तथा ककारादि तैंतीस व्यञ्जनों के अङ्क स्थापित कर चक्र बना लेना। पश्चात् अधर प्रश्न हो तो आद्यवर्ण की व्यञ्जन संख्या को ५ से गुणा कर मात्राङ्क संख्या में जोड़ दे और योग फल में आठ का भाग लेने पर एकादि शेष में अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग समझना चाहिये। यदि उत्तर प्रश्न हो तो मात्राङ्क संख्या को ११ से गुणा कर व्यञ्जन संख्या में जोड़ दे और उसमें १० और जोड़ कर आठ से भाग दे तथा एकादि शेष में अवर्गादि ज्ञात करे। संयुक्त वेला में पृच्छक जिस दिशा में मुख करके बैठे उसके पीछे की दिशा का अङ्क

---

१ चवर्गेऽभिधूमिते पवर्गं प्राप्नोति—क० मू०। २ अनुक्रमेण इति पाठो नास्ति—क० मू०। ३ प्राप्नोति—इति पाठो नास्ति—ता० मू०। ४ बृ० ज्यो० ४। २८३, २८६-८८।

दिग्चक्र में देखकर उस अंक से प्रश्नाक्षर संख्या को गुणा कर तीन से भाग देना; एक शेष में जीवचिन्ता; दो में धातुचिन्ता और शून्य या तीन शेष में मूलचिन्ता समझनी चाहिये। पुन: लब्ध को पिण्ड में मिला कर दो से भाग लेना। एक शेष में सुखदायक और शून्य या दो शेष में दु:खदायक समझना चाहिये।

सिंहावलोकन दिग्चक्र

ई० श२१	पू० अ.२८	आ० क२७
उ० य२२	श्री०	च० २६ द०
वा० प२३	त० २४ प०	ट० २५ नै०

सिंहावलोकन स्वर व्यञ्जनाङ्क चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०	०
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	०	०	०

उदाहरण—पृच्छक का प्रश्नवाक्य "कैलास पर्वत" है, यहाँ प्रश्नवाक्य का उत्तराक्षर से प्रारम्भ होता है, अत: प्रश्नवाक्य का विश्लेषण किया तो क् + ऐ + ल + आ + स् + अ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ = ऐ + आ + अ + अ + अ + अ स्वर, क् + ल् + स् + प् + र् + व् + त् व्यञ्जन-सिंहावलोकन के अङ्क चक्रानुसार मात्राङ्क = ८ + २ + १ + १ + १ + १ = १४, व्यञ्जनाङ्क = १ + २८ + ३२ + २१ + २७ + २९ + १६ = १५४। १४ × ११ = १५४ + १५४ = ३०८ + १० = ३१८ ÷ ८ = ३९ लब्धि, ६ शेष रहा। अत: यवर्ग का प्रश्न माना जायगा।

२-गजविलोकन चक्र—अकारादि बारह स्वरों के चार को आदि कर यथाक्रम से अंक जानना, कवर्ग का पाँच आदि कर, च वर्ग का छ: आदि कर, ट वर्ग का सात आदि कर, तवर्ग का आठ आदि कर, पवर्ग का नौ आदि कर और य वर्ग का दस आदि कर अकसंख्या लिख लेनी चाहिये। संयुक्तवेला में पृच्छक जिस दिशा में मुख करके बैठा हो, उसके पीछे की दिशा का अक दिग्चक्र में देखकर लिख लेना, पश्चात् प्रश्नाक्षर संख्या से गुणा कर तीन का भाग देना चाहिये, एक शेष में जीवचिन्ता, दो शेष में धातु-चिन्ता और शून्य शेष में मूलचिन्ता कहनी चाहिये। पुन: लब्धि को पिण्ड में मिलाकर दो से भाग देना चाहिये तथा एक शेष में लाभ और शून्य शेष में अलाभ फल होता है। पश्चात् फिर से लब्धि को पिण्ड में जोड़कर दो का भाग देने से एक शेष में सुख और शून्य शेष में दु:ख फल होता है।

दिग्चक्र-गजावलोकन

ई० श११	पू० अ० ४	अ० क० ५
उ० य१०	संयुक्तवेला प्रश्न	द० च० ६
वाय० प९	प० त० ८	नै० ट७

गजावलोकन स्वर-व्यञ्जनाङ्क चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अ	अः
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
५	६	७	८	९	६	७	८	९	१०	७	८
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
९	१०	११	८	९	१०	११	१२	९	१०	११	१२
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०	०
१३	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	०	०	०

उदाहरण—संयुक्त वेला का प्रश्नवाक्य 'कैलास पर्वत' है। पृच्छक ने पूर्व दिशा की ओर मुख कर प्रश्न किया है अतः उसके पीछे की दिशा पश्चिम का दिगङ्क ८ ग्रहण किया। प्रश्नाक्षरों की स्वर व्यञ्जनाङ्क संख्या को दिगंक से गुणा करना है अतः प्रश्नवाक्य के विश्लेषणानुसार—क्+ऐ+ल्+आ+स्+अ+प्+अ+र्+व्+अ+त्+अ=५+१२+१६+९+११+१३+८=७४ व्यञ्जनाङ्क; ११+५+४+४+४+४=३२ स्वराङ्क=३२+७४=१०६ प्रश्नाङ्क, १०६×८=८४८पिण्डाङ्क, ८४८÷३=२८२लब्धि, २ शेष, धातुचिन्ता का प्रश्न हुआ। ८४८+२८२=११३०÷२=५६५ लब्धि, शेष ०। अतः हानि इसका फल कहना चाहिये। पुनः पिण्डाङ्क में लब्धि को जोड़ा तो—८४८+५६५=१४१३÷२=७०६ लब्धि, शेष १। अतः सुख फल समझना चाहिये।

३–नद्यावर्त चक्र—अवर्गादि के एक एक वृद्धिक्रम से अंक स्थापन कर स्वर व्यञ्जनाङ्क स्थापित कर लेना चाहिये। अधर वर्ण प्रश्नाक्षर हों तो व्यञ्जन और स्वर संख्या का योग कर आठ से भाग देने पर एकादि शेष में क्रमशः अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग ग्रहण करने चाहिये।

उत्तर वर्ण प्रश्नाक्षर हों तो स्वर और व्यञ्जनाङ्क की संख्या को १३ से गुणा कर १२ जोड़ देने पर प्रश्न-पिण्डाङ्क हो जाता है। इस प्रश्नपिण्डाङ्क में ८ से भाग देने पर एकादि शेष में क्रमशः अवर्गादि समझने चाहिये। पश्चात् लब्धि को प्रश्नपिण्ड में जोड़कर ५ का भाग देने पर शेष नाम का प्रथम वर्ण जानना।

नद्यावर्त चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
१	२	३	४	५	१	२	३	४	५	१	२
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
३	४	५	१	२	३	४	५	१	२	३	४
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०	०
५	१	२	३	४	१	२	३	४	०	०	०

उदाहरण—प्रश्नाक्षर मोहन के 'कैलास पर्वत' है। इसका विश्लेषण किया तो क्+ऐ+ल्+आ+स्+अ+प्+अ+र्+व्+अ+त्+अ=क्+ल्+स्+प्+र्+व्+त् व्यञ्जनाक्षर, ऐ+आ+अ+अ+अ स्वराक्षर, २+३+३+१+२+४+१=१६ व्यञ्जनाङ्क, ८+२+१+१+१+१=१४ स्वराङ्क, १६+१४=३०, ३०÷८=३ लब्धि, ६ शेष=प वर्गका नाम समझना चाहिये।

जब प्रश्नाक्षर कैलास पर्वत रखे जाते हैं तो उत्तर प्रश्नाक्षर होने के कारण स्वरव्यञ्जन संख्या २९ को १३ से गुणा किया तो २९×१३=३७७+१२=३८९ प्रश्नपिण्डाङ्क हुआ। ३८९÷८=४८ लब्धि, ५ शेष। तवर्ग का नाम कहना चाहिये।

४ मंडूकप्लवनचक्र[1]–अकारादि स्वरों की एकादि संख्या और ककारादि व्यञ्जनों की दो आदि संख्या वर्गवृद्धि के क्रम से स्थापित कर लेनी चाहिये। प्रश्नवाक्य के समस्त स्वर व्यञ्जनों की संख्या को ११ से गुणा कर १० जोड़ना चाहिये। इस योगफल का नाम प्रश्नपिण्ड समझना चाहिये। प्रश्नपिण्ड में आठ से भाग देने पर एकादि शेष में विलोम क्रम से वर्गाक्षर होते हैं अर्थात् एक शेष में शवर्ग, दो शेष में यवर्ग, तीन शेष में पवर्ग, चार शेष में तवर्ग, पाँच शेष में टवर्ग, छः शेष में चवर्ग, सात शेष में कवर्ग और शून्य या आठ शेष में अवर्ग होता है। पुनः लब्धि को पिण्ड में जोड़ कर पाँच का भाग देने पर एकादि शेष में विलोम क्रम से वर्ग का ज्ञान करना चाहिये।

---

१ बृ० ज्यो० ४।२९२–९३।

मण्डूकप्लवन दिग्चक्र

ई० श० ३२००	पू० अ० २५	आग्ने० क० ५०
उ० य० १६००	श्री०	द० च० १००
वाय० प० ८००	प० त० ४००	नै० ट० २००

मण्डूकप्लवन स्वर-व्यञ्जनाङ्कबोधक चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
२	३	४	५	८	३	४	५	६	७	४	५
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
६	७	८	५	६	७	८	९	६	७	८	९
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०	०
१०	७	८	९	१०	८	९	१०	११	०	०	०

उदाहरण—मोहन का प्रश्नवाक्य—'कैलास पर्वत' है, इसका विश्लेषण किया तो क्+ऐ+ल्+आ +स्+अ+प्+अ+र्+व्+अ+त्+अ=क्+ल्+स्+प्+र्+व्+त् व्यञ्जनाक्षर, ऐ+आ +अ+अ+अ। अ स्वराक्षर।

२+९+१०+६+८+१०+५=५० व्यञ्जनांक, ८+२×१+१+१+१=१४ स्वरांक,

५०+१४=६४ प्रश्नाक्षरांक,

६४×११=७०४+१०=७१४ प्रश्नपिण्डांक, ७१४÷८=८९ लब्ध, २ शेष, विलोमक्रम से शेषांक में वर्ग संख्या की गणना की तो 'यवर्ग आया।' पुन: ७१४+८९=८०३÷५=१६० लब्ध, ३ शेष, यहाँ भी विलोमक्रम से गणना की तो पवर्ग आया।

५ अश्वमोहितचक्र[1]—अकारादि स्वरों के द्विगुणित अंक और ककारादि व्यञ्जनों के अंक पूर्ववत् स्थापित कर चक्र बना लेना चाहिये। यदि प्रश्नवाक्य का आद्य वर्ण अधर—ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह में से कोई अक्षर हो तो प्रश्नाक्षरों की स्वर व्यञ्जन संख्या को एकत्रित कर आठ का भाग देने पर एकादि शेष में अवर्गादि समझने चाहिये। यदि उत्तराक्षरों—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स में से कोई भी वर्ण प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण हो तो प्रश्नाक्षरों के स्वर-व्यञ्जन की अंक संख्या को पन्द्रह से गुणा कर चौदह जोड़ कर आठ का भाग देने पर एकादि शेष में अवर्गादि होते हैं। पश्चात् लब्ध को पिण्ड में जोड़कर पुन: पाँच का भाग देने पर एकादि शेष में वर्ग के प्रथमादि वर्ण होते हैं।

अश्वमोहित का दिग्चक्र

ई० श० १९	पू० अ० २६	आग्ने० क० २५
उ० य० २०	श्री०	द० च० २४
वाय० प० २१	प० त० २९	नै० ट० २३

अश्वमोहित का स्वर-व्यञ्जनाङ्क चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०	०
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	०	०	०

उदाहरण—मोहन का प्रश्नवाक्य 'कैलास पर्वत' है। यहाँ प्रश्नवाक्य का आद्य वर्ण उत्तर संज्ञक वर्ण है अत: निम्न क्रिया करनी होगी—१+२८+३२+२१+२७+२९+१६=१५४ व्यञ्जनाङ्क संख्या; १६+४+२+२+२+२=२८ स्वराङ्क संख्या, १५४+२८=१८२ स्वर व्यञ्जनाङ्क संख्या का योग, १८२×१५=२७३०+१४=२७४४÷८=३४३ लब्ध, ० शेष। यहाँ शवर्ग का प्रश्न माना जायगा। पश्चात् २७४४+३४३=३०८७÷५=६१६ लब्ध, ३ शेष; यहाँ पर वर्ग का तृतीय अक्षर प्रश्न का होगा।

[1] बृ० ज्यो० अ० ४ श्लो० ४। २९०-९१।

नरपतिजयचर्या में अश्वचक्र[1] का निरूपण करते हुए बताया है कि एक घोड़े की मूर्ति बनाकर, उसके मुख आदि विभिन्न अंगो पर पृच्छक के प्रश्नाक्षरानुसार अट्ठाईस नक्षत्रों को क्रम से स्थापित कर देना चाहिये। प्रश्नाक्षरगत नक्षत्र को आदि का दो नक्षत्र मुख में रखकर पश्चात् चक्षुद्वय, कर्णद्वय, मस्तक, पूंछ और दोनो पैर इन आठ अगों में आगे सोलह नक्षत्र क्रमशः स्थापन करे। पश्चात् पेट में पाँच और पीठ में भी पाँच नक्षत्रो का स्थापन करे। सूर्य की स्थिति के अनुसार इस चक्र का फल समझे। यदि अश्व के मुख में सूर्य नक्षत्र हो तो विजय, लाभ और सुख होता है। शनि नक्षत्र यदि अश्वचक्र के कान, पूंछ, पैर या पीठ में रहे तो दुःख, हानि और पराजय होता है। यदि उपर्युक्त स्थानो में सूर्य नक्षत्र रहे तो वस्त्रादि का लाभ होता है।

आचार्य द्वारा कथित प्रकरण का तात्पर्य यह है कि यदि प्रश्नाक्षर आलिङ्गित समय में उत्तराक्षर उत्तर स्वरसयुक्त हो तो चवर्ग के होने पर भी चवर्ग यवर्ग को प्राप्त हो जाता है अर्थात् जिस वस्तु के सम्बन्ध में प्रश्न है उसका नाम यवर्ग के अक्षरों में समझना चाहिये। पूर्वोक्त सिंहावलोकन क्रमसे अभिघातित चवर्ग के होने पर चवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। अर्थात् उक्त प्रश्नस्थिति में वस्तु का नाम कवर्ग के अक्षरों में समझना चाहिये। मंडूकप्लवन क्रम से जब अभिधूमित चवर्ग प्रश्नाक्षर-वर्गाक्षर आवें उस समय वह पवर्ग को प्राप्त हो जाता है। अश्वमोहित क्रम से जब दग्ध प्रश्नाक्षरो में चवर्ग आवे उस समय वह पवर्ग को प्राप्त हो जाता है। सिंहावलोकन क्रम से चवर्ग के प्राप्त होने पर मंडूकप्लवन रीति से अवर्ग को प्राप्त हो जाता है। गजावलोकन क्रम से उत्तराक्षर उत्तर स्वरसंयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर चवर्ग अवर्ग को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार चवर्ग विभिन्न प्रश्नस्थितियों के अनुसार विभिन्न वर्गों को प्राप्त होता है। इस प्राप्ति का प्रधान लक्ष्य वर्गाक्षरों का निष्कासन है।

तवर्गचक्र का विचार

तवर्गे आलिङ्गिते यवर्गं नद्यावर्तक्रमेण प्राप्नोति। तवर्गेऽभिधूमिते शवर्गं शशदृशो(सिंहदृशा)नुक्रमेण[2] प्राप्नोति। तवर्गे दग्धेऽवर्गं जनै[3] (गज) विलोकित-क्रमेण प्राप्नोति। तवर्गे आलिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्ते चवर्गं सिंहदृशानुक्रमेण[4][5] प्राप्नोति। तवर्गेऽभिघातिते टवर्गं मेकप्लुत्या[6] प्राप्नोति। इति तवर्गचक्रम्।

अर्थ—आलिङ्गित तवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर तवर्ग नद्यावर्त क्रम से यवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित तवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर सिंहावलोकन क्रम से तवर्ग शवर्ग को प्राप्त होता है। दग्ध प्रश्नाक्षरों में तवर्ग के होने पर गजविलोकित क्रम से प्रश्न का तवर्ग अवर्ग को प्राप्त होता है। उत्तराक्षरों—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल व श स ह के उत्तर स्वरसंयुक्त होने पर आलिङ्गित काल के प्रश्न में तवर्ग सिंहावलोकन क्रम से चवर्ग को प्राप्त होता है। अभिघातित तवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर मण्डूकप्लवन गति से तवर्ग टवर्ग को प्राप्त होता है।

विवेचन—आचार्य ने उपर्युक्त प्रकरण में तवर्ग के परिवर्तन का विचार किया है। चोरी गई वस्तु, मुट्ठी में रखी गई वस्तु एव मन में चिन्तित वस्तु के नाम को ज्ञात करने के लिये तवर्ग के चक्र का विचार किया है। क्योंकि प्रश्नवाक्य की किस प्रकार का स्थिति में तवर्ग परिवर्तित होकर किस अवस्था को प्राप्त होता है तथा उस अवस्था के अनुसार तवर्ग का कौन सा वर्ग मानना पड़ेगा—आदि विचार उपर्युक्त प्रकरण में विद्यमान है। इसका विशेष विवेचन पहले किया जा चुका है। गर्गाचार्य ने नद्यावर्त, सिंहावलोकन,

---

१ न० ज० पृ० २०२। २ शशाङ्कदृशा—क० मू०। शशकारिदृशा—ता० मू०। ३ गज—क० मू०। ४ शश-कारिदृशा—ता० मू०। ५ अनुक्रमेण प्राप्नोति—इति पाठो नास्ति—क० मू०। ६ मण्डूकप्लवनगत्या—ता० मू०।

गजावलोकन, अश्वमोहित और मण्डूकप्लवन आदि चक्रों के गणित को न लिखकर केवल प्रश्नाक्षरों पर से ही किस प्रकार के प्रश्न में किस दृष्टि से कौनसा वर्ग आता है, इसका कथन किया है। पहले जो नद्यावर्त आदि का गणित दिया गया है, उससे भी प्रामाणिक ढंग से वर्ग का नाम निकाला जा सकता है।

यवर्ग चक्र

यवर्गे आलिङ्गितेऽवर्गं नद्यावर्तक्रमेण प्राप्नोति। यवर्गेऽभिधूमिते कवर्गमश्वमोहितक्रमेण[2] प्राप्नोति[3]। यवर्गेऽभिघातिते शवर्गं मेकप्लुत्या[4] प्राप्नोति। इति यवर्गचक्रम्[5]।

अर्थ—आलिङ्गित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का यवर्ग नद्यावर्तक्रम से अवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का यवर्ग अश्वमोहित क्रम से क वर्ग को प्राप्त होता है। अभिघातित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का यवर्ग मण्डूकप्लवन गति से शवर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार यवर्ग चक्र का वर्णन समझना चाहिये।

कवर्गचक्रविचार

कवर्गे[6] आलिङ्गिते टवर्गमश्वप्लुत्याऽभिधूमिते दग्धेऽभिघातिते च चीनप्लुतिं (चीनगत्या तवर्गं) प्राप्नोति[7]। इति कवर्गचक्रम्[8]।

अर्थ—आलिङ्गित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का कवर्ग अश्वगति-अश्वमोहित क्रम से ट वर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित, दग्ध और अभिघातित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का कवर्ग मण्डूकप्लवन गति से तवर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार कवर्ग का वर्णन हुआ।

विवेचन-उपर्युक्त कवर्ग चक्र के ग्रन्थान्तरों में कई रूप पाये जाते हैं। एक स्थान[9] पर बताया गया है कि आलिङ्गित समय का प्रश्न होने पर आलिङ्गित ही प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का कवर्ग अश्वमोहित क्रम से टवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित वेला के प्रश्न में आलिङ्गित और संयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का कवर्ग गजाविलोकन क्रम से अवर्ग को प्राप्त होता है। दग्धवेला के प्रश्न में असयुक्त और सयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर सिंहावलोकन क्रम से प्रश्न का कवर्ग तवर्ग को प्राप्त होता है। अधर प्रश्नवर्णों के होने पर प्रश्न का कवर्ग नद्यावर्त क्रम से चवर्ग को प्राप्त होता है। उत्तर प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का कवर्ग मण्डूकप्लवन गति से यवर्ग को प्राप्त होता है।

टवर्गचक्रविचार

टवर्गे[10] आलिङ्गिते नद्यावर्तेन[11], टवर्गेऽभिधूमितेऽश्वगत्या, टवर्गे आलिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्ते कवर्गं प्राप्नोति। टवर्गेऽभिधूमिते तवर्गं मेकक्रमेण[12] प्राप्नोति। इति टवर्गचक्रम्[13]।

---

१ यवर्णं चक्रं–ता० मू०। २ अश्वमोहितक्रमः–क० मू०। ३ प्राप्नोतीति पाठो नास्ति–क० मू०। ४ मण्डूकप्लवनगत्या–ता० मू०। ५ इति यवर्णचक्रम्–ता० मू०। ६ कवर्गे आलिङ्गिते, उत्तरद्धनकेऽभिधूमितेवं, अश्वगत्याके दग्धे अभिघातितं चीनगतिं–इति कवर्गचक्रम्–क० मू०। ७ प्राप्नोतीति पाठो नास्ति–ता० मू०। ८ कवर्णचक्रम्–ता० मू०। ९ बृहज्ज्योतिषार्णवग्रन्थस्य चतुर्थोऽध्यायः द्रष्टव्यः। १० टे आलिङ्गिते पद्मावेन टेऽभिधूमितेऽश्वगत्या टे आलिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्ते कं टेऽभिघातिते त मेकक्रमेण। इति टवर्गचक्रम्–क० मू०। ११ पद्मावेन–ता० मू०। १२ मण्डूकगत्या–ता० मू०। १३ टवर्णचक्रम्–ता० मू०।

अर्थ-आलिङ्गित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का टवर्ग नद्यावर्त क्रम से कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित प्रश्नाक्षरो के होने पर अश्वमोहित क्रम से प्रश्न का टवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। आलिङ्गित प्रश्न में उत्तराक्षरों के उत्तर स्वरसंयुक्त होने पर प्रश्न का टवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित प्रश्न के होने पर प्रश्न का टवर्ग मण्डूकप्लवन गति से तवर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार टवर्ग का वर्णन हुआ।

विवेचन-ग्रन्थान्तरों में बताया गया है कि आलिङ्गित वेला के प्रश्न में उत्तरवर्ण के प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य वर्ण टवर्ग नद्यावर्त क्रम से कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित वेला के प्रश्न में अधर वर्ण प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य टवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। दग्ध वेला के प्रश्न में अधरोत्तर प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य टवर्ग चवर्ग को प्राप्त हो जाता है। संयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य टवर्ग सिंहावलोकन क्रम से तवर्ग को प्राप्त होता है। असंयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर आद्य टवर्ग गजावलोकन क्रम से पवर्ग को प्राप्त होता है। अभिघातित प्रश्नाक्षरों के होने पर आद्य टवर्ग अश्वमोहित क्रम से शवर्ग को प्राप्त होता है। मण्डूकप्लवनगति से तवर्ग के अभिघातित होने पर प्रश्न का टवर्ग यवर्ग को प्राप्त होता है। टवर्ग के अनभिहत होने पर टवर्ग चवर्ग को प्राप्त होता है। प्रथमश्रेणी में टवर्ग के दग्ध होने पर टवर्ग पवर्ग को, आलिङ्गित होने पर टवर्ग अवर्ग को, अभिधूमित होने पर टवर्ग तवर्ग को एवं अधरोत्तर स्वरसंयुक्त अभिधूमित होने पर टवर्ग शवर्ग को प्राप्त होता है।

पवर्गचक्रविचार

पवर्गे आलिङ्गिते शवर्गं नद्यावर्तक्रमेण, पवर्गे[1]ऽभिधूमिते अम् अश्वगत्या, पवर्गे[3] दग्धे कवर्गं[4] गजदृशा, पवर्गे[5] आलिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्ते टवर्गं[6] सिंहदृशा, पवर्गे[7]ऽभिधूमिते यं मण्डूकाप्लुत्या[8] प्राप्नोति[9]। इति पवर्गचक्रम्[10]।

अर्थ-आलिङ्गित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का पवर्ग नद्यावर्त क्रम से शवर्ग को प्राप्त होता है। पवर्ग के अभिधूमित होने पर प्रश्न का पवर्ग अश्वगति से अवर्ग को प्राप्त होता है। पवर्ग के दग्ध होने पर गजावलोकन क्रम से प्रश्न का पवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। पवर्ग के आलिङ्गित होने पर प्रश्नाक्षरों के उत्तराक्षर उत्तर स्वरसंयुक्त होने पर सिंहावलोकन क्रम से पवर्ग टवर्ग को प्राप्त होता है। पवर्ग के अभिघातित होने पर मण्डूकप्लवन गति से पवर्ग यवर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार पवर्ग चक्र का वर्णन हुआ।

विवेचन-ज्योतिषशास्त्र में पवर्ग के चक्र का स्वरूप बताया गया है कि आलिङ्गितवेला के प्रश्न में आद्य प्रश्नाक्षर पवर्ग के होने पर नद्यावर्त चक्र की दृष्टि से पवर्ग शवर्ग को प्राप्त हो जाता है अर्थात् पवर्ग के प्रश्नाक्षरों में वस्तु का नाम शवर्ग का समझना चाहिये। अभिधूमित वेला के प्रश्न में पवर्ग अश्वमोहित से अवर्ग को प्राप्त होता है अर्थात् उक्त स्थिति में वस्तु का नाम अवर्ग के अक्षरों में अवगत करना चाहिये। दग्धवेला का प्रश्न होने पर सिंहावलोकन क्रम से पवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम क ख ग घ ङ इन वर्णों से प्रारम्भ होने वाला होता है। उत्तर प्रश्नाक्षरों के होने पर पवर्ग नद्यावर्त क्रम से चवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम च छ ज झ ञ इन वर्णों से प्रारम्भ होने वाला समझना चाहिये। अधर प्रश्न वर्णों के होने पर मंडूकप्लवन गति से पवर्ग तवर्ग को प्राप्त होता है-वस्तु का नाम त थ द ध न इन वर्णों से प्रारम्भ होने वाला समझना चाहिये। अधरोत्तर प्रश्नवर्णों के होने पर पवग सिंहदृष्टि से यवर्ग को प्राप्त होता है-वस्तु का नाम य र ल व इन वर्णों से प्रारम्भ होने वाला समझना चाहिये। उत्तराधर प्रश्न वर्णों के होने पर प्रश्न

---

१ पे आलिङ्गिते शसाघेन-क० मू०। २ पेऽभिधूमिते-क० मू०। ३ पे-क० मू०। ४ कं-क०मू०। ५ मे-क० मू०। ६ ट-क० मू०। ७ पे-क० मू०। ८ मण्डूकप्लवनगत्या-क० मू०। ९ प्राप्नोतीति पाठो नास्ति-ता० मू०। १० पवर्णचक्रम्-ता० मू०।

का आद्य पवर्ग गजावलोकन क्रम से अपने ही वर्ग को-पवर्ग को प्राप्त होता है- वस्तु का नाम प फ ब भ म इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला समझना चाहिये। उत्तर स्वरसयुक्त अधर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर पवर्ग नद्यावर्त क्रम से शवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम श ष स ह इन वर्णों से प्रारम्भ होने वाला समझना चाहिये। अधर स्वरसंयुक्त उत्तर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर पवर्ग पन्नगगति से चवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम च छ ज झ ञ इन वर्णों से प्रारम्भ होने वाला समझना चाहिये। अधरोत्तर स्वरसंयुक्त उत्तर वर्णों के होने पर आद्य प्रश्नाक्षर पवर्ग अश्वमोहित क्रम से अवर्ग को प्राप्त होता है। असंयुक्त और संयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य पवर्ग गजगति से कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिहित प्रश्न के होने पर नद्यावर्त क्रम से टवर्ग को, अनभिहत प्रश्नाक्षरों के होने पर मण्डूकगति से पवर्ग तवर्ग को, दग्ध प्रश्न के होने पर सिंहदृशा गति से पवर्ग यवर्ग को और आलिङ्गित प्रश्न के होने पर पवर्ग अश्वगति से शवर्ग को प्राप्त होता है। जिस समय पवर्ग जिस वर्ग को प्राप्त होता है, उस समय वस्तु का नाम उसी वर्ग के अक्षरों पर समझना चाहिये।

शवर्गचक्रविचार

शे आलिङ्गिते कं[2] [नद्यावर्तेन] शेऽभिधूमिते चं[3] शे दग्धे टं[4] गजगत्या, शे आलिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्ते [सिंहदृशा] पं[5] शेऽभिघातिते[6] अं[7] मण्डूकप्लुत्या प्राप्नोति। इति शवर्गचक्रम्[8]।

अर्थ—प्रश्न का आद्य वर्ण आलिङ्गित शवर्ग का होने पर नद्यावर्त क्रम से शवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित शवर्ग का होने पर अश्वमोहित क्रम से चवर्ग को प्राप्त होता है। दग्ध शवर्ग का होने पर गजगति से टवर्ग को शवर्ग प्राप्त करता है। आलिङ्गित शवर्ग के उत्तराक्षर उत्तरस्वरसयुक्त होने पर सिंहावलोकन क्रम से प्रश्नका शवर्ग पवर्ग को प्राप्त होता है। शवर्ग के अभिघातित होने पर मण्डूकप्लवन गति से प्रश्न का आद्य शवर्ग अवर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार शवर्गचक्र का वर्णन हुआ।

विवेचन—शवर्ग चक्र का वर्णन करते हुए बताया गया है कि आलिङ्गित वेला के प्रश्न में प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ग शवर्ग नद्यावर्त क्रम से कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित वेला के प्रश्न में प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ग शवर्ग अश्वमोहित क्रम से चवर्ग को प्राप्त होता है। दग्ध वेला के प्रश्न में प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ग शवर्ग गजगति से टवर्ग को प्राप्त होता है। उत्तराक्षर उत्तरस्वरसंयुक्त प्रश्नवर्णों के होने पर प्रश्न का आद्य वर्ग शवर्ग सिंहदृष्टि की गति से पवर्ग को प्राप्त होता है। शवर्ग के अभिघातित प्रश्न के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग मण्डूकप्लवन गति से अवर्ग को प्राप्त होता है। उत्तर वर्णों के प्रश्नाक्षरों में प्रश्न का आद्य शवर्ग टवर्ग को प्राप्त होता है। अधर मात्रासंयुक्त उत्तर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर गजगति से प्रश्न का आद्य शवर्ग तवर्ग को प्राप्त होता है। अधरोत्तर मात्रासयुक्त उत्तर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग सिंहावलोकन क्रम से कवर्ग को प्राप्त होता है। उत्तर मात्रासंयुक्त अधरवर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग गजगति से अवर्ग को प्राप्त होता है। अधर मात्रासयुक्त अधर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर नद्यावर्त क्रम से शवर्ग पवर्ग को प्राप्त होता है। अधरोत्तर मात्रासयुक्त अधर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग अश्वमोहित क्रम से यवर्ग को प्राप्त होता है। अधरोत्तराधर मात्रासयुक्त अधर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर शवर्ग मण्डूकप्लवन गति से अपने वर्ग—शवर्ग को प्राप्त होता है। अभिहित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग गजगति से कवर्ग को प्राप्त होता है। अनभिहत प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न

---

१ शेऽऽलिङ्गते कं नाशेन—क० मू०। २ कवर्ग—ता० मू०। ३ शेऽभिधूमिते च अश्वगत्या—क० मू०। ३ चवर्ग—ता० मू०। ४ टवर्ग—ता० मू०। ५ पवर्ग—ता० मू०। ६—शवर्गेऽभिघातिते—क० मू०। ७ अवर्ग—ता० मू०। ८ शवर्णचक्रम्—ता० मू०।

का आद्य शवर्ग सिंहावलोकन क्रम से पवर्ग को प्राप्त होता है। संयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग अश्वमोहित क्रम से टवर्ग को प्राप्त होता है। असंयुक्त और दग्ध प्रश्न वर्णों के होने पर मण्डूकप्लवन गति से शवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है।

ग्रन्थकारोक्त शवर्ग चक्र

अधरोत्तरक्रमेण द्रष्टव्यम्[1]। अभिहतेऽवर्गे[2] उत्तराक्षरे पवर्गम्, अधराक्षरे टवर्गमनभिहतेऽवर्गमुत्तराक्षरेऽधराक्षरेऽधरस्वरसंयुक्ते वा स्ववर्गं प्राप्नोति। अनभिहते चवर्गे उत्तराक्षरेऽधरस्वरसंयुक्ते वा स्ववर्गं प्राप्नोति। अनभिहते[3] (अभिहते) चवर्गे उत्तराक्षरे चवर्गम्, अधराक्षरेऽवर्गम्, अनभिहते पवर्गे उत्तराक्षरेऽधराक्षरेऽधरस्वरसंयुक्ते वा स्ववर्गं प्राप्नोति। अनभिहते 'श'[4] उत्तराक्षरे अधराक्षरे वाऽधरस्वरसंयुक्ते चवर्गं प्राप्नोति, द्वयोः सिंहावलोकनक्रमेण पर्यन्तः[5]। शवर्गश्च मण्डूकप्लुत्या [स्ववर्गं प्राप्नोति। इति शवर्गचक्रम्[6]।

अर्थ—अधरोत्तर क्रम से शवर्ग का विचार करना चाहिये। अभिहित अवर्ग उत्तराक्षरों में शवर्ग पवर्ग को प्राप्त होता है। अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर टवर्ग को प्राप्त होता है। अनभिहत अवर्ग उत्तराक्षर, अधराक्षर या अधर स्वरसंयुक्त वर्णों के होने पर स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अनभिहत चवर्ग उत्तराक्षर में या अधर स्वरसयुक्त उत्तराक्षर प्रश्न मे शवर्ग स्ववर्ग का प्राप्त होता है। अभिहत उत्तराक्षर प्रश्न के होने पर चवर्ग को, अधराक्षर में अवर्ग को प्राप्त होता है। अनभिहत पवर्ग में उत्तराक्षर या अधराक्षर अथवा अधर स्वरसंयुक्त उत्तराक्षर प्रश्न में शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अनभिहत शवर्ग उत्तराक्षर में या अधराक्षर मे या अधर स्वरसंयुक्त उत्तराक्षर मे सिंहावलोकन क्रम से शवर्ग चवर्ग को प्राप्त होता है। शवर्ग मण्डूकप्लवन गति से स्ववर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार शवर्गचक्र पूर्ण हुआ।

विवेचन—यदि प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण अभिहित सज्ञक हो तो शवर्ग पवर्ग को प्राप्त होता है अर्थात् प फ ब भ म इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला वस्तु का नाम होता है। अधराक्षर प्रश्न वर्णों के होने पर प्रश्न का आद्य वर्ग शवर्ग टवर्ग को प्राप्त हो जाता है—ट ठ ड ढ ण इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला वस्तु का नाम समझना चाहिये। अनभिहत प्रश्नाक्षरो के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है—श ष स ह इन वर्णों से प्रारम्भ होने वाला वस्तु का नाम होता है। अवर्ग के प्रश्नाक्षरो में प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर तथा अधर स्वरसयुक्त अधराक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अभिहत प्रश्न में प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त करता है। चवर्ग उत्तराक्षर या अधर स्वरसयुक्त उत्तराक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग या प्रश्न का आद्य चवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। उत्तराधर मात्राओं से संयुक्त उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। गुणोत्तर मात्राओं से सयुक्त अधराधर प्रश्नवर्णों के होने पर सिंहावलोकन क्रम से शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त करता है। अनभिहित, पवर्ग, उत्तराक्षर, अधराक्षर और अधर स्वरसयुक्त उत्तराक्षरो के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग या प्रश्न का आद्य पवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। गजावलोकन

---

१ अधरा अधरोत्तरक्रमेण द्रष्टव्याः—क० मू०। २ अवर्गे—क० मू०। ३ अनभिहतेऽप्यतिवर्गे उत्तराक्षरे पवर्ग, कवर्गे उत्तराक्षरे शवर्गं, अधराक्षरे स्ववर्गं प्राप्नोति। ४ अभिहिते चवर्गे उत्तराक्षरे अधरस्वरसयुक्ते वा स्ववर्गं प्राप्नोति—क० मू०। ५ शवर्गे—ता० मू०। ६ पश्यतः—क० मू०। तुलना—बृ० ज्यो० ४।२९४–३०८।

क्रम से आलिङ्गित वेला के प्रश्न में अभिहित पवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य पवर्ग या शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। नद्यावर्त क्रम से आलिङ्गित वेला के प्रश्न में अभिहित टवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अश्वमोहित क्रम से आलिङ्गित वेला के प्रश्न में अभिहत कवर्ग या चवर्ग अथवा शवर्ग के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। मण्डूकप्लवन गति से आलिङ्गित वेला के प्रश्न में अभिहत तवर्ग या पवर्ग के होने पर प्रश्न का आद्य तवर्ग, पवर्ग या शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित वेला के प्रश्न में अनभिहत चवर्ग या शवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य चवर्ग या शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। गजविलोकन क्रम से अभिधूमित वेला के प्रश्न में प्रश्न का आद्य चवर्ग अवर्ग या शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होते हैं। अभिधूमित वेला के प्रश्न में नद्यावर्त क्रम से प्रश्न का आद्य आलिङ्गित चवर्ग और टवर्ग अपने अपने वर्ग को प्राप्त होते हैं। दग्ध वेला के प्रश्न में प्रश्न के आद्य पवर्ग, यवर्ग और तवर्ग सिंहावलोकन क्रम से स्ववर्ग को प्राप्त होते हैं। यहाँ इतना और स्मरण रखना होगा कि इस समय के प्रश्न में प्रश्न का आद्य शवर्ग चवर्ग को प्राप्त होता है। अभिहत उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग या चवर्ग सिंहावलोकन क्रम से स्ववर्ग को प्राप्त होते हैं। मण्डूकप्लवन गति से प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। उत्तराधर संयुक्त आलिङ्गित प्रश्नवर्णों के होने पर सिंहदृष्टि से शवर्ग टवर्ग या यवर्ग अथवा स्ववर्ग को प्राप्त होते हैं।

वर्ग-नाम निकालने का सुगम नियम

अधर प्रश्न हो तो निम्न चिन्तामणि चक्र के अनुसार स्वर व्यञ्जनाङ्क संख्या को योग कर ३० से गुणा करना; गुणनफल में २९ जोड़कर आठ से भाग देने पर शेष अवर्गादि जानना और उत्तर प्रश्न हो तो स्वर-व्यञ्जनाङ्क संख्या का योग कर ६० से गुणाकर, गुणनफल में ५९ जोड़ने पर प्रश्न पिण्ड होता है। इस प्रश्न-पिण्ड में आठ का भाग देने पर शेष नाम के प्रथमाक्षर का वर्ग होता है। पुनः प्रश्नपिण्ड में लब्ध को जोड़कर पाँच का भाग देने पर शेष नाम के प्रथमाक्षर का वर्ण होता है।

चिन्तामणि चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
११२	१४१	१६८	१२६	२२४	२५२	२८०	३०८	३३६	३६४	३८२	४१०
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
१५५	१८६	२१७	२४८	२७८	१६८	१९६	२२४	२५२	२८०	२१७	२५०
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
२८३	३१६	३४८	२२४	२५६	२८८	३०८	३३६	२८१	३१०	३३५	३६०
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	क्ष	०	०
३८५	२८०	३०८	३३६	३६४	३४३	३८२	४३२	४६४	५०५	०	०

उदाहरण—मोहन का प्रश्नवाक्य 'सुमेरु पर्वत' है। यहाँ प्रश्नवाक्य का आद्यक्षर उत्तर वर्णसंज्ञक है, अतः प्रश्न उत्तरसंज्ञक माना जायगा। इसका विश्लेषण किया तो—

स् + उ + म् + ए + र् + उ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ = स् + म् + र् + प् + र् + व् + त् = व्यञ्जनाक्षर; उ + ए + उ + अ + अ + अ = स्वराक्षर,

४३२ + ३८५ + ३०८ + २८५ + ३०८ + ३६४ + २२४ = २३०६ व्यञ्जनाङ्क संख्या; २२४ + २८० + २२४ + ११२ + ११२ + ११२ = १०६४ स्वराङ्क संख्या; २३०६ + १०६४ = ३३७० प्रश्नाक्षराङ्क संख्या।

३३७० × ६० = २०२२०० + ५९ = २०२२५९ + ८ = २५२८२ लब्ध, ३ शेष. चवर्ग हुआ अतः वस्तु के नाम का प्रथमाक्षर चवर्ग से प्रारम्भ होने वाला समझना चाहिये। पुनः २५२८२ + २०२२५९ = २२७५४१ ÷ ५ = ४५५०८ लब्ध, शेष १, अतः चवर्ग का प्रथमाक्षर नाम का होना चाहिये। एकादि शेष में वर्ग के एकादि वर्ण ग्रहण किये जाते हैं। इसलिये प्रस्तुत प्रश्न में चवर्ग का प्रथम अक्षर—च से वस्तु का नाम प्रारम्भ होता है।

नाम निकालने के लिये सर्ववर्गाङ्कानयन चक्र

क ७	ख ८	ग ९	घ १०	ङ ११	च ६	छ ७	ज ८	झ ९	ञ १०	ट ५	ठ ६	ड ७	ढ ८	ण ९	त ४	थ ५	द ६	ध ७	न ८	प ३	फ ४	ब ५	भ ६	म ७	य २	र ३	ल ४	व ५	श १	ष २	स ३	ह ४
का ७	खा ८	गा ९	घा १०	ङा ११	चा ६	छा ७	जा ८	झा ९	ञा १०	टा ५	ठा ६	डा ७	ढा ८	णा ९	ता ४	था ५	दा ६	धा ७	ना ८	पा ३	फा ४	बा ५	भा ६	मा ७	या २	रा ३	ला ४	वा ५	शा १	षा २	सा ३	हा ४
कि ८	खि ९	गि १०	घि ११	ङि १२	चि ७	छि ८	जि ९	झि १०	ञि ११	टि ६	ठि ७	डि ८	ढि ९	णि १०	ति ५	थि ६	दि ७	धि ८	नि ९	पि ४	फि ५	बि ६	भि ७	मि ८	यि ३	रि ४	लि ५	वि ६	शि २	षि ३	सि ४	हि ५
की ८	खी ९	गी १०	घी ११	ङी १२	ची ७	छी ८	जी ९	झी १०	ञी ११	टी ६	ठी ७	डी ८	ढी ९	णी १०	ती ५	थी ६	दी ७	धी ८	नी ९	पी ४	फी ५	बी ६	भी ७	मी ८	यी ३	री ४	ली ५	वी ६	शी २	षी ३	सी ४	ही ५
कु ९	खु १०	गु ११	घु १२	ङु १३	चु ८	छु ९	जु १०	झु ११	ञु १२	टु ७	ठु ८	डु ९	ढु १०	णु ११	तु ६	थु ७	दु ८	धु ९	नु १०	पु ५	फु ६	बु ७	भु ८	मु ९	यु ४	रु ५	लु ६	वु ७	शु ३	षु ४	सु ५	हु ६
कू ९	खू १०	गू ११	घू १२	ङू १३	चू ८	छू ९	जू १०	झू ११	ञू १२	टू ७	ठू ८	डू ९	ढू १०	णू ११	तू ६	थू ७	दू ८	धू ९	नू १०	पू ५	फू ६	बू ७	भू ८	मू ९	यू ४	रू ५	लू ६	वू ७	शू ३	षू ४	सू ५	हू ६
के १०	खे ११	गे १२	घे १३	ङे १४	चे ९	छे १०	जे ११	झे १२	ञे १३	टे ८	ठे ९	डे १०	ढे ११	णे १२	ते ७	थे ८	दे ९	धे १०	ने ११	पे ६	फे ७	बे ८	भे ९	मे १०	ये ५	रे ६	ले ७	वे ८	शे ४	षे ५	से ६	हे ७
कै १०	खै ११	गै १२	घै १३	ङै १४	चै ९	छै १०	जै ११	झै १२	ञै १३	टै ८	ठै ९	डै १०	ढै ११	णै १२	तै ७	थै ८	दै ९	धै १०	नै ११	पै ६	फै ७	बै ८	भै ९	मै १०	यै ५	रै ६	लै ७	वै ८	शै ४	षै ५	सै ६	है ७
को ११	खो १२	गो १३	घो १४	ङो १५	चो १०	छो ११	जो १२	झो १३	ञो १४	टो ९	ठो १०	डो ११	ढो १२	णो १३	तो ८	थो ९	दो १०	धो ११	नो १२	पो ७	फो ८	बो ९	भो १०	मो ११	यो ६	रो ७	लो ८	वो ९	शो ५	षो ६	सो ७	हो ८
कौ ११	खौ १२	गौ १३	घौ १४	ङौ १५	चौ १०	छौ ११	जौ १२	झौ १३	ञौ १४	टौ ९	ठौ १०	डौ ११	ढौ १२	णौ १३	तौ ८	थौ ९	दौ १०	धौ ११	नौ १२	पौ ७	फौ ८	बौ ९	भौ १०	मौ ११	यौ ६	रौ ७	लौ ८	वौ ९	शौ ५	षौ ६	सौ ७	हौ ८
कं १२	खं १३	गं १४	घं १५	ङं १६	चं ११	छं १२	जं १३	झं १४	ञं १५	टं १०	ठं ११	डं १२	ढं १३	णं १४	तं ९	थं १०	दं ११	धं १२	नं १३	पं ८	फं ९	बं १०	भं ११	मं १२	यं ७	रं ८	लं ९	वं १०	शं ६	षं ७	सं ८	हं ९
कः १२	खः १३	गः १४	घः १५	ङः १६	चः ११	छः १२	जः १३	झः १४	ञः १५	टः १०	ठः ११	डः १२	ढः १३	णः १४	तः ९	थः १०	दः ११	धः १२	नः १३	पः ८	फः ९	बः १०	भः ११	मः १२	यः ७	रः ८	लः ९	वः १०	शः ६	षः ७	सः ८	हः ९

प्रश्नाक्षरों की स्वर-व्यञ्जनाङ्क संख्या में से आलिङ्गित प्रश्न हो तो एक कम करने से, अभिधूमित हो तो दो कम करने से और दग्ध हो तो तीन कम करने से प्रश्नपिण्डाङ्क संख्या आती है। इस प्रश्नपिण्डाङ्क संख्या में ८ का भाग देने से आठ अर्थात् शून्य शेष में अवर्ग, सात शेष में कवर्ग, छः शेष में चवर्ग, पाँच शेष में टवर्ग, चार शेष में तवर्ग, तीन शेष में पवर्ग, दो शेष में यवर्ग, एवं एक शेष में शवर्ग होता है। वर्ग का आनयन कर लेने के पश्चात् अक्षरानयन को निम्न सिद्धान्त से कहना चाहिये।

प्रश्नश्रेणी–प्रश्नाक्षरों में प्रथमाक्षर आलिङ्गित स्वरसंयुक्त हो तो जिस वर्ग का प्रश्न है उसी वर्ग का प्रथमाक्षर जानना। अधराक्षर अधर स्वरसंयुक्त हो तो उस वर्ग का दूसरा अक्षर नामाक्षर होता है। उत्तराधर वर्ण दग्ध स्वरसंयुक्त हो तो उस वर्ग का तीसरा अक्षर, उत्तर वर्ण अधर स्वरसंयुक्त हो तो उस वर्ग का प्रथम अक्षर नामाक्षर, प्रश्न में अभिघाताक्षर नामाक्षर हो तो उस वर्ग का पाँचवा अक्षर नामाक्षर, अभिहित प्रश्न हो तो उस वर्ग का चौथा अक्षर नामाक्षर, अनभिहत प्रश्न हो तो उस वर्ग का तीसरा अक्षर नामाक्षर, असंयुक्त प्रश्न हो तो उस वर्ग का दूसरा अक्षर नामाक्षर एवं संयुक्त प्रश्न हो तो उस वर्ग का प्रथम अक्षर नामाक्षर होता है।

नामाक्षर लाने की गणित विधि यह है कि पूर्वोक्त विधि से सर्ववर्गाङ्कानयन में जो प्रश्नपिण्ड आया है, उसमें वर्गाङ्कानयन की लब्धि को जोड़ कर पाँच का भाग देने पर एकादि शेष में उस वर्ग का प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम वर्ण होता है।

उदाहरण–मोहन का प्रश्नवाक्य 'सुमेरु पर्वत' है। यहाँ प्रश्नवाक्य के प्रारम्भ में उ कार की मात्रा है अतः यह दग्ध प्रश्न माना जायगा। प्रश्नवाक्य का विश्लेषण निम्न प्रकार हुआ–

स् + उ + म् + ए + र् + उ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ = स् + म् + र् + प् + र् + व् + त् = व्यञ्जनाक्षर

उ + ए + उ + अ + अ + अ = स्वराक्षर या मात्राएँ। सर्ववर्गाङ्कानयन के लिये विश्लेषण—

सु + मे + रु + प + र्व + त

५ + १० + ५ + ३ + ३ + ५ + ४ = ३५ प्रश्नाङ्क संख्या। यहाँ दग्ध प्रश्न होने से तीन घटाया तो– ३५ – ३ = ३२ प्रश्नपिण्डाङ्क संख्या, ३२ ÷ ८ = ४ लब्ध, शेष ०, अतः अवर्ग का प्रश्न है—

३२ + ४ = ३६ ÷ ५ = ७ लब्ध, १ शेष यहाँ पर आया। अतः आ से प्रारम्भ होने वाला नाम समझना चाहिये।

चिन्तामणिचक्र और सर्ववर्गानयन चक्र इन दोनों के द्वारा किसी भी वस्तु का नाम जाना जा सकता है। चिन्तामणि चक्र अनुभूत है, इसके द्वारा सम्यक् गणित क्रिया करने पर वस्तु या चोर का नाम यथार्थ निकलता है।

आचार्य ने विना गणित क्रिया के केवल आलिङ्गित, अभिधूमित और दग्ध इन तीन प्रकार के प्रश्नों के अनुसार बताया है कि प्रत्येक वर्ग पाँचों वर्गों में भ्रमण करता हुआ किसी निश्चित वर्ग को प्राप्त होता है। वस्तु या व्यक्ति का नाम भी उसी प्राप्त वर्ग के नाम पर होता है।

गाथा—

जो पढमो सो मरओ, जो मरओ सो होइ अत्ति आ ।
अत्तिल्लेसा पढमो डातण्णामं णत्थि सन्देहो ॥

॥ इति केवलज्ञानप्रश्नचूडामणिः समाप्तः ॥

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि के परिशिष्ट

परिशिष्ट नं० १

नक्षत्रों के नाम

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती ये २७ नक्षत्र हैं। धनिष्ठा से रेवती तक पाँच नक्षत्रों में पञ्चक माना जाता है। अश्विनी, रेवती, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूल इन पाँच नक्षत्रों में जन्मे बालक को मूल दोष माना जाता है। कोई-कोई मघा नक्षत्र को भी मूल में परिगणित करते हैं।

योगों के नाम

विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वर्याण, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र और वैधृति।

करणों के नाम

बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनी, चतुष्पद, नाग, किंस्तुघ्न।

समस्त शुभ कार्यों में त्याज्य

जन्मनक्षत्र, जन्ममास, जन्मतिथि, व्यतीपातयोग, भद्रा, वैधृतियोग, अमावास्या, क्षयतिथि, वृद्धितिथि, क्षयमास, अधिकमास, कुलिक, अर्द्धयाम, महापात, विष्कम्भ योग और वज्र योग के प्रारम्भ की तीन तीन घटिकाएँ, परिघ योग का पूर्वार्ध, शूलयोग के पाँच दण्ड, गण्ड और अतिगण्ड की छः छः घटिकाएँ एवं व्याघातयोग की नौ घटिकाएँ समस्त शुभकार्यों में त्याज्य हैं।

सीमन्तोन्नयनमुहूर्त

बृहस्पति, रवि और मङ्गलवार में मृगशिर, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु और हस्त नक्षत्र में, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावस्या, द्वादशी, षष्ठी और अष्टमी को छोड़ कर अन्य तिथियों में, मासेश्वर के बली रहते, गर्भाधान से आठवें या छठवें मास में, केन्द्र त्रिकोण में (१।४।७।१०।५।९) शुभ ग्रहों के रहते, ग्यारहवें, छठवें, तीसरे स्थान में क्रूर ग्रहों के रहते हुए, पुरुषसंज्ञक ग्रहों के लग्न अथवा नवांश में रहने पर सीमन्तोन्नयन कर्म श्रेष्ठ है। किसी-किसी आचार्य के मत से उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी और रेवती नक्षत्र में और चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र इन इन वारों में सीमन्तोन्नयन करना शुभ है।

तिथि, नक्षत्र, वार, योग और करण प्रत्येक दिन के प्रत्येक पञ्चाङ्ग में लिखे रहते हैं, अतः पञ्चाङ्ग देखकर प्रत्येक मुहूर्त्त निकाल लेना चाहिये।

सीमन्तोन्नयनमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	मृ० पु० मू० श्र० पुन० ह० उषा० उभा० उफा० रो० रे०
वार	गु० सू० म०
तिथि	१। २। ३। ५। ७। १०। ११। १३।

पुंसवनमुहूर्त

श्रवण, रोहिणी और पुष्य नक्षत्र मे शुभ ग्रहो के दिन में, गर्भाधान से तीसरे मास में, शुभ ग्रहों से दृष्ट, युत वा शुभग्रह संबंधी लग्न में और लग्न से आठवें स्थान में किसी ग्रह के न रहते, दोपहर के पूर्व पुंसवन करना चाहिये, इसमें सीमन्तोन्नयन के नक्षत्र भी लिये गये हैं।

पुंसवनमुहूर्त चक्र

नक्षत्र	श्र० रो० पु० उत्तम नक्षत्र है मृ० पुन० ह० रे० मू० उषा० उभा० उफा० मध्यम नक्षत्र हैं
वार	म० शु० सू० बृ०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३
लग्न	पुसञ्ज्ञक लग्न में, लग्न से १।४।५।७।९।१० इन स्थानो में शुभ ग्रह हों तथा चद्रमा १।६।८।१२ इन स्थानो मे न हो और पापग्रह ३।६।११ में हो

जातकर्म और नामकर्म का मुहूर्त

यदि किसी कारणवश जन्मकाल में जातकर्म नहीं किया गया तो हो तो अष्टमी. चतुर्दशी, अमावस्या, पौर्णमासी, सूर्यसंक्राति तथा चतुर्थी और नवमी छोड़कर अन्य तिथियो में, व्यतीपातादि दोषरहित शुभ ग्रहों के दिनो मे, जन्मकाल से ग्यारहवें या बारहवें दिन में, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिष नक्षत्र में जातकर्म और नामकर्म करने चाहिये। जैन मान्यता के अनुसार नामकर्म ४५ दिन तक किया जा सकता है।

जातकर्म और नामकर्म मुहूर्त चक्र

नक्षत्र	श० मृ० रे० चि० अनु० उषा० उभा० उफा० रो० ह० अश्वि० पु० अभि० स्वा० पुन० श्र० ध०
वार	सो० बु० बृ० शु०
तिथि	१।२।३।५।७।१०।११।१३।
शुभलग्न	२।५।८।११
लग्नशुद्धि	लग्न से १।५।७।९।१० इन स्थानों में शुभ ग्रह उत्तम हैं।३।६।११ इन स्थानों में पाप ग्रह शुभ हैं।८।१२ में कोई भी ग्रह नहीं होना चाहिये।

स्तनपान मुहूर्त

अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनु०, मूल, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा शतभिष, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन नक्षत्रों में शुभ वार और शुभ लग्न में स्तनपान करना शुभ है।

स्तनपानमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	अ० रो० पु० पुन० उफा० ह० चि० अनु० उषा० मू० ध० श० उभा० रे०
वार	शु० बु० सो० गु०

सूतिकास्नानमुहूर्त्त

रेवती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, हस्त, स्वाती, अश्विनी, और अनुराधा नक्षत्र में, रवि, मङ्गल और गुरु वार मे प्रसूता स्त्री का स्नान कराना शुभ है। आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, मघा, भरणी, विशाखा, कृत्तिका, मूल और चित्रा नक्षत्र में, बुध और शनिवार में अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी तिथि में प्रसूता स्त्री को स्नान नहीं करना चाहिये।

सूतिकास्नानमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	रे० उभा० उषा० उफा० रो० मू० ह० स्वा० अश्वि० अनु०
वार	सू० म० गु०
तिथि	१।२।३।५।७।१०।११।१३
लग्नशुद्धि	पञ्चम मे कोई ग्रह न हो १।४।७।१० में शुभग्रह हो

दोलारोहणमुहूर्त्त

रेवती, मृगशिर, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, तीनों उत्तरा और रोहिणी नक्षत्र में तथा चन्द्र, बुध, बृहस्पति और शुक्रवार में पहिले पहल बालक को पालने पर चढाना शुभ है।

दोलारोहणमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	रे० मृ० चि० अनु० ह० अश्वि० पु० अभि० उभा० उषा० उफा० रो०
वार	सो० बु० गु० शु०
तिथि	१।२।३।५।७।१०।११।१२।१३

भूम्युपवेशनमुहूर्त्त

मङ्गल के बली होने पर, नवमी, चौथ, चतुर्दशी को छोड़ कर अन्य तिथियों मे, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, ज्येष्ठा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र मे बालक को भूमि मे बैठाना चाहिये।

भूम्युपवेशनमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	उषा० उभा० उफा० रो० मृ० ज्ये० अनु० अश्वि० ह० पु० अभि०
वार	सो० बु० गु० शु०
तिथि	१।२।३।५।७।११।१२।१३

बालक को बाहर निकालने का मुहूर्त्त

अश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती नक्षत्र में, षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, प्रतिपदा, पूर्णिमा, अमावस्या और रिक्ता को छोड़ कर शेष तिथियों में बालक को घर से बाहर निकालना शुभ है।

शिशुनिष्क्रमणमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	अश्वि० मृ० पुन० पु० ह० अनु० श्र० ध० रे० और मतान्तर से उषा० उभा० उफा० श० मू० रो०
तिथि	२।५।७।१०।११।१३

अन्नप्राशन मुहूर्त्त

चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, अष्टमी, अमावस्या और द्वादशी तिथि को छोड़ कर अन्य तिथियो मे, जन्मराशि अथवा जन्मलग्न से आठवीं राशि, आठवाँ नवांश, मीन, मेष और वृश्चिक को छोड़ कर अन्य लग्न में, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य अभिजित, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिष नक्षत्र में छठवें मास से लेकर सम मास में अर्थात् छठवे, आठवे, दशवें इत्यादि मासो में बालकों का और पाँचवें मास से लेकर विषम मासों में, अर्थात् पाचवें, सातवे, नवें इत्यादि मासों मे कन्याओं का अन्नप्राशन शुभ होता है। परन्तु अन्नप्राशन शुक्लपक्ष मे दोपहर के पूर्व करना चाहिये।

अन्नप्राशन के लिये लग्नशुद्धि

लग्न से पहले, चौथे, सातवें और तीसरे स्थान में शुभ ग्रह हो, दशवें स्थान में कोई ग्रह न हो, तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में पापग्रह हों और लग्न, आठवे और छठवें स्थान को छोड़ अन्य स्थानो में चन्द्रमा स्थित हो ऐसी लग्न मे अन्नप्राशन शुभ होता है।

अन्नप्राशनमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	रो० उभा० उषा० उफा० रे० चि० अनु० ह० पु० अश्वि० अभि० पुन० स्वा० श्र० ध० श०
वार	सो० बु० बृ० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।१३।१५
लग्न	२।३।४।५।६।७।९।१०।११
लग्नशुद्धि	शुभग्रह १।४।७।९।५।३ में, पापग्रह ३।६।११ इन स्थानो में, चन्द्रमा ४।६।८।१२ इनमें न हो।

शिशुताम्बूलभक्षणमुहूर्त्त

मङ्गल और शनैश्चर को छोड़ कर अन्य दिनों में, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, मूल, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, स्वाती और धनिष्ठा नक्षत्र में मिथुन, मकर, कन्या, कुम्भ, वृष और मीन लग्न में चौथे, सातवें, दशवें, पाँचवें, नवें और लग्न स्थान में शुभ ग्रहों के रहते छठवें, ग्यारहवें और तीसरे स्थान में पापग्रहों के रहते बालक का ताम्बूल भक्षण शुभ होता है।

शिशु ताम्बूलभक्षणमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	उषा० उभा० उफा० रो० मृ० रे० चि० अनु० ह० अश्वि० पु० श्र० मू० पुन० ज्ये० स्वा० ध०
वार	बु० गु० शु० सो० सू०
लग्न	३।१०।६।११।२।१२
लग्नशुद्धि	शुभग्रह १।४।७।१०।५।९ मे, पापग्रह ३।६।११ में शुभ होते हैं।

कर्णवेधमुहूर्त्त

चैत्र, पौष, आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक, जन्ममास, रिक्ता तिथि (४।९।१४) सम वर्ष और जन्मतारा को छोड़कर जन्म से छठवें, सातवें, आठवें महीने में अथवा बारहवें या सोलहवें दिन, बुध, गुरु, शुक्र, सोमवार में और श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र में बालक का कर्णवेध शुभ होता है।

कर्णवेधमुहूर्त्तचक्र

नक्षत्र	श्र० ध० पुन० मृ० रे० चि० अनु० ह० अश्वि० पु०
वार	सो० बु० बृ० शु०
तिथि	१।२।३।५।६।७।१०।११।१२।१३।१५
लग्न	२।३।४।६।७।९।१२
लग्नशुद्धि	शुभग्रह १।३।४।५।७।९।१०।११ इन स्थानों में पाप ग्रह ३।६।११ इन स्थानों में शुभ होते हैं। अष्टम में कोई ग्रह न हो। यदि गुरु लग्न में हो तो विशेष उत्तम होता है।

चूडाकर्म (मुण्डन) का मुहूर्त्त

जन्म से तीसरे, पाँचवें, सातवें, इत्यादि विषम वर्षों में, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, षष्ठी, अमावस्या, पूर्णमासी और सूर्यसंक्रान्ति को छोड़ कर अन्य तिथियों में, चैत्र महीने को छोड़ उत्तरायण में बुध, चन्द्र, शुक्र और बृहस्पतिवार में शुभ ग्रहों के लग्न अथवा नवांश में, जिसका मुण्डन कराना

हो उसके जन्मलग्न अथवा जन्मराशि से आठवीं राशि को छोड़ कर अन्य ग्रहों के न रहते, ज्येष्ठा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र में, लग्न से तृतीय, एकादश और षष्ठ स्थान में पापग्रहों के रहते मुण्डन कराना शुभ है।

मुण्डनमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	ज्ये० मृ० रे० चि० ह० अश्वि० पु० अभि० स्वा० पुन० श्र० ध० श०
वार	सो० बु० बृ० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२
लग्न	२।३।४।६।७।९।१२
लग्नशुद्धि	शुभग्रह १।२।४।५।७।९।१० स्थानों में शुभ होते हैं, पापग्रह ३।६।११ में शुभ हैं। अष्टम में कोई ग्रह न हो।

अक्षरारम्भ मुहूर्त्त

जन्म से पाँचवें वर्ष में, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पञ्चमी और तृतीया तिथि में, उत्तरायण में, हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा और अनुराधा नक्षत्र में, मेष, मकर, तुला और कर्क को छोड़ कर अन्य लग्न में बालक को अक्षरारम्भ कराना शुभ है।

अक्षरारम्भमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	ह० अश्वि० पु० श्र० स्वा० रे० पुन० चि० अनु०
वार	सो० बु० शु० श०
तिथि	२।३।५।६।१०।११।१२
लग्न	२।३।६।१२ इन लग्नों में, परन्तु अष्टम में कोई ग्रह न हो

विद्यारम्भमुहूर्त्त

मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, अश्विनी, मूल, इन तीनों पूर्वा (पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाफाल्गुनी) पुष्य आश्लेषा, इन नक्षत्रों में रवि, गुरु, शुक्र इन वारों में, षष्ठी, पञ्चमी, तृतीया, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया इन तिथियों में और लग्न से नवमे, पांचवे, पहिले, चौथे, सातवें, दशवें स्थान में शुभ ग्रहों के रहने पर विद्यारम्भ कराना शुभ है। किसी-किसी आचार्य के मत से तीनों उत्तरा, रेवती, और अनुराधा में भी विद्यारम्भ शुभ कहा गया है।

विद्यारम्भमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	मृ० आ० पुन० ह० चि० स्वा० श्र० ध० श० अश्वि० मू० पूभा० पूषा० पूफा० पु० आश्ले०
वार	सू० गु० शु०
तिथि	५।६।३।११।१२।१०।२

यज्ञोपवीतमुहूर्त्त

हस्त, अश्विनी, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, आश्लेषा, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, मूल, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों पूर्वा और आर्द्रा नक्षत्र में रवि, बुध, शुक्र और सोमवार में, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, एकादशी, द्वादशी और दशमी में यज्ञोपवीत धारण करना शुभ है।

यज्ञोपवीतमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	ह० अश्वि० पु० उफा० उषा० उभा० रो० आश्ले० स्वा० पुन० श्र० ध० श० मू० रे० चि० अनु० पूफा० पूषा० पूभा० आ०
वार	सू० बु० शु० सो० गु०
तिथि	शुक्ल पक्ष में २।३।५।१०।११।१२। कृष्ण पक्ष में १।२।३।५।
लग्नशुद्धि	लग्नेश ६।८ स्थानो में न हो, शुभग्रह १।४।७।५।९।१० स्थानो में शुभ होते हैं, पापग्रह ३।६।११ में शुभ होते हैं, परन्तु १।४।८ में पापग्रह शुभ नहीं होते हैं।

वाग्दानमुहूर्त्त

उत्तराषाढ़ा, स्वाती, श्रवण, तीनों पूर्वा, अनुराधा, धनिष्ठा, कृत्तिका, रोहिणी, रेवती, मूल, मृगशिर, मघा, हस्त, उत्तराफाल्गुनि और उत्तराभाद्रपदनक्षत्र में वाग्दान करना शुभ है।

विवाहमुहूर्त्त

मूल, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, स्वाती, मघा, रोहिणी, इन नक्षत्रों में और ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, आषाढ़ इन महीनो में विवाह करना शुभ है। विवाह का सामान्य दिन पञ्चाङ्ग में लिखा रहता है। अतः पञ्चाङ्ग के दिन को लेकर उस दिन वर-कन्या के लिये यह विचार करना—कन्या के लिये गुरुबल, वर के लिये सूर्यबल, दोनों के लिये चन्द्रबल देख लेना चाहिये।

गुरुबलविचार

बृहस्पति कन्या की राशि से नवम, पंचम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ दशम, तृतीय, षष्ठम और प्रथम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, द्वादश राशि में अशुभ होता है।

सूर्यबलविचार

सूर्य वर की राशि से तृतीय, षष्ठम, दशम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ प्रथम, द्वितीय, पंचम, सप्तम, नवम, राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, द्वादश, राशि में अशुभ होता है।

चन्द्रबलविचार

चन्द्रमा वर और कन्या की राशि से तीसरा, छठवां, सातवां, दशवां, ग्यारहवां शुभ, पहिला, दूसरा, पाचवां, नौवां, दान देने से शुभ और चौथा, आठवां, बारहवां अशुभ होता है।

विवाह में अन्धादि लग्न

दिन में तुला और वृश्चिक राशि में तुला और मकर बधिर हैं तथा दिन में सिंह, मेष, वृष और रात्रि में कन्या, मिथुन, कर्क अंधसंज्ञक हैं। दिन में कुम्भ और रात्रि में मीन ये दो लग्न पङ्गु होते हैं। किसी-किसी आचार्य के मत से धन, तुला, वृश्चिक ये अपराह्न में बधिर हैं, मिथुन, कर्क, कन्या ये लग्न रात्रि में अन्धे हैं सिंह, मेष, वृष, लग्न दिन में अन्धे हैं और मकर, कुंभ, मीन ये लग्न प्रातःकाल तथा सायंकाल में कुबड़े होते हैं

अन्धादि लग्नों का फल

यदि विवाह बधिर लग्न में हो तो वर कन्या दरिद्र, दिवान्ध लग्न में हो तो कन्या विधवा, रात्र्यन्ध लग्न में हो तो संततिमरण और पङ्गु में हो तो धननाश होता है।

लग्नशुद्धि

लग्न से बारहवें शनि, दसवें मंगल, तीसरे शुक्र, लग्न में चन्द्रमा और क्रूर ग्रह अच्छे नहीं होते। लग्नेश और सौम्य ग्रह आठवें में अच्छे नहीं होते हैं और सातवें में कोई भी ग्रह शुभ नहीं होता है।

ग्रहों का बल

प्रथम, चौथे, पाचवें, नवें और दशवे स्थान में स्थित बृहस्पति सब दोषों को नष्ट करता है। सूर्य ग्यारहवें स्थान में स्थित तथा चन्द्रमा वर्गोत्तम लग्न में स्थित नवांश दोष को नष्ट करता है। बुध लग्न, चौथे, पाचवें, नवे और दसवें स्थान में हो तो सौ दोषों को दूर करता है। यदि शुक्र इन्हीं स्थानों में हो तो दो सौ दोषों को दूर करता है। यदि इन्हीं स्थानों में बृहस्पति स्थित हो तो एक लाख दोषों को नाश करता है। लग्न का स्वामी अथवा नवांश का स्वामी आदि लग्न, चौथे, दशवे, ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो अनेक दोषो को शीघ्र ही भस्म कर देता है।

वधूप्रवेशमुहूर्त्त

विवाह के दिन से १६ दिन के भीतर नव, सात, पाच दिन में वधूप्रवेश शुभ है। यदि किसी कारण से १६ दिन के भीतर वधूप्रवेश न हो तो विषम मास, विषम दिन और विषम वर्ष में वधूप्रवेश करना चाहिये।

तीनों उत्तरा (उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराषाढ़ा) रोहिणी, अश्विनी, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, रेवती, मृगशिर, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा और स्वाती नक्षत्र में, रिक्ता(४।९।१४) छोड़ शुभ तिथियों में और रवि, मंगल, बुध छोड़ शेष वारों में वधूप्रवेश करना शुभ है।

वधूप्रवेशमुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	उषा० उफा० उभा० रो० अश्वि० ह० पु० मृ० रे० चि० अनु० श्र० ध० मू० म० स्वा०
वार	सो० गु० शु० श०
तिथि	१।२।३।५।७।८।१०।११।१२।१३।१५
लग्न	२।३।५।६।८।९।११।१२

द्विरागमन मुहूर्त्त

विषम (१।३।५।७) वर्षों में कुंभ, वृश्चिक, मेष राशियों के सूर्य, में, गुरु, शुक्र, चन्द्र, इन वारों में, मिथुन, मीन, कन्या, तुला, वृष इन लग्नों में और अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरा-

भाद्रपद, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, पुनर्वसु, स्वाती, मूल, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, इन नक्षत्रों में द्विरागमन शुभ है।

द्विरागमनमुहूर्त्त चक्र

समय	१।३।५।७।९ इन वर्षों में कु० वृ० मे० के सूर्य में
नक्षत्र	अश्वि० पु० ह० उषा० उभा० उफा० रो० श्र० ध० श० पुन० स्वा० मू० मृ० रे० चि० अनु०
वार	बु० बृ० शु० सो०
तिथि	१।२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५
लग्न	२।३।६।७।१२
लग्नशुद्धि	लग्न से १।२।३।५।७।१०।११ स्थानों में शुभग्रह और ३।६।११ में पापग्रह शुभ होते हैं।

यात्रामुहूर्त्त

रेवती, श्रवण, हस्त, पुष्य, अश्विनी, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, अनुराधा, धनिष्ठा और मृगशिर नक्षत्र में यात्रा करना शुभ है।

सब दिशाओं में यात्रा के लिये नक्षत्र

हस्त, पुष्य, अश्विनी, अनुराधा ये नक्षत्र चारों दिशाओं की यात्रा में शुभ होते हैं। परन्तु मङ्गल, बुध और शुक्रवार को दक्षिण नहीं जाना चाहिये।

वार शूल और नक्षत्र शूल

ज्येष्ठा नक्षत्र, सोमवार और शनिवार को पूर्व, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र और गुरुवार को दक्षिण, शुक्रवार और रोहिणी नक्षत्र को पश्चिम और मंगल तथा बुधवार को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्तर दिशा को नहीं जाना चाहिये। यात्रा में चन्द्रमा का विचार अवश्य करना चाहिये। दिशाओं में चन्द्रमा का वास निम्न प्रकार से जानना चाहिये।

चन्द्रवासविचार

मेष, सिंह और धन राशि का चन्द्रमा पूर्व दिशा में; वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में; तुला, मिथुन और कुम्भ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में; कर्क, वृश्चिक और मीन का चन्द्रमा उत्तर दिशा में वास करता है।

चन्द्रफल

सम्मुख चन्द्रमा धन लाभ करने वाला, दक्षिण चन्द्रमा सुख सम्पत्ति देने वाला, पृष्ठ चन्द्रमा शोक ताप देने वाला और वाम चन्द्रमा धन नाश करने वाला होता है।

यात्रामुहूर्त्तचक्र

नक्षत्र	अश्वि० पुन० अनु० मृ० पु० रे० ह श्र० ध० ये उत्तम हैं। रो० उषा० उभा० उफा० पूषा० पूभा० ज्ये० मू० श० ये मध्यम हैं। भ० कृ० आ० आश्ले० म० चि० स्वा० वि० ये निन्द्य हैं।
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३।

चन्द्रवासचक्र

पूर्व	पश्चिम	दक्षिण	उत्तर
मेष	मिथुन	वृष	कर्क
सिंह	तुला	कन्या	वृश्चिक
धन	कुंभ	मकर	मीन

समयशूलचक्र

पूर्व	प्रातः काल
पश्चिम	सायंकाल
दक्षिण	मध्याह्नकाल
उत्तर	अर्धरात्रि

दिक्शूलचक्र

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
चं० श०	बृ०	सू० शु०	मं० बु०

योगिनीचक्र

पू०	आ०	द०	नै०	प०	वा०	उ०	ई०	दिशा
९।१	३।११	१३।५	१२।४	१४।६	१५।७	१०।२	३०।८	तिथि

गृहनिर्माणमुहूर्त्त

मृगशिर, पुष्य, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, हस्त, स्वाती, रोहिणी, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, इन नक्षत्रों में, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इन वारों में और द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी एकादशी, त्रयोदशी इन तिथियों में गृहारम्भ श्रेष्ठ होता है।

गृहारम्भमुहूर्त्तचक्र

नक्षत्र	मृ० पु० अनु० उफा० उभा० उषा० ध० श० चि० ह० स्वा० रो० रे०
वार	चं० बु० बृ० शु० श०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३।
मास	वै० श्रा० मा० पौ० फा०
लग्न	२।३।५।६।८।९।११।१२
लग्नशुद्धि	शुभग्रह लग्न से १।४।७।१०।५।९ इन स्थानों में एव पापग्रह ३।६।११। इन स्थानों में शुभ होते हैं। ८।१२ स्थान में कोई भी ग्रह नहीं होना चाहिये।

नूतनगृहप्रवेशमुहूर्त्त

उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती इन नक्षत्रों में, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि वारों में और द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी त्रयोदशी इन तिथियों में गृहप्रवेश करना शुभ है।

नूतनगृहप्रवेशमुहूर्त्तचक्र

नक्षत्र	उभा० उषा० उफा० रो० मृ० चि० अनु० रे०
वार	चं० बु० गु० शु० श०
तिथि	२।३।५।६।७।१०।११।१२।१३
लग्न	२।५।८।११ उत्तम हैं। ३।६।९।१२ मध्यम हैं।
लग्नशुद्धि	लग्न से १।२।३।५।७।९।१०।११ इन स्थानों में शुभग्रह शुभ होते हैं। ३।६।११ इन स्थानों में पापग्रह शुभ होते हैं। ४।८ इन स्थानों में कोई ग्रह नहीं होना चाहिये।

जीर्णगृहप्रवेशमुहूर्त्त

शतभिष, पुष्य, स्वाती, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपद, रोहिणी इन नक्षत्रों में चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इन वारों में और द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी इन तिथियों में जीर्णगृहप्रवेश करना शुभ है।

जीर्णगृहप्रवेशमुहूर्त्तचक्र

नक्षत्र	श० पु० स्वा० ध० च० मृ० अनु० रे० उभा० उफा० उषा० रो०
वार	च० बु० वृ० शु० श०
तिथि	२।३।५।६।१०।११।१२।१३
मास	का० मार्ग० श्रा० मा० फा० वै० ज्ये०

शान्तिक और पौष्टिक कार्य का मुहूर्त्त

अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, पुनर्वसु, स्वाती, अनुराधा, मघा इन नक्षत्रों में, रिक्ता (४।९।१४) अष्टमी, पूर्णमासी, अमावस्या इन तिथियों को छोड़ अन्य तिथियों में और रवि, मङ्गल, शनि इन वारों को छोड़ शेष वारों में शान्तिक और पौष्टिक कार्य करना शुभ है।

शान्तिक और पौष्टिक कार्य के मुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	अ० पु० ह० उषा० उफा० उभा० रो० रे० श्र० ध० श० पुन० स्वा० अनु० म०
वार	च० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३

कुँआ खुदवाने का मुहूर्त्त

हस्त, अनुराधा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, धनिष्ठा, शतभिष, मघा, रोहिणी, पुष्य, मृगशिर, पूर्वाषाढ़ा इन नक्षत्रों में, बुध, गुरु, शुक्र इन वारों में और रिक्ता (४।९।१४) छोड़ सभी तिथियों में शुभ होता है।

कुँआ बनवाने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	ह० अनु० रे० उफा० उषा० उभा० ध० श० म० रो० पु० मृ० पूषा०
वार	बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५

दुकान करने का मुहूर्त्त

रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, हस्त, पुष्य, चित्रा, रेवती, अनुराधा, मृगशिर, अश्विनी, इन नक्षत्रों मे तथा शुक्र, बुध, गुरु, सोम इन वारों में और रिक्ता, अमावस्या छोड़ शेष तिथियों में दुकान करना शुभ है।

दुकान करने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	रो० उषा० उभा० उफा० ह० पु० चि० रे० अनु० मृ० अश्वि०
वार	शु० बु० गु० सो०
तिथि	२।३।५।७।१०।१२।१३

बड़े-बड़े व्यापार करने का मुहूर्त्त

हस्त, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढा, चित्रा इन नक्षत्रों में, शुक्र, बुध, गुरु इन वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, त्रयोदशी, इन तिथियों में बड़े बड़े व्यापार सम्बन्धी कारोबार करना शुभ है।

बड़े-बड़े व्यापारिक कार्य करने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	ह० पु० उफा० उभा० उषा० चि०
वार	बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।११।१३

वस्त्र तथा आभूषण ग्रहण करने का मुहूर्त्त

रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, और पुनर्वसु नक्षत्र में, सोम, मंगल, शनि इन दिनों को छोड़ शेष दिनों में और रिक्ता को छोड़ शेष तिथियों में नवीन वस्त्र तथा आभूषण धारण करना शुभ है।

वस्त्र और भूषण धारण करने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	रे० उफा० उषा० उभा० रो० अश्वि० ह० चि० स्वा० वि० अनु० ध० पु० पुन०
वार	बु० गु० शु० र०
तिथि	२।३।५।७।८।१०।११।१२।१३।१५

जेवर बनवाने का मुहूर्त्त

रेवती, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, मृगशिर, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, चित्रा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी, स्वाती, रोहिणी और त्रिपुष्कर योग का नक्षत्र, तथा शुभ वारों में जेवर बनवाना शुभ है।

जेवर बनवाने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	रे० अश्वि० श्र० ध० श० मृ० पु० पुन० अनु० ह० चि० उफा० उषा० उभा० स्वा० रो०
वार	सो० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।८।१०।११।१२।१३।१५

नमक बनाने का मुहूर्त्त

भरणी, रोहणी, श्रवण इन नक्षत्रों मे शनिवार को नमक बनाना शुभ है।

नमक बनाने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	भ० रो० श्र० मतान्तर से अश्वि० पु० ह०
वार	श० मतान्तरसे र० म० बु०
तिथि	१।२।३।४।५।७।८।९।१०।११।१३

राजा या मन्त्री से मिलने का मुहूर्त्त

श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिर, पुष्य, अनुराधा, रोहिणी, रेवती, अश्विनी, चित्रा, स्वाती इन नक्षत्रों में और रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र इन वारों में राजा या मन्त्री से मिलना शुभ है।

राजा से मिलने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	श्र० ध० उषा० उभा० उफा० मृ० पु० अनु० रो० रे० अश्वि० चि० स्वा०
वार	र० सो० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।११।१३

बगीचा लगाने का मुहूर्त्त

शतभिष, विशाखा, मूल, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य इन नक्षत्रो में तथा शुक्र, सोम, बुध, गुरु इन वारो में बगीचा लगाना शुभ है।

बगीचा लगाने के मुहूर्त्त का चक्र

मास	वै० श्रा० मार्ग० का० फा०
नक्षत्र	श० वि० मू० रे० चि० अनु० मृ० उषा० उभा० उफा० रो० ह० अश्वि० पु०
वार	सो० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५

हथियार बनाने का मुहूर्त्त

कृत्तिका, विशाखा, इन नक्षत्रों में तथा मंगल, रवि, शनि इन वारों में और शुभ ग्रहों के लग्नों में शस्त्र निर्माण करना शुभ होता है।

हथियार बनाने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	कृ० वि०
वार	मं० र० श०

हथियार धारण करने का मुहूर्त्त

पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, रोहिणी, मृगशिर, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढा, रेवती, अश्विनी इन नक्षत्रों में; रवि, शुक्र, गुरु, इन वारों में और रिक्ता (४।९।१४) छोड़ शेष तिथियों में हथियार धारण करना शुभ है।

हथियार धारण करने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	पुन० पु० ह० चि० रो० मृ० वि० अनु० ज्ये० उफा० उषा० उभा० रे० अश्वि०
वार	र० शु० गु०
तिथि	२।३।५।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१५

रोगमुक्त होने पर स्नान कराने का मुहूर्त्त

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, पुनर्वसु, स्वाती, मघा, रेवती इन नक्षत्रों को छोड़ शेष नक्षत्रों में रवि, मंगल, गुरु इन वारों में और रिक्तादि तिथियों में रोगी को स्नान करना शुभ है।

रोगी को स्नान कराने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	अ० भ० कृ० मृ० आ० पु० पुन० पूफा० पूभा० पूषा० श्र० ध० श० ह० चि० वि० अनु० ज्ये० मू०
वार	र० मं० गु०
तिथि	४।९।१४।३।५।७।१०।११
लग्न	१।४।७।१०
लग्नशुद्धि	चंद्रमा निर्बल हो ।१।४।७।१०।९।५।२ इन स्थानों में पापग्रह हो।

कारीगरी सीखने का मुहूर्त्त

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, इन नक्षत्रों में शुभ वार और शुभ तिथियों में कारीगरी सीखना शुभ होता है।

कारीगरी सीखने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	उफा० उभा० उषा० रो० स्वा० पुन० श्र० ध० श० ह० अश्वि० पु० अभि० मृ० रे० चि० अनु०
वार	सो० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।८।१०।१२।१३।१५

पुल बनाने का मुहूर्त्त

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, स्वाती, मृगशिर इन नक्षत्रों में, गुरु, शनि, रवि इन वारों में और स्थिर लग्नों में पुल बनाना शुभ है।

पुल बनाने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	उफा० उषा० उभा० रो० स्वा० मृ०
वार	गु० श० र०
तिथि	शुक्लपक्ष मे २।३।५।७।१०।११।१३
लग्न	२।५।८।११

खटिया बनवाने का मुहूर्त्त

रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, अश्विनी इन नक्षत्रों में शुभ वार और शुभ योग के होने पर खटिया बनाना शुभ होता है।

खटिया निर्माण मुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	रो० उषा० उभा० उफा० ह० पु० पुन० अनु० अश्वि०
वार	सो० बु० गु० शु० मतान्तर से र०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३

कर्ज लेने का मुहूर्त्त

स्वाती, पुनर्वसु, विशाखा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, अश्विनी, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा इन नक्षत्रों में ऋण लेना शुभ है। हस्त नक्षत्र, वृद्धियोग रविवार इनका त्याग अवश्य करना चाहिये।

ऋण लेने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	स्वा० पुन० चि० पु० श्र० ध० श० अश्वि० मृ० रे० चि० अनु०
वार	सो० गु० शु० बु०
तिथि	।२।३।४। ।७।९।१०।११।१२।१३।१५
लग्न	१।४।७।१०
लग्न शुद्धि	५।८।९ इन स्थानों में ग्रह अवश्य हो

वर्षारम्भ में हल चलाने का मुहूर्त्त

मूल, विशाखा, मघा, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित इन नक्षत्रों मे हल हल चलाना शुभ है

हल चलाने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	मू० वि० म० स्वा० पुन० श्र० ध० श० उफा० उभा० उषा० रो० मृ० रे० चि० अनु० ह० अश्वि० पु० अभि०
वार	सो० म० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५
लग्न	२।३।६।८।९।१२

बीज बोने का मुहूर्त्त

मूल, मघा, स्वाती, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य इन नक्षत्रों में बीज बोना शुभ है ।

बीज बोने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	मू० म० स्वा० ध० उफा० उभा० उषा० रो० मृ० रे० चि० अनु० ह० अश्वि० पु०
वार	सो० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५

फसल काटने का मुहूर्त्त

पूर्वाभाद्रपद, हस्त, कृत्तिका, धनिष्ठा, श्रवण, मृगशिर, स्वाती, मघा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, भरणी, चित्रा, पुष्य, मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, इन नक्षत्रों में सोम, बुध, गुरु, शुक्र, रवि इन वारों में, स्थिर लग्नों में तथा शुभ तिथियों में फसल काटना शुभ है ।

फसल काटने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	पूफा० ह० कृ० ध० श्र० मृ० स्वा० म० उफा० उभा० उषा० पूषा० भ० चि० पु० मू० ज्ये० आ० आश्ले० ।
वार	र० सो० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।६।८।१०।११।१२।१३,१५
लग्न	२।५।८।११

नौकरी करने का मुहूर्त्त

हस्त, चित्रा, अनुराधा, रेवती, अश्विनी, मृगशिर, पुष्य इन नक्षत्रो में बुध, गुरु, शुक्र, रवि इन वारों में और शुभ तिथियो में नौकरी करना शुभ है ।

नौकरी करने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	ह० चि० अनु० रे० अश्वि० मृ० पु०
वार	बु० गु० शु० र०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३

मुकद्दमा दायर करने का मुहूर्त्त

ज्येष्ठा, आर्द्रा, भरणी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद पूर्वाफाल्गुनी, मूल, आश्लेषा, मघा इन नक्षत्रों में, तृतीया, अष्टमी,त्रयोदशी, पञ्चमी, दशमी, पूर्णमासी इन तिथियो में और रवि, बुध, गुरु, शुक्र इन वारों में मुकद्दमा दायर करना शुभ है ।

मुकद्दमा दायर करने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	ज्ये० आ० भ० पूषा० पूभा० पूफा० मू० आश्ले० म०
वार	र० बु० गु० शु०
तिथि	३।५।८।१०।१३ १५
लग्न	३।६।७।८।११
लग्नशुद्धि	सूर्य, बुध, गुरु,शुक्र, चन्द्र, ये ग्रह १।४।७।१० इन स्थानों में और पापग्रह ३।६।११ इन स्थानों में शुभ होते हैं; परन्तु अष्टम में कोई ग्रह नहीं होना चाहिये ।

जूता पहनने का मुहूर्त्त

चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, अनुराधा, ज्येष्ठा, आश्लेषा, मघा, मृगशिर, विशाखा, कृत्तिका, मूल, रेवती इन नक्षत्रों में और बुध, शनि, रवि, इन वारो में जूता पहनना शुभ होता है ।

जूता पहनने के मुहूर्त का चक्र

नक्षत्र	चि० उ०फा० पूषा० पूभा० अनु० ज्ये० आश्ले० म० मृ० वि० कृ० मू० रे०
वार	बु० श० र०

औषध बनाने का मुहूर्त

हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, मूल, पुनर्वसु, स्वाती, मृगशिर, चित्रा, रेवती, अनुराधा इन नक्षत्रों में और रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र, इन वारों में औषध निर्माण करना शुभ है।

औषध बनाने के मुहूर्त का चक्र

नक्षत्र	ह० अश्वि० पु० श्र० ध० श० मू० पुन० स्वा० मृ० चि० रे० अनु०
वार	र० सो० बु० गु० शु०
तिथि	२।५।७।८।१०।११।१३।१५
लग्न	१।२।४।५।७।८।१०।११

मंत्रसिद्ध करने का मुहूर्त

उत्तराफाल्गुनी, हस्त, अश्विनी, श्रवण, विशाखा, मृगशिर इन नक्षत्रों में रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र इन वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी पूर्णिमा इन तिथियों में मंत्र सिद्ध करना शुभ होता है।

मंत्र सिद्ध करने के मुहूर्त का चक्र

नक्षत्र	उफा० ह० अश्वि० श्र० वि० मृ०
वार	र० सो० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३।१५

सर्वारंभ मुहूर्त

लग्न से बारहवाँ और आठवाँ स्थान शुद्ध हो अर्थात् कोई ग्रह नहीं हो तथा जन्म लग्न व जन्म राशि से तीसरा, छठवाँ, दशवाँ, ग्यारहवाँ, लग्न हो और शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा शुभ ग्रह युक्त हो, चन्द्रमा जन्म लग्न व जन्म राशि से तीसरे, छठवें, दशवें ग्यारहवे स्थान में हो तो सभी कार्य प्रारम्भ करना शुभ होता है।

मन्दिर निर्माण का मुहूर्त

मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढा, पूर्वाफाल्गुनी, भरणी, मघा इन नक्षत्रों में तथा मंगल और बुधवार को मन्दिर के लिये नींव खुदवाना शुभ है। नींव खुदवाते समय राहु[1] के मुख का त्याग करना आवश्यक है अर्थात् राहु के पृष्ठभाग से नींव खुदवाना चाहिये।

१ राहु की दिशा का ज्ञान—धनु, वृश्चिक, मकर के सूर्य में पूर्व दिशा में, कुम्भ, मीन, मेष के सूर्य में दक्षिण दिशा में, वृष, मिथुन, कर्क के सूर्य मे पश्चिम दिशा मे एवं सिंह, कन्या, तुला के सूर्य मे उत्तर दिशा में राहु का मुख रहता है। सूर्य की राशि पंचांग में लिखी रहती है।

पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, मृगशिर, श्रवण, अश्विनी, चित्रा, विशाखा, आर्द्रा, हस्त, रोहिणी और धनिष्ठा इन नक्षत्रों में, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, त्रयोदशी, इन तिथियों में एव रवि, सोम, बुध, गुरु और शुक्र इन वारों में नींव भरना तथा जिनालय निर्माण का कुल कार्य आरम्भ करना श्रेष्ठ है।

प्रतिमा निर्माण के लिये मुहूर्त

पुष्य, रोहिणी, श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, हस्त, मृगशिर, रेवती और अनुराधा इन नक्षत्रों में, सोम, गुरु, शुक्र और बुध इन वारों में एव द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी इन तिथियों में प्रतिमा बनवाना शुभ है।

प्रतिष्ठा का मुहूर्त

अश्विनी, मृगशिर, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा और स्वाति इन नक्षत्रों मे, सोम, बुध, गुरु और शुक्र इन वारों में एव कृष्ण-पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया और पंचमी तथा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, पचमी, दशमी, त्रयोदशी और पूर्णिमा इन तिथियों मे प्रतिष्ठा करना शुभ है। प्रतिष्ठा के लिये वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ ये लग्न श्रेष्ठ हैं। लग्न स्थान से अष्टम में पापग्रह अनिष्टकारक होते हैं। प्रतिष्ठा करने वाले की राशि से चन्द्रमा की राशि प्रतिष्ठा के दिन १।४।८।१२ वीं न हो तथा प्रतिष्ठा की लग्न भी उस राशि से ८ वीं न हो।

होमाहुति का मुहूर्त

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर अभीष्ट तिथि तक गिनने से जितनी सख्या हो, उसमे एक और जोडे। फिर रविवार से लेकर इष्टवार तक गिनने से जितनी संख्या हो उसको भी उसी में जोडे। जो सख्या आवे उसमे चार का भाग दे। यदि तीन या शून्य शेष रहे तो अग्नि का वास पृथ्वी में होता है, यह होम करने वाले के लिये उत्तम होता है। और यदि एक शेष रहे तो अग्नि का वास आकाश में होता है, इसका फल प्राणों को नाश करने वाला कहा गया है। दो शेष मे अग्नि का वास पाताल में होता है, इसका फल अर्थ नाशक बताया गया है। इस प्रकार अग्नि वास देखकर होम करना चाहिये।
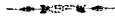
परिशिष्ट नं० २

जन्मपत्री बनाने की विधि

जन्मपत्री का सारा गणित इष्टकाल पर चलता है, अतः पहले इष्टकाल बनाने के नियम दिये जाते हैं।

सूर्योदय से लेकर जन्मसमय तक के काल को इष्टकाल कहते हैं। इसके बनाने के लिये निम्न पाँच नियम हैं–

१–सूर्योदय से लेकर १२ बजे दिन के भीतर का जन्म हो तो जन्मसमय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना ($२\frac{१}{२}$) करने से घट्यादिरूप इष्टकाल होता है।

उदाहरण–वि० स० २००३ फाल्गुन सुदी ७ गुरुवार को प्रातः काल ९।३० पर किसी का जन्म हुआ है। इस नियम के अनुसार इष्टकाल बनाया तो—

९ । ३० जन्म समय में से
६ । १६ सूर्योदय—पञ्चाग में लिखा है
३ । १४ इसे ढाई गुना किया तो

$३ + \frac{१४}{६०} = \frac{१९४}{६०}; \frac{१९४}{६०} \times \frac{५}{२} = \frac{९७}{१२} = ८ \frac{१}{१२} \times \frac{६०}{१} = ८।५$ अर्थात् ८ घटी ५ पल इष्टकाल हुआ।

२—१२ बजे दिन से लेकर सूर्यास्त के अन्दर का जन्म हो तो जन्म समय और सूर्यास्तकाल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर दिनमान में घटा देने से इष्टकाल होता है।

उदाहरण—वि० सं० २००३ फाल्गुनसुदी ७ गुरुवार को २।३० दिन का जन्म है।

अतः ५ । ४४ सूर्यास्त में से
२ । ३० जन्मसमय को घटाया
३ । १४ इसका सजातीय रूप $३ + \frac{१४}{६०} = \frac{१९४}{६०} \times \frac{५}{२} = \frac{९७}{१२} = ८।५$ हुआ।
२८ । ३८ दिनमान में
८ । ५ आगत फल को घटाया
२० । ३३ अर्थात् २० घटी ३३ पल इष्टकाल हुआ।

३—सूर्यास्त से लेकर १२ बजे रात के भीतर का जन्म हो तो जन्मसमय और सूर्यास्त काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर दिनमान में जोड़ देने से इष्टकाल होता है। उदाहरण वि० सं० २००३ फाल्गुनसुदी ७ गुरुवार को रात के १० बज कर ३० मिनट पर जन्म हुआ है।

अतः १० । ३० जन्म समय में से
५ । ४४ सूर्यास्त को घटाया
४ । ४६ इसका सजातीय रूप किया तो $४ + \frac{४६}{६०} = \frac{१४३}{३०} \times \frac{५}{२} = \frac{१४३}{१२} = ११।५५$ अर्थात् ११ घटी ५५ पल
२८ । ३८ दिनमान में
११ । ५५ आगत फल को जोड़ा
४० । ३३ इष्टकाल हुआ।

४—रात के १२ बजे के बाद और सूर्योदय के पहले का जन्म हो तो जन्मसमय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर ६० घटी में घटाने से इष्टकाल होता है। उदाहरण—सं० २००३ फाल्गुन सुदी ७ गुरुवार को रात के ४।३० पर जन्म हुआ है।

अत: ६ । १६ सूर्योदय काल में से
४ । ३० जन्म समय को घटाया
१ । ४६ इसका सजातीय रूप किया $१ + \frac{४६}{६०} = \frac{५३}{३०} \times \frac{५}{२} = \frac{५३}{१२}$ = ४।२५
६० । ० में से
४ । २५ आगत फल को घटाया
५५ । ३५ इष्टकाल हुआ।

५—सूर्योदय से लेकर जन्मसमय तक जितना घंटा, मिनटात्मक काल हो, उसे ढाई गुना ($२\frac{१}{२}$) कर देने पर इष्टकाल होता है।

उदाहरण—सं० २००३ फाल्गुन सुदी ७ गुरुवार को दोपहर के ४।४८ पर जन्म हुआ है। अत: सूर्योदय से लेकर जन्म समय तक १० घंटा ४२ मिनट हुआ, इसका ढाई गुना किया तो २६ घटी ४५ पल इष्टकाल हुआ।

विशेष—विश्वपञ्चांग से या लेखक की "भारतीय ज्योतिष" नामक पुस्तक के आधार से देशान्तर और वेलान्तर संस्कार कर इष्ट स्थानीय इष्टकाल बना लेना चाहिये। जो उपर्युक्त क्रियाओं को नहीं कर सकते हैं, उन्हें पहलेवाले नियमों के आधार पर से इष्टकाल बना लेना चाहिये, किन्तु यह इष्टकाल स्थूल होगा।

भयात और भभोग साधन

यदि इष्टकाल से जन्म नक्षत्र के घटी, पल कम हो तो जन्मनक्षत्र गत और आगामी नक्षत्र जन्मनक्षत्र कहलाता है तथा जन्मनक्षत्र के घटी, पल इष्टकाल के घटी, पलों से अधिक हो तो जन्मनक्षत्र के पहले का नक्षत्र गत और जन्मनक्षत्र ही वर्तमान या जन्मनक्षत्र कहलाता है। गत नक्षत्र के घटी, पलों को ६० में से घटाकर जो आवे उसे दो जगह रखना चाहिये, एक स्थान पर इष्टकाल को जोड़ देने से भयात और दूसरे स्थान पर जन्म नक्षत्र को जोड़ देने पर भभोग होता है।

उदाहरण—इष्टकाल ५५।३५ है, जन्मनक्षत्र कृत्तिका ५१।५ है। यहाँ इष्टकाल के घटी, पल, कृत्तिका जन्मनक्षत्र के घटी, पलों से अधिक हैं, अत: कृत्तिका गत और रोहिणी जन्म नक्षत्र कहलायेगा।

६०।०
५१।५ गत नक्षत्र को घटाया
८।५५ इसे दो स्थानों में रखा

८।५५।
५५।३५ इष्टकाल जोड़ा
४।३० भयात [यहाँ ६० का भाग देकर शेष ग्रहण किया है]

८।५५
५६।२५ रोहिणी नक्षत्र जोड़ा
६५।२० भभोग रोहिणी

भभोग ६६ घटी तक आ सकता है, इससे अधिक होने पर ६० का भाग देकर लब्ध छोड़ दिया जायगा कहीं कहीं भयात में ६३-६४ घटी तक ग्रहण किया जाता है।

जन्मनक्षत्र का चरण निकालने की विधि

भभोग में ४ का भाग देने से एक चरण के घटी, पल आते हैं। इन घटी पलों का भयात में भाग देने से जन्मनक्षत्र का चरण आता है।

उदाहरण—६५।२० भभोग में ÷ ४ = १६।२० एक चरण के घटी पल। ४।३० भयात में ÷ १६।२० यहाँ भाग नहीं गया, अतः प्रथम चरण माना जायगा। इसलिये रोहिणी के नक्षत्र के प्रथम चरण का जन्म है। शतपदचक्र में रोहिणी नक्षत्र के चारों चरण के अक्षर दिये हैं, इस बालक का नाम उनमें से प्रथम अक्षर पर माना जायगा, अतः 'ओ' अक्षर राशि का नाम होगा।

जन्मलग्न निकालने की सुगम विधि

जिस दिन का लग्न बनाना हो उस दिन के सूर्य के राशि और अंश पञ्चाङ्ग में देखकर लिख लेने चाहिये। आगे दी गई लग्नसारणी में राशि का कोष्ठक बाईं ओर तथा अंश का कोष्ठक ऊपरी भाग में है। सूर्य के जो राशि, अंश लिखे हैं उनका फल लग्नसारणी में—सूर्य की राशि के सामने और अंश के नीचे जो अंक संख्या मिले उसे इष्टकाल में जोड़ दे, वही योग या इसके लगभग सारणी के जिस कोष्ठक में हो उसके बाईं ओर राशि का अंक और ऊपर अंश का अंक होगा। ये लग्न के राशि, अंश आयेंगे। त्रैराशिक द्वारा कला, विकला का प्रमाण भी निकाला जा सकता है।

उदाहरण—सं० २००३ फाल्गुन सुदी ७ गुरुवार को २३।१३ इष्टकाल का लग्न निकालना है। इस दिन सूर्य १० राशि १५ अंश १७ कला ३० विकला लिखा है। लग्न सारणी में १० राशि के सामने और १५ अंश के नीचे ५७।१७।१७ अंक मिले। इन अंकों को इष्टकाल में जोड़ दिया।

५७।१७।१७ सारिणी के अंकों में

२३।१३।० इष्टकाल जोड़ा

———

२०।३०।१७ अन्तिम संख्या में ६० का भाग देने पर जो लब्ध आता है उसे छोड़ देते हैं।

इस योग को पुनः लग्नसारणी में देखा तो उक्त योगफल कहीं नहीं मिला, किन्तु इसके आसन्न २०।२६।२ अंक ३ राशि के सामने और १६ अंश के नीचे मिले, अतः लग्न ३।१६ माना जायगा।

लग्नसारणी

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
	२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६
मे०	५०	५७	५	१३	२०	२८	३६	४४	५२	५९	७	१५	२३	३१	३९	४७	५५	४	१२	२०	२९	३७	४५	५४	२	११	१९	२८	३७	४६
	९	४७	२५	५	४८	३२	१८	६	०	४८	४२	३९	४७	३९	४१	४९	५७	९	२३	३९	१	२१	५८	३५	४६	२०	५८	३८	२२	९
	६	७	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११
वृ० १	५४	३	१२	२१	३०	३९	४९	५८	७	१७	२६	३५	४५	५४	४	१४	२४	३३	४३	५३	३	४३	१३	३४	४४	५४	४	१५	२५	३६
	५९	५२	४९	४७	५२	५९	११	२४	४०	१	२५	४३	२४	५९	३७	१९	४	५३	४६	४२	४३	४५	५१	०	१४	३०	४९	१३	३९	९
	११	११	१२	१२	१२	१२	१२	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१४	१४	१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१७
मि० २	४६	५७	७	१८	२९	४०	५१	१	१२	२३	३४	४५	५६	८	१९	३०	४१	५२	४	१५	२६	३८	४९	०	१२	२३	३५	४६	५८	९
	४१	१६	५५	३७	४२	९	१९	५१	४७	४५	४५	४८	५२	०	९	२०	३२	४९	५	२४	४४	६	२९	५३	१७	४५	१३	४२	११	४२
	१७	१७	१७	१७	१८	१८	१८	१८	१८	१९	१९	१९	१९	१९	२०	२०	२०	२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२
क० ३	२१	३२	४४	५५	७	१८	३०	४२	५३	५	१६	२८	३९	५१	२	१४	२६	३७	४९	०	१२	२३	३५	४६	५८	९	२०	३२	४३	५५
	१३	४४	१६	४९	२२	५६	२९	३	३८	११	४४	२०	५२	२५	५८	३०	३	३७	६	३७	८	३७	१७	३५	४	३०	५६	२२	४७	११
	२३	२३	२३	२३	२३	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२५	२५	२५	२५	२५	२६	२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८
सिं० ४	६	१७	२९	४०	५१	३	१४	२५	३७	४८	५९	१०	२२	३३	४४	५५	७	१८	२९	४०	५१	२	१३	२४	३६	४७	५८	९	२०	३१
	३४	५७	२७	३९	५९	१९	३९	५५	१२	२८	४४	५८	१२	२५	३८	४९	०	१०	२५	३६	४९	५१	५३	५९	६	१२	१७	२२	२७	३२
	२८	२८	२९	२९	२९	२९	२९	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३१	३१	३१	३१	३१	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३३	३३	३३	३३	३३	३४
क० ५	४२	५३	४	१५	२६	३७	४८	०	११	२२	३३	४४	५५	६	१७	२८	३९	५०	१	१२	२३	३५	४६	५७	९	१९	३०	४१	५२	४
	३६	४०	४६	४७	५०	५९	५७	०	५३	१	८	१३	४	२०	२४	२८	३३	३७	४३	४८	५४	०	७	१९	१०	२६	३५	४९	५९	११
	३४	३४	३४	३४	३५	३५	३५	३५	३५	३५	३६	३६	३६	३६	३६	३७	३७	३७	३७	३७	३८	३८	३८	३८	३८	३८	३९	३९	३९	३९
तु० ६	१५	२६	३७	४९	०	११	२२	३४	४५	५६	८	१९	३०	४२	५३	४	१६	२७	३९	५०	१	१३	२४	३६	४७	५९	१०	२२	३३	४५
	२२	३४	४८	२	१६	३१	४६	५	४१	२१	६	२०	३३	३	२५	४९	१३	३८	३	३०	५६	२५	४३	२३	५२	२३	५४	२५	५७	२९
	३९	४०	४०	४०	४०	४०	४१	४१	४१	४१	४१	४२	४२	४२	४२	४२	४३	४३	४३	४३	४३	४३	४४	४४	४४	४४	४४	४५	४५	४५
वृ० ७	५७	८	२०	३१	४३	५४	६	१७	२९	४१	५२	४	१५	२७	३८	५०	१	१३	२४	३६	४७	५९	१०	२१	३३	४४	५५	७	१८	२९
	२	३५	८	४०	१६	४९	२२	५६	३१	४	३८	११	४३	१६	४७	१८	४९	१८	४७	१५	४३	७	३१	५४	१६	३६	५४	१३	३६	३९
	४५	४५	४६	४६	४६	४६	४६	४६	४७	४७	४७	४७	४७	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४९	४९	४९	४९	४९	४९	५०	५०	५०	५०	५०
ध० ८	४०	५२	३	१४	२५	३६	४७	५८	८	१९	३०	४१	५२	२	१३	२३	३४	४४	५५	५	१५	२५	३६	४६	५६	६	१६	२६	३५	४५
	५१	०	७	१२	१५	१५	१३	८	४१	५१	१८	२३	४	४४	१९	५१	२१	४७	१०	२९	४६	५९	९	१५	१७	१८	१४	६	५५	४१
	५०	५१	५१	५१	५१	५१	५१	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५५	५५
म० ९	५५	५	१४	२४	३३	४२	५२	१	१०	२०	२९	३८	४७	५६	५	१३	२२	३१	४०	४८	५७	५	१४	२२	३०	३९	४७	५५	४	१२
	२२	१	३६	१७	३५	५९	१९	३६	४९	१	८	१३	११	८	१	५१	३८	२२	२	३९	१४	४५	२	३८	५९	२०	३७	५१	३	५१
	५५	५५	५५	५५	५५	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५९
कु० १०	२०	२८	३६	४४	५२	०	७	१५	२३	३१	३९	४६	५४	२	९	१७	२४	३२	३९	४८	५५	२	९	१७	२४	३२	३९	४६	५४	१
	१७	२१	१३	२१	१८	१२	५३	५४	४२	२८	१२	५४	३४	१३	५०	१७	४९	३२	५८	२८	४९	३३	५४	१९	४४	७	२४	५१	२	३२
	५९	५९	५९	५९	५९	५९	५९	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२
मी० ११	८	१६	२३	३०	३८	४५	५२	०	७	१४	२१	२९	३६	४३	५१	५८	५	१३	२०	२७	३५	४२	५०	५७	४	११	२०	२७	३५	४२
	५२	११	१७	४८	६	१९	४२	०	१८	४०	५४	१२	४३	४९	८	२८	५८	९	३१	५३	१६	४०	५	२७	११	३२	२	२८	०	३४

जन्मपत्री लिखने की विधि

श्रीमानस्मानवतु भगवान् पार्श्वनाथः प्रियं वो
श्रेयो लक्ष्म्या क्षितिपतिगणैः सादरं स्तूयमानः ।
भर्तुर्यस्य स्मरणकरणात्तेऽपि सर्वे विवस्वन्,
मुख्याः खेटा ददतु कुशलं सर्वदा देहभाजाम् ॥
आदित्याद्या ग्रहास्सर्वे सनक्षत्राः सराशयः ।
सर्वान् कामान् प्रयच्छन्तु यस्यैषा जन्मपत्रिका ॥

अथ श्रीमन्नृपतिविक्रमार्कराज्यात् २००३ शुभसंवत्सरे शालिवाहनशाके १८६८ श्रीवीरनिर्वाण २४७३ संवत्सरे मासानां मासोत्तमे मासे शुभे फाल्गुनमासे शुक्लपक्षे सप्तम्यां तिथौ गुरुवासरे[1] विश्वपञ्चाङ्गानुसारेण घट्यादयः ४७।३९ कृत्तिकानामनक्षत्रे घट्यादयः ५१।५ ऐन्द्रनामयोगे घट्यादयः १५।५६ पूर्वदले गरनामकरणे घट्यादयः २०।१ परदले बवनाम करणे घट्यादयः ४७।३९ अत्र सूर्योदयादिष्ट[2] घट्यादयः २३।१३ कुम्भार्क-गतांशाः[3] १५, भोग्यांशाः १४ एव पुण्यतिथौ पञ्चाङ्गशुद्धौ शुभग्रहनिरीक्षितकल्याणवत्यां वेलायां इन्दौरनगरे दिनप्रमाण घट्यादयः २८।४३ रात्रिप्रमाण घट्यादयः ३१।१७ उभयप्रमाण ६०।०...... ...वंशोद्भवायां ... जैनाम्नाये..........गोत्रे श्रीमान्..........तत्पुत्रः श्रीमान्..........तत्पुत्रः श्री.........अस्य पाणिगृहीतिभार्यायां दक्षिणकुक्षौ पुत्ररत्नमजीजनत् । अत्रावकहोडाचक्रानुसारेण भयातः[4] घट्यादयः ४।३०, भभोगः घट्यादयः, ६५।२० तेन रोहिणीनक्षत्रस्य प्रथमचरणे ओकाराक्षरे जातत्वात् ओछेलाल इति राशिनाम प्रतिष्ठित स च जिनधर्मप्रसादाद्दीर्घायुर्भवतु । अत्र लग्नमानं ३।१६ कर्कलग्ने जन्म —

जन्मकुण्डलीचक्रम्
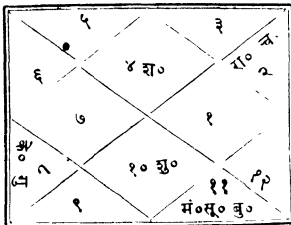
चन्द्रकुण्डलीचक्रम्
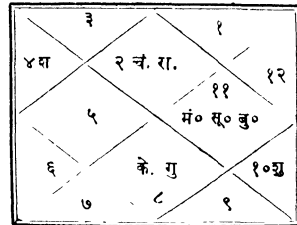
विवेचन–जन्मकुण्डली चक्र लिखने की पद्धति यह है कि जो लग्न आता है उसे पहले रख कर उससे आगे गणना कर १२ कोठों में १२ राशियों को रख देना चाहिये तथा पञ्चाङ्ग में जो जो ग्रह जिस जिस राशि के हों उन्हें उस उस राशि में रख देने पर जन्मकुण्डली चक्र बन जाता है । चन्द्रकुण्डली की विधि यह है कि चन्द्रमा की राशि को लग्न स्थान में स्थापित कर क्रमशः १२ राशियों को लिख देना चाहिये, फिर जो जो ग्रह जिस जिस राशि के हों उन्हें उस उस राशि में स्थापित कर देने पर चन्द्रकुण्डली चक्र बन जाता है ।

---

१ जिस पञ्चाङ्ग के घटी, पल लिखते हो, उसका नाम दे देना चाहिये । प्रत्येक दिन के तिथ्यादि के घटी, पल प्रत्येक पंचांग में लिखे रहते हैं । २ जितना जन्मसमय का इष्टकाल आया हो, वह लिखना है । ३ जन्मदिन के सूर्य के अंश गत, और उन्हें २९ में से घटाने पर भोग्यांश आते हैं । ४ जो पहले भयात आया है, उसी को लिखना ।

जन्मकुण्डली और चन्द्रकुण्डली चक्र के बनाने के पश्चात् 'चमत्कारचिन्तामणि'[1] या मानसागरी से नौ ग्रहों का फल लिखना चाहिये। फल लिखने की विधि यह है कि जो ग्रह जिस जिस स्थान में हों, उसका फल उस उस स्थान के अनुसार लिख देना चाहिये। जैसे प्रस्तुत उदाहरण कुण्डली में सूर्य लग्न से आठवें स्थान में है, अतः आठवें भाव का सूर्य का फल लिखा जायगा, इस प्रकार समस्त ग्रहों का फल लिखने के पश्चात् सामान्य दर्जे की कुण्डली बनाने के लिये विंशोत्तरी दशा, अन्तर्दशा और उसका फल लिखना चाहिये। अच्छी कुण्डली बनाने के लिये केशवीयजातक पद्धति, जातकपारिजात, नीलकण्ठी, मानसागरी और भारतीय ज्योतिष प्रभृति ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये।

विंशोत्तरी दशा निकालने की विधि

इस दशा में परमायु १२० वर्ष मानकर ग्रहों का विभाजन किया गया है। सूर्य की दशा ६ वर्ष, चन्द्रमा की १० वर्ष, भौम की ७ वर्ष, राहु की १८ वर्ष, गुरु की १६ वर्ष, शनि की १९ वर्ष, बुध की १७ वर्ष, केतु की ७ वर्ष, और शुक्र की २० वर्ष की दशा बताई गई है।

जन्मनक्षत्रानुसार विंशोत्तरीदशाबोधक चक्र

सूर्य	चन्द्र	भौम	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	वर्ष
कृ० उ. फा. उ. षा	रो० ह० श्र०	मृ० चि० ध०	आ० स्वा० श०	पुन० वि० पू. भा.	पु० अनु० उ. भा	आश्ले. ज्ये० रे०	म० मू० अश्वि.	भ० पू. फा. पू. षा.	नक्षत्र

इस चक्र का तात्पर्य यह है कि कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराषाढ़ा में जन्म होने से सूर्य की, रोहिणी, हस्त और श्रवण मे जन्म होने से चन्द्रमा की; मृगशिर, चित्रा और धनिष्ठा में जन्म होने से मंगल की दशा में जन्म हुआ माना जाता है। इसी प्रकार आगे भी चक्र को समझना चाहिये।

दशा ज्ञात करने की एक सुगम विधि यह है कि कृत्तिका नक्षत्र से लेकर जन्मनक्षत्र तक गिनकर जितनी संख्या हो उसमें ९ का भाग देने से एकादि शेष में क्रमशः सू०, च०, भौ०, रा०, गु०, श०, बु०, के०, शु०, की दशा होती है।

दशासाधन

भयात और भभोग को पलात्मक बनाकर जन्मनक्षत्र के अनुसार जिस ग्रह की दशा हो, उसके वर्षों से पलात्मक भयात का गुणाकर पलात्मक भभोग का भाग देने से जो लब्ध आये, वह वर्ष और शेष को १२ से गुणाकर पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्ध मास; शेष को पुनः ३० से गुणाकर पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्ध दिन; शेष को ६० से गुणाकर भाजक—पलात्मक, भभोग का भाग देने से लब्ध घटी और शेष को पुनः ६० से गुणाकर भाजक का भाग देने पर लब्ध पल आते हैं। ये वर्ष, मास, घटी, पल उस ग्रह से भुक्त कहलाते हैं, इन्हें ग्रह की दशा में से घटाने पर भोग्य वर्षादि आते हैं।

१—चमत्कारचिन्तामणि में प्रत्येक ग्रह के द्वादश भावों का फल दिया है। जैसे सूर्य लग्न में हो तो क्या फल, धन स्थान में हो तो क्या फलइत्यादि। इसी प्रकार नौ ग्रहों के फल दिये हैं।

विंशोत्तरीदशा का चक्र बनाने की विधि

दशा चक्र बनाने की विधि यह है कि पहले जिस ग्रह की भोग्य दशा जितनी आई है, उसको रखकर क्रमशः सब ग्रहों के वर्षादि को स्थापित कर देना चाहिये। इन ग्रह वर्षों के नीचे एक कोष्ठक—खाना संवत् के लिये तथा इसके नीचे एक खाना जन्मकालीन सूर्य के राश्यादि लिखने के लिये रहेगा। नीचे के खाने के सूर्य राश्यादि को भोग्य दशा के मासादि में जोड़ देना चाहिये और इस योगफल को नीचे के खाने के अगले कोष्ठक में रखना चाहिये; मध्यवाले कोष्ठक के संवत् को ग्रहों के वर्षों में जोड़कर आगे रखना चाहिये।

विंशोत्तरी दशा का उदाहरण

प्रस्तुत उदाहरण में रोहिणी नक्षत्र का जन्म है, अतः चन्द्रमा की दशा मे जन्म हुआ माना जायगा।

भयात	भभोग
४ ।३०	६५।२०
६०	६०
२४० । ३०	३९०० ।२०
२७० पलात्मक भयात	३९२० पलात्मक भभोग

२७० × १० ग्रह दशा चन्द्रमा के वर्षों से गुणा किया

२७०० ÷ ३९२० पलात्मक भभोग का भाग दिया

३९२०)२७००(०
०
———
२७०० × १२

३९२०)३२४००(८ मास
३१३६०
———
१०४० × ३० = ३१२०० ÷ ३९२० =

३९२०)३१२००(७ दिन
२७४४०
———
३७६०

३७६० × ६० = २२५६०० ÷ ३९२० =

३९२०)२२५६००(५७ घटी
१९६००
———
२९६००
२७४४०
———
२१६० × ६० = १२९६००

३९२०)१२९६००(३३
११७६०
———
१२०००
११७६०
———

०।८।७।५७।३३ भुक्त वर्षादि

चन्द्रमा की कुल दशा १० वर्ष की होती है, अतः दशा में से भुक्त वर्षादि को घटाया—

१० । ० । ० । ० । ०
० । ८ । ७ । ५७ । ३३
―――――――――
९ । ३ । २२ । २ । २७ भोग्य चन्द्र दशा वर्षादि

विंशोत्तरीदशा (जन्मपत्री में लिखने की विधि)

श्रीवीरजिनेश्वरगौतमगणधरसंवादे विंशोत्तरीदशाया चन्द्रदशायाः भुक्तवर्षादयः ० । ८ । ७ । ५७ । ३३ भोग्यवर्षादयः ९।३।२२।२।२७

विंशोत्तरीदशा चक्र

च०	भौ०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्रह
९	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	६	वर्ष
३	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
२२	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन
२	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी
२७	०	०	०	०	०	०	०	०	पल
संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्
२००३	२०१३	२०२०	२०३८	२०५४	२०७३	२०८०			
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
१०	२	२	२	२	२	२	२	२	२
१५	७	७	७	७	७	७	७	७	७
१७	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९
१०	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३७

नोट—बिकला को दशा के पलो में, कला को घटियों में, अंशो को दिनों में और राशि को महीनो में जोड़ा गया है। जो वर्ष हासिल आयगा उसे ऊपर संकेत चिह्न लगाकर जोड़ देंगे।

अन्तर्दशाबिचार

विंशोत्तरी की अन्तर्दशा निकालने के लिये उसके समयचक्र दिये जाते हैं, आगे इन्हीं चक्रो पर से अन्तर्दशा लिखी जायगी।

सूर्यान्तर चक्र

सू०	च०	भौ०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	१	वर्ष
३	६	४	१०	९	११	१०	४	०	मास
१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०	दिन

चन्द्रान्तर चक्र

चं०	भौ.	रा.	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
०	०	१	१	१	१	०	१	०	व.
१०	७	६	४	७	५	७	८	६	मा.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	दि.

भौमान्तर चक्र

भौ.	रा.	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	ग्र०
०	१	०	१	०	०	१	०	०	व.
४	०	११	१	११	४	२	४	७	मा.
२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०	दि.

राह्वन्तर चक्र

रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	भौ.	ग्र.
२	२	२	२	१	३	०	१	१	व.
८	४	१०	६	०	०	१०	६	०	मा
१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८	दि.

गुर्वन्तर चक्र

गु.	श.	बु.	के	शु.	सू.	चं.	भौ.	रा.	ग्र.
२	२	२	०	२	०	१	०	२	व.
१	६	३	११	८	९	४	११	४	मा.
१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४	दि.

शन्यन्तर चक्र

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	भौ.	रा.	गु.	ग्र.
३	२	१	३	०	१	१	२	२	व.
०	८	१	२	११	७	१	१०	६	मा.
३	९	९	०	१२	०	९	६	१२	दि.

बुधान्तर चक्र

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	भौ.	रा.	गु.	श.	ग्र.
२	०	२	०	१	०	२	२	२	व.
४	११	१०	१०	५	११	६	३	८	मा.
२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	दि.

केत्वन्तर चक्र

के.	शु.	सू.	चं.	भौ.	रा.	गु.	श	बु.	ग्र
०	१	०	०	०	१	०	१	०	व.
४	२	४	७	४	०	११	१	११	मा.
२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७	दि.

शुक्रान्तर चक्र

शु.	सू.	च.	भौ.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	ग्र.
३	१	१	१	३	२	३	२	१	व.
४	०	८	२	०	८	२	१०	२	मा.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	दि.

जन्मपत्री में अन्तर्दशा लिखने की विधि

जन्मपत्री में अन्तर्दशा लिखने की प्रक्रिया यह है कि सबसे पहले जिस ग्रह की महादशा आती है, उसी की अन्तर्दशा लिखी जाती है। जिस ग्रह की अन्तर्दशा लिखनी हो, विशोत्तरी के समान पहले खाने में उसके वर्षादिवाले चक्र को, मध्य के खाने मे सवत् और अन्तिम खाने में सूर्य के राशि, अंश को लिख लेना चाहिये। पश्चात् सूर्य के राशि और अंश को दशा के मास और दिन मे जोड़ना चाहिये। दिनसंख्या में ३० से अधिक होने पर ३० का भाग देकर लब्ध को माससंख्या में जोड़ देना चाहिये और माससंख्या में १२ से अधिक होने पर १२ का भाग देकर लब्ध को वर्ष में जोड़ देना चाहिये। नीचे और ऊपर के खानों को जोड़ने के अनन्तर मध्यवाले में संवत् के वर्षों को जोड़ कर रखना चाहिये।

जिस ग्रह की विंशोत्तरी दशा आई है उसका अन्तर निकालने के लिये उसके भुक्त वर्षों को अन्तर्दशा के ग्रहों के वर्षों में से घटाकर तब अन्तर्दशा लिखनी चाहिये।

अन्तर्दशा का उदाहरण

प्रस्तुत उदाहरण में विंशोत्तरी दशा चन्द्र की आई और इसके भुक्त वर्षादि ०।८।७ हैं। चन्द्रान्तर चक्र में पहला अन्तर चन्द्रमा का १० माह है, अतः इसे इसमें से घटाया—

१०।०
८।७
———
१।२३ चन्द्रान्तर—

चद्रान्तर्दशा चक्र (जन्मपत्री का)

चं०	भौ०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
० १ २३	० ७ ०	१ ६ ०	१ ४ ०	१ ७ ०	१ ५ ०	० ७ ०	१ ८ ०	० ६ ०	व० मा० दिन
संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	सवत्	सवत्	सवत	संवत्	संवत्	सवत
२००३	२००४	२००४	२००६	२००७	२००९	२०१०	२०११	२०१२	२०१३
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
१० १५	० ८	७ ८	१ ८	५ ८	० ८	५ ८	० ८	८ ८	२ ८

भौमान्तर्दशा चक्र (जन्मपत्री का)

भौ०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	ग्र०
० ४ २७	१ ० १८	० ११ ६	१ १ ९	० ११ २७	० ४ २७	१ २ ०	० ४ ६	० ७ ०	व० मा० दिन
संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्
२०१३	२०१३	२०१४	२०१५	२०१६	२०१७	२०१८	२०१९	२०१९	२०२०
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
२ ८	७ ५	७ २३	६ २९	८ ८	८ ५	१ २	३ २	७ ८	२ ८

इसी प्रकार समस्त ग्रहों की अन्तर्दशा जन्मपत्री में लिखी जाती है।

विंशोत्तरीदशा और अन्तर्दशा का प्रयोजन

विंशोत्तरी महादशा और अन्तर्दशा की जन्मपत्री में बड़ी आवश्यकता रहती है, इसके बिना कार्य के शुभाशुभ समय का ज्ञान नहीं हो सकता है। जैसे प्रस्तुत उदाहरण में जातक का जन्म चन्द्रमा की महादशा में हुआ है और यह संवत् २०१३ के मिथुन राशि के सूर्य के आठवें अंश तक रहेगी। चन्द्रमा की महादशा

में प्रथम १ माह २३ दिन तक चन्द्रमा की ही अन्तर्दशा है, आगे चन्द्रमा की महादशा में मङ्गल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, शुक्र और सूर्य की अन्तर्दशाएँ हैं। सूर्य के राशि अंश पञ्चाङ्ग में देखना चाहिये। दशा का फल विशेष रूप से जानना हो तो दशाफलदर्पण नामक ग्रन्थ देखना चाहिये। सामान्य फल आगे फलादेश प्रकरण में है।

जन्मपत्री देखने की संक्षिप्त विधि

जन्मपत्री में लग्न स्थान को प्रथम मान कर द्वादश स्थान होते हैं, जो भाव कहलाते हैं। इनके नाम ये है—तनु, धन, सहज, सुहृद्, पुत्र, शत्रु, कलत्र, आयु, धर्म, कर्म, आय और व्यय। इन बारह भावों में बारह राशियाँ और नवों ग्रह रहते हैं। ग्रह और राशियों के स्वरूप के अनुसार इन भावों का फल होता है।

राशियों के नाम—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन।

राशियों के स्वामी या राशीश—मेष, वृश्चिक का स्वामी मगल; वृष, तुला का स्वामी शुक्र; मिथुन, कन्या का स्वामी बुध, कर्क का स्वामी चन्द्रमा; सिंह का स्वामी सूर्य; धनु, मीन का बृहस्पति और मकर, कुम्भ का स्वामी शनि होता है।

ग्रहों की उच्च राशियाँ—सूर्य मेष राशि में, चन्द्रमा वृष में, मंगल मकर में, बुध कन्या में, बृहस्पति कर्क में, शुक्र मीन में, शनि तुला में उच्च का होता है।

ग्रहों का शत्रुता-मित्रताबोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं०मं०गु०	र० बु०	र०च०गु०	र० शु०	चं०म०र०	बु०श०	शु०बु०
सम	बु०	म.गु.श.शु.	शु० श०	म०गु०श०	श०	मं०गु०	गु०
शत्रु	शु० श०	×	बु०	च०	शु०बु०	र०चं०	र०च०म०

ग्रहों का स्वरूप

सूर्य—पूर्व दिशा का स्वामी, रक्तवर्ण, पुरुष, पित्तप्रकृति और पापग्रह है। सूर्य आत्मा, राजभाव, आरोग्यता, राज्य और देवालय का सूचक तथा पितृकारक है। पिता के सम्बन्ध में सूर्य से विचार किया जाता है। नेत्र, कलेजा, स्नायु और मेरुदण्ड पर प्रभाव पड़ता है। लग्न से सप्तम में बली और मकर से ६ राशि पर्यन्त चेष्टाबली होता है।

चन्द्रमा—पश्चिमोत्तर दिशा का स्वामी, स्त्री, श्वेतवर्ण, वातश्लेष्मा प्रकृति और जलग्रह है। यह माता, चित्तवृत्ति, शारीरिक पुष्टि, राजानुग्रह, सम्पत्ति और चतुर्थ स्थान का कारक है। चतुर्थ स्थान में बली और मकर से छः राशि में इसका चेष्टाबल होता है। सूर्य के साथ रहने से निष्फल होता है। नेत्र, मस्तिष्क, उदर और मूत्रस्थली का विचार चन्द्रमा से किया जाता है।

मंगल—दक्षिण दिशा का स्वामी, पित्त प्रकृति, रक्तवर्ण, अग्नितत्त्व है। यह स्वभावतः पापग्रह है, धैर्य तथा पराक्रम का स्वामी है। तीसरे और छठवें स्थान में बली और द्वितीय स्थान में निष्फल होता है। दसवें स्थान में दिग्बली और चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टाबली होता है।

बुध-उत्तर दिशा का स्वामी, नपुंसक, त्रिदोष, श्यामवर्ण और पृथ्वी तत्त्व है। यह पापग्रहों—सू० मं० श० रा० के० के साथ रहने से अशुभ और शेष ग्रहों के साथ रहने से शुभ होता है। इससे जिह्वा, कण्ठ और तालु का विचार किया जाता है।

गुरु-पूर्वोत्तर दिशा का स्वामी, पुरुष और पीतवर्ण है। यह लग्न में बली और चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टाबली होता है। सन्तान और विद्या का विचार इससे होता है।

शुक्र-दक्षिण पूर्व का स्वामी, स्त्री और रक्तगौर वर्ण है। इसके प्रभाव से जातक का रंग गेहुआं होता है। दिन में जन्म होने पर शुक्र से माता का भी विचार किया जाता है।

शनि-पश्चिम दिशा का स्वामी, नपुंसक, वातश्लेष्मिक प्रकृति और कृष्णवर्ण है। सप्तम स्थान में बली होता है, वक्र और चन्द्रमा के साथ रहने पर चेष्टाबली होता है।

राहु-दक्षिण दिशा का स्वामी, कृष्णवर्ण और क्रूर ग्रह है।

केतु-कृष्ण वर्ण और क्रूर ग्रह है। इससे चर्मरोग, हाथ, पाँव का विचार किया जाता है।

विशेष-यद्यपि बृहस्पति और शुक्र दोनों शुभ ग्रह हैं, पर शुक्र से सांसारिक और व्यावहारिक सुखों का तथा गुरु से पारलौकिक एवं आध्यात्मिक सुखों का विचार करते हैं। शुक्र के प्रभाव से व्यक्ति स्वार्थी और गुरु के प्रभाव से परमार्थी होता है।

शनि और मंगल दोनों ही पापग्रह हैं, पर शनि का अन्तिम परिणाम सुखद होता है, यह दुर्भाग्य और यन्त्रणा के फेर में डाल कर व्यक्ति को शुद्ध कर देता है। परन्तु मंगल उत्तेजना देने वाला, उमंग और तृष्णा से परिपूर्ण कर देने के कारण सर्वदा दुःखदायक है।

ग्रहों के बलाबल का विचार

ग्रहों के छः प्रकार के बल बताये गये है, स्थानबल, दिग्बल, कालबल, नैसर्गिकबल, चेष्टाबल और दृग्बल।

स्थानबल-जो ग्रह उच्च, स्वगृही, मित्रगृही, मूलत्रिकोणस्थ, स्वनवांशस्थ, अथवा द्रेष्काणस्थ होता है, वह स्थानबली होता है।

दिग्बल-बुध और गुरु लग्न में रहने से, शुक्र एवं चन्द्रमा चतुर्थ में रहने से, शनि सप्तम में रहने से एवं सूर्य और मंगल दशम स्थान में रहने से दिग्बली होते हैं।

कालबल-रात में जन्म होने पर चन्द्र, शनि और मंगल तथा दिन में जन्म होने पर सूर्य, बुध और शुक्र कालबली होते हैं।

नैसर्गिक बल-शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र और सूर्य उत्तरोत्तर बली होते हैं।

चेष्टाबल-मकर से मिथुन पर्यन्त किसी भी राशि में रहने से सूर्य और चन्द्रमा एवं चन्द्रमा के साथ रहने से मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि चेष्टाबली होते हैं।

दृग्बल शुभ ग्रहों से दृष्ट ग्रह दृग्बली होते हैं।

बलवान् ग्रह अपने स्वभाव के अनुसार जिस भाव में रहता है, उस भाव का फल देता है। पाठकों को ग्रहस्वभाव और राशिस्वभाव का समन्वय कर फल कहना चाहिये।

राशि-स्वरूप

मेष-पुरुष, चरसंज्ञक, अग्नितत्त्व, पूर्वदिशा की स्वामिनी, पृष्ठोदय, रक्त-पीत वर्ण, क्षत्रिय और उग्र-प्रकृति है। इस राशि वालों का स्वभाव साहसी, अभिमानी और मित्रों पर कृपा रखने वाला होता है। इससे मस्तक का विचार करते हैं।

वृष–स्त्री, स्थिरसंज्ञक, शीतलस्वभाव, दक्षिण दिशा की स्वामिनी, वैश्य, विषमोदयी और श्वेत वर्ण है। इसका प्राकृतिक स्वभाव स्वार्थी, समझ बूझ कर काम करने वाला और सांसारिक कार्यों में दक्ष होता है। मुख और कपोलो का विचार इससे होता है।

मिथुन–पश्चिम दिशा की स्वामिनी, हरित वर्ण, शूद्र, पुरुष, द्विस्वभाव और उष्ण है। इसका प्राकृतिक स्वभाव अध्ययनशील और शिल्पी है। कन्धे और बाहुओं का विचार होता है।

कर्क–चर, स्त्री, सौम्य और कफ प्रकृति, उत्तर दिशा की स्वामिनी, लाल और गौर वर्ण है। इसका प्राकृतिक स्वभाव सांसारिक उन्नति में प्रयत्नशीलता, लज्जा, कार्यस्थैर्य और समयानुयायिता का सूचक है। वक्षस्थल और गुर्दे का विचार करते हैं।

सिंह–पुरुष, स्थिर, पित्तप्रकृति, क्षत्रिय और पूर्वदिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव मेष जैसा है, पर तो भी स्वातन्त्र्य प्रेम और उदारता विशेषरूप से वर्तमान हैं। इससे हृदय का विचार किया जाता है।

कन्या पिंगलवर्ण, स्त्री, द्विस्वभाव, वायु-शीत प्रकृति, दक्षिणदिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव मिथुन जैसा है, पर अपनी उन्नति और मान पर पूर्ण ध्यान रखने की इच्छा का सूचक है। इससे पेट का विचार किया जाता है।

तुला–पुरुष, चर, वायु, श्याम, शूद्र और पश्चिम दिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव विचारशील, ज्ञानप्रिय, कार्यज्ञ और राजनीतिज्ञ है। इससे नाभि से नीचे के अंगों का विचार किया जाता है।

वृश्चिक–स्थिर, शुभ्र, स्त्री, कफ, ब्राह्मण और उत्तरदिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव दम्भी, हठी, दृढप्रतिज्ञ, स्पष्टवादी और निर्मल चित्त है, इससे जननेन्द्रिय का विचार किया जाता है।

धनु–पुरुष, काञ्चनवर्ण, द्विस्वभाव, क्रूर, पित्त, क्षत्रिय, और पूर्वदिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव अधिकारप्रिय, करुणामय और मर्यादा का इच्छुक होता है। पैरों की संधि और जंघाओं का विचार किया जाता है।

मकर–चर, स्त्री, वातप्रकृति, पिंगलवर्ण, वैश्य और दक्षिण की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव उच्चाभिलाषी है, इससे घुटनों का विचार किया जाता है।

कुम्भ–पुरुष, स्थिर, वायुतत्त्व, विचित्रवर्ण, शूद्र, क्रूर एवं पश्चिम दिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव विचारशील, शान्तचित्त, धर्मभीरु और नवीन बातों का आविष्कारक है। इससे पिल्ली का विचार करते हैं।

मीन–द्विस्वभाव, स्त्री, कफप्रकृति, पिंगल वर्ण, विप्र और उत्तरदिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव उत्तम, दयालु और दानशील है। इससे पैरों का विचार किया जाता है।

ग्रहों की दृष्टि–अपने से तीसरे और दसवें स्थान को एकपाद दृष्टि से, पाँचवें और नवें को दोपाद दृष्टि से, चौथे और आठवें को तीनपाद दृष्टि से और सातवें स्थान को पूर्णदृष्टि से देखते हैं। मङ्गल चौथे और आठवें स्थान को, शनि तीसरे और छठवें स्थान को तथा गुरु पाँचवें और नवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है।

द्वादश भावों के संक्षिप्त फल

प्रथम भाव या लग्न—प्रथम भाव से शरीर की आकृति, रूप आदि का विचार किया जाता है। इस भाव में जिस प्रकार की राशि और ग्रह होंगे जातक का शरीर और रूप भी वैसा ही होगा। शरीर की स्थिति के सम्बन्ध में विचार करने के लिये ग्रह और राशियों के तत्त्व नीचे दिये जाते हैं।

ग्रहों के स्वभाव और तत्त्व

१ सूर्य	शुष्कग्रह	अग्नितत्त्व
२ चन्द्र	जलग्रह	जलतत्त्व
३ मंगल	शुष्कग्रह	अग्नितत्त्व
४ बुध	जलग्रह	पृथ्वीतत्त्व
५ गुरु	जलग्रह	आकाश या तेजतत्त्व
६ शुक्र	जलग्रह	जलतत्त्व
७ शनि	शुष्कग्रह	वायुतत्त्व

राशियों के तत्त्व तथा उनका विवरण

१ मेष	अग्नि (तत्त्व)	पादजल ($\frac{1}{4}$)	ह्रस्व (आकार)
२ वृष	पृथ्वी	अर्द्धजल ($\frac{1}{2}$)	ह्रस्व
३ मिथुन	वायु	निर्जल	सम
४ कर्क	जल	पूर्णजल	सम
५ सिंह	अग्नि	निर्जल	दीर्घ
६ कन्या	पृथ्वी	निर्जल	दीर्घ
७ तुला	वायु	पादजल ($\frac{1}{4}$)	दीर्घ
८ वृश्चिक	जल	पादजल ($\frac{1}{4}$)	,,
९ धनु	अग्नि	अर्द्धजल ($\frac{1}{2}$)	सम
१० मकर	पृथ्वी	पूर्णजल	,,
११ कुम्भ	वायु	अर्द्धजल ($\frac{1}{2}$)	ह्रस्व
१२ मीन	जल	पूर्णजल	,,

उपर्युक्त संज्ञाओं पर से शारीरिक स्थिति ज्ञात करने के नियम

१–लग्न जलराशि हो और उसमें जलग्रह की स्थिति हो तो जातक का शरीर मोटा होगा।

२–लग्न और लग्नेश जलराशि गत होने से शरीर खूब मोटा होता है।

३–यदि लग्न अग्निराशि हो और अग्नि ग्रह उसमें स्थित हो तो शरीर दुबला, पर मनुष्य बली होता है।

४–अग्नि या वायुराशि लग्न हो और लग्नेश पृथ्वीराशि गत हो तो हड्डियाँ साधारणतः मजबूत होती हैं और शरीर ठोस होता है।

५–यदि अग्नि या वायुराशि लग्न हो और लग्नेश जलराशि में हो तो शरीर स्थूल होता है।

६–लग्न वायुराशि हो और उसमें वायु ग्रह स्थित हो तो जातक दुबला, पर तीक्ष्ण बुद्धिवाला होता है।

७–लग्न पृथ्वीराशि हो और उसमें पृथ्वी ग्रह स्थित हो तो शरीर नाटा होता है।

८–पृथ्वीराशि लग्न हो और लग्नेश पृथ्वीराशि गत हो तो शरीर स्थूल और दृढ़ होता है।

९–पृथ्वीराशि लग्न हो और लग्नेश जलराशि में हो तो शरीर साधारणतः स्थूल होता है। लग्न की राशि ह्रस्व, दीर्घ या सम जिस प्रकार की हो उसी के अनुसार जातक के शरीर की ऊँचाई होती है।

लग्नेश[1] और लग्न राशि के स्वरूप के अनुसार जातक के रूप–वर्ण का निश्चय करना चाहिये। मेष लग्न में लाल मिश्रित सफेद, वृष में पीला मिश्रित सफेद, मिथुन में गहरा लाल मिश्रित सफेद, कर्क में नीला, सिंह में धूसर, कन्या में घनश्याम, तुला में लाल मिश्रित कृष्ण, वृश्चिक में बादामी, धनु में पीत,

१–लग्न स्थान की राशि का स्वामी।

मकर में चितकबरा, कुम्भ में नील और मीन में गौर वर्ण होता है। सूर्य से रक्तश्याम, चन्द्र से गौर, मङ्गल से रक्तवर्ण, बुध से दूर्वादल के समान श्यामल, गुरु से काञ्चनवर्ण, शुक्र से श्यामल, शनि से कृष्ण, राहु से कृष्ण और केतु से धूमिल वर्ण का जातक को समझना चाहिये। लग्न तथा लग्नेश पर पाप ग्रह की दृष्टि होने से कुरूप एवं बुध, शुक्र के एक साथ कहीं भी रहने से गौरवर्ण न होने पर भी जातक सुन्दर होता है।

रवि लग्न में हो तो आँखें सुन्दर नहीं होगी, चन्द्रमा लग्न में हो तो गौरवर्ण होते हुए भी सुडौल नहीं होता; मङ्गल लग्न में हो तो शरीर सुन्दर होता है, पर चेहरे पर सुन्दरता में अन्तर डालने वाला कोई निशान होता है; बुध लग्न में हो तो चमकदार साँवला रङ्ग और कम या अधिक चेचक के दाग होते हैं, गुरु लग्न में हो तो गौरवर्ण और शरीर सुडौल होता है, किन्तु कम आयु में ही वृद्ध बना देता है, सफेद बाल जल्द होते हैं, ४५ वर्ष की आयु में दाँत गिर जाते हैं, मेद वृद्धि में पेट बड़ा होता है, शुक्र लग्न में हो तो शरीर सुन्दर और आकर्षक होता है, शनि लग्न में हो तो कुरूप एवं राहु केतु के लग्न में रहने से चेहरे पर काले दाग होते हैं। शरीर के रूप का विचार करते समय ग्रहों की दृष्टि का अवश्य आश्रय लेना चाहिये। लग्न में क्रूर ग्रहों के रहने पर भी शुभ की दृष्टि होने से व्यक्ति सुन्दर होता है, इसी प्रकार पापग्रहों की दृष्टि होने से सुन्दरता में कमी आती है।

द्वितीय भाव विचार —इससे धन का विचार किया जाता है। इसका विचार द्वितीयेश[1], द्वितीय भाव की राशि और इस स्थान पर दृष्टि रखने वाले ग्रहों के सम्बन्ध से करना चाहिये। द्वितीयेश शुभ ग्रह हो या द्वितीय भाव में शुभ ग्रह की राशि[2] हो और उसमें शुभ ग्रह बैठा हो तथा शुभ ग्रहों की द्वितीय भाव पर दृष्टि हो तो व्यक्ति धनी होता है। कुछ धनी योग नीचे दिये जाते हैं—

१–भाग्येश[3] और लाभेश का योग
२–भाग्येश और दशमेश का योग
३–भाग्येश और चतुर्थेश का योग
४–भाग्येश और पंचमेश का योग
५–भाग्येश और लग्नेश का योग
६–भाग्येश और धनेश का योग
७–दशमेश और लाभेश का योग
८–दशमेश और चतुर्थेश का योग
९–दशमेश और लग्नेश का योग
१०–दशमेश और पंचमेश का योग
११–दशमेश और धनेश का योग
१२–लाभेश और धनेश का योग
१३–लाभेश और चतुर्थेश का योग
१४–लाभेश और लग्नेश का योग
१५–लाभेश और पचमेश का योग
१६ लग्नेश और धनेश का योग
१७–लग्नेश और चतुर्थेश का योग
१८–लग्नेश और पचमेश का योग
१९–धनेश और चतुर्थेश का योग
२०–चतुर्थेश और पंचमेश का योग

दारिद्र्य योग

१–षष्ठेश और धनेश का योग
२–षष्ठेश और लग्नेश का योग
३–षष्ठेश और चतुर्थेश का योग
४–कर्मेश और चतुर्थेश का योग
५–कर्मेश और धनेश का योग
६–व्ययेश और लग्नेश का योग
७–षष्ठेश और दशमेश का योग
८–व्ययेश और पचमेश का योग
९–व्ययेश और सप्तमेश का योग
१०–षष्ठेश और भाग्येश का योग
११–व्ययेश और भाग्येश का योग
१२–षष्ठेश और तृतीयेश का योग
१३–व्ययेश और तृतीयेश का योग
१४–षष्ठेश और कर्मेश का योग

१–द्वितीय स्थान मे रहनेवाली राशि का स्वामी। २–जिन राशियो के स्वामी शुभ ग्रह है, वे राशियाँ। ३–भाग्यस्थान–९ वें भाव का स्वामी और लाभस्थान–११ वें भाव का स्वामी, एक जगह हो।

१५-व्ययेश और दशमेश का योग
१६-षष्ठेश और पंचमेश का योग
१७-षष्ठेश और सप्तमेश का योग
१८-षष्ठेश और लाभेश का योग
१९-कर्मेश और लाभेश का योग
२०-कर्मेश और अष्टमेश का योग

धनयोग २।४।५।७ भावों में हो तो पूर्ण फल, ८।१२ में आधा फल, ६ वें भाव में चतुर्थांश धन और शेष भावों में निष्फल होते हैं।

दरिद्र योग धन स्थान में पूर्ण फल, व्यय स्थान में हों तो ¾ फल, दूसरे स्थान में अर्द्ध फल और शेष स्थानों में निष्फल होते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति की जन्मपत्री में दोनों ही प्रकार के योग होते हैं। यदि विचार करने से धनी योगों की संख्या दरिद्र योगों की सख्या से अधिक हो तो व्यक्ति धनी और धनी योगों मे दरिद्र योगो की संख्या अधिक हो तो व्यक्ति दरिद्री होता है। पूर्ण फल वाले दो धनी योगों के अधिक होने से सहस्राधिपति, तीन के अधिक होने पर लक्षाधिपति व्यक्ति होता है। अर्ध फल वाले योगो का फल आधा ज ना चाहिये।

तृतीय भाव विचार-इस भाव से भाई और बहनो का विचार किया जाता है। परन्तु ग्यारहवें भाव से बड़े भाइयो और बड़ी बहनों का तथा तीसरे से छोटे भाइयो और छोटी बहनो का विचार होता है। मङ्गल भातृकारक है, भातृ सुख के लिये निम्न योगो का विचार करना चहिये।

(क) तृतीय स्थान में शुभ ग्रह रहने से, (ख) तृतीय भाव पर शुभ ग्रह की दृष्टि होने से, (ग) तृतीयेश के बली होने से, (घ) तृतीय भाव के दोनो ओर-द्वितीय और चतुर्थ में शुभ ग्रहों के रहने से, (ङ) तृतीयेश पर शुभ ग्रहो की दृष्टि रहने से, (च) तृतीयेश के उच्च होने से और (छ) तृतीयेश के साथ शुभ ग्रहों के रहने से भाई-बहन का सुख होता है।

तृतीयेश या मङ्गल के सम राशियो में रहने से कई भाई-बहनो का सुख होता है। यदि तृतीयेश और मङ्गल १२ वें स्थान मे हो, उस पर पापग्रहो की दृष्टि हो या पापग्रह तृतीय में हो और उसपर पापग्रह की दृष्टि हो या तृतीयेश के आगे पीछे पापग्रह हो या द्वितीय और चतुर्थ में पापग्रह हो तो भाई बहन की मृत्यु होती है। तृतीयेश या मङ्गल ३।६।१२ भावो मे हो और शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो भ्रातृसुख नहीं होता। तृतीयेश राहु या केतु के साथ ६।८।१२ वें भाव मे हो तो भ्रातृसुख का अभाव होता है। एकादशेश पाप ग्रह हो या इस भाव में पाप ग्रह स्थित हो और शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो बड़े का सुख नहीं होता।

भ्रातृसंख्या जानने के नियम—द्वितीय तथा तृतीय स्थान मे जितने ग्रह रहें उतने अनुज और एकादश तथा द्वादश स्थान में जितने ग्रह हों उतने बड़े भाई होते हैं। यदि इन स्थानों में ग्रह न हो तो इन स्थानो पर जितने ग्रहों की दृष्टि हो उतने अनुज और अग्रजो का अनुमान करना। स्वक्षेत्री ग्रहो के रहने तथा उन स्थानो पर अपने स्वामी की दृष्टि [1] पड़ने से भ्रातृसख्या में वृद्धि होती है। जितने ग्रह तृतीयेश के साथ हो, मङ्गल के साथ हो, तृतीयेश पर दृष्टि रखते हो और तृतीयस्थ हो उतनी ही भ्रातृसख्या होती है।

लग्नेश और तृतीयेश मित्र हो अथवा शुभ स्थानो में एक साथ हो तो भाइयो में प्रेम होता है।

विशेषफल-तृतीयेश ९।१०।११ वें भाव मे बली होकर स्थित हो तो जातक असाधारण उन्नति करता है। सौदा, लाटरी, मुकद्दमा में विजय तृतीय भाव मे क्रूर ग्रह के रहने पर मिलती है।

चतुर्थ भाव विचार-इससे मकान, पिता का सुख, मित्र आदि के सम्बन्ध में विचार करते हैं। इस स्थान पर शुभ ग्रहों की दृष्टि होने से या इस स्थान में शुभ ग्रहों के रहने से मकान का सुख होता है। चतुर्थेश पुरुष [2] ग्रह बली हो तो पिता का पूर्ण सुख और निर्बल हो तो अल्प सुख तथा चतुर्थेश स्त्रीग्रह 'बली हो

---

१ किसी भी प्रकार की दृष्टि-एकपाद, दो पाद आदि। २ ग्रहो के स्वरूप पर से पुरुष स्त्री ग्रहों का परिज्ञान करना चाहिये।

तो माता का पूर्ण सुख और निर्बल हो तो अल्पसुख होता है। चन्द्रमा बली हो तथा लग्नेश को जितने शुभ ग्रह देखते हों (किसी भी दृष्टि से) जातक के उतने ही मित्र होते हैं। चतुर्थ स्थान पर चन्द्र, बुध और शुक्र की दृष्टि [1] हो तो बाग-बगीचा; चतुर्थ स्थान गुरु से युत या दृष्ट होने से मन्दिर; बुध से युत या दृष्ट होने पर रंगीन महल; मङ्गल से युत या दृष्ट होने से पक्का मकान और शनि से युत या दृष्ट होने से सीमेन्टेड मकान का सुख होता है।

विशेष योग–लग्नेश, चतुर्थेश और धनेश इन तीनों ग्रहों में से जितने ग्रह १।४।५।७।९।१० स्थानो में गये हों उतने ही मकान जातक के होते हैं। उच्च, मूलत्रिकोण और स्वक्षेत्री में क्रमशः तिगुने, दूने और डेढ़ गुने समझने चाहिये।

विद्यायोग–चतुर्थ और पंचम इन दोनों के सम्बन्ध से विद्या का विचार किया जाता है तथा दशम स्थान से विद्याजनित यश का और विश्वविद्यालयों की उच्च परीक्षाओं में उत्तीर्णता प्राप्त करने का विचार किया जाता है।

१–यदि चतुर्थस्थान में चतुर्थेश हो अथवा शुभग्रह की दृष्टि हो या वहाँ शुभग्रह स्थित हो तो जातक विद्याविनयी होता है। २–चन्द्र[2]लग्न एवं जन्म[3]लग्न से पंचम स्थान का स्वामी बुध, गुरु और शुक्र के साथ १।४।५।७।९।१० स्थानो में से किसी में बैठा हों तो जातक विद्वान् होता है। बुध और गुरु एक साथ किसी भी भाव में हों तो विद्या का उत्तम योग होता है। ३–चतुर्थेश ६।८।१२ वें भाव में हो या पापग्रह के साथ हो या पापग्रह से दृष्ट हो अथवा पापराशि गत हो तो विद्या का अभाव समझना चाहिये।

पंचम भाव विचार–पञ्चमेश शुभ ग्रह हो, शुभ ग्रहों के साथ हो, शुभ ग्रहों से घिरा—आगे के स्थान और पीछे के स्थान में शुभ ग्रह हों, बुध उच्च का हो, पंचम में बुध हो, या पंचम में गुरु हो, गुरु से पंचम भाव का स्वामी १।४।५।७।९।१० वें भाव में स्थित हो तो जातक विद्वान् होता है।

सन्तानविचार –जन्मकुण्डली के पचम स्थान से और चन्द्रकुण्डली के पंचम स्थान से सन्तान का विचार करना चाहिये। १–पंचम भाव, पञ्चमेश और गुरु शुभ ग्रह द्वारा दृष्ट[4] या युत होने से सन्तान योग होता है। २–लग्नेश पाँचवें भाव में हो और गुरु बलवान् हो तो सन्तान योग होता है। ३–बलवान्[5]गुरु लग्नेशद्वारा देखा जाता हो तो सन्तानयोग प्रबल होता है। १।४।५।७।९।१०वें स्थानों के स्वामी शुभ ग्रह हों और पंचम में स्थित हो तथा पचमेश ६।८।१२ वें भाव में न हो, पापयुक्त न हो तो सन्तानसुख पूर्ण होता है। ४–पंचम स्थान में वृष, कर्क और तुला में से कोई राशि हो, पंचम मे शुक्र या चन्द्रमा स्थित हो अथवा इनकी कोई भी दृष्टि पंचम पर हो तो बहुपुत्र योग होता है। ५–लग्न अथवा चन्द्रमा से पंचम स्थान में शुभ ग्रह स्थित हो, पंचम भाव शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तो सन्तानयोग होता है। ६–लग्नेश और पंचमेश एक साथ हों या परस्पर एक दूसरे को देखते हों तो सन्तानयोग होता है। ७–लग्नेश, पंचमेश शुभ ग्रह के साथ १।४।७।१० स्थानो में हो और द्वितीयेश बली हो तो सन्तानयोग होता है। ८–लग्नेश और नवमेश दोनो सप्तमस्थ हों अथवा द्वितीयेश लग्नस्थ हो तो सन्तानयोग होता है।

स्त्री की कुण्डली में निम्न योगो के होने पर सन्तान नहीं होती है। १–सूर्य लग्न में और शनि सप्तम में, २–सूर्य और शनि सप्तम में, चन्द्रमा दशम भाव में स्थित हो तथा गुरु से दोनो ग्रह अदृष्ट हों। ३–षष्ठेश, रवि और शनि ये तीनों ग्रह षष्ठ स्थान में हों और चन्द्रमा सप्तम स्थान में हों तथा बुध से अदृष्ट हो। ४–शनि, मंगल छठवें या चौथे स्थान में हों।

१–६।८।१२ भावों के स्वामी पञ्चम में हों या पञ्चमेश ६।८।१२ वें भावों में हो, पञ्चमेश नीच या अस्तंगत हो तो स्त्री-पुरुष दोनो की कुण्डली में सन्तान का अभाव समझना चाहिये।

---

१ यहां पूर्ण दृष्टि ली गई है। २ चन्द्रकुण्डली का लग्न। ३ जन्मकुण्डली का लग्न। ४ कोई भी दृष्टि हो। ५ पूर्वोक्त छः प्रकार के बलों में से कम से कम दो बल जिसके हो।

२-पञ्चम भाव में धनु और मीन राशियों में से किसी का रहना या पञ्चम में गुरु का रहना सन्तान के लिये बाधक है। ३-पंचमेश, द्वितीयेश निर्बल हों और पञ्चम स्थान पर पापग्रह की दृष्टि हो तो सन्तान का अभाव होता है। पञ्चमेश जिस राशि में हो उससे ६।८।१२ भावों में पापग्रहों के रहने से सन्तान का अभाव होता है।

सन्तानसंख्याविचार-पञ्चम में जितने ग्रह हों और इस स्थान पर जितने ग्रहों की दृष्टि हो उतनी सन्तानसंख्या समझना। पुरुष ग्रहों के योग और दृष्टि से पुत्र और स्त्रीग्रहों के योग और दृष्टि से कन्या की संख्या का अनुमान करना। पञ्चमेश की किरण[1] संख्या के तुल्य सन्तान जानना चाहिये।

षष्ठभाव विचार-रोग और शत्रु का विचार इस भाव से करना चाहिये। छठवें स्थान में राहु, शनि, केतु, मङ्गल का रहना अच्छा है, शत्रुकष्ट का अभाव इन ग्रहों के होने से समझना चाहिये।

सप्तम भाव विचार-इस स्थान से विवाह का विचार प्रधानतः किया जाता है। विवाह योग निम्न हैं-

१-पापयुक्त सप्तमेश ६।८।१२ भाव में हो अथवा नीच या अस्तंगत हो तो विवाह का अभाव या विधुर होता है। २-सप्तमेश बारहवें भाव में हो तथा लग्नेश और जन्मराशि का स्वामी सप्तम में हो तो विवाह नहीं होता। ३-षष्ठेश, अष्टमेश तथा द्वादशेश सप्तम भाव में हों, शुभ ग्रह से युत या दृष्ट न हों अथवा सप्तमेश ६।८।१२ वें भावों का स्वामी हो तो स्त्रीसुख नहीं होता। ४-शुक्र, चन्द्रमा एक साथ किसी भी भाव में बैठे हों तथा शनि और भौम उनसे सप्तम भाव में हों तो विवाह नहीं होता। ५-७।१२ वें भाव में दो-दो पापग्रह हों तथा पञ्चम में चन्द्रमा हो तो जातक का विवाह नहीं होता। ६-शनि, चन्द्रमा के सप्तम में रहने से विवाह नहीं होता। गुरु भी सप्तम में स्त्रीसुख का बाधक है। ७-शुक्र और बुध सप्तम में एक साथ हों तथा सप्तम पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो विवाह नहीं होता, लेकिन शुभ ग्रहों की दृष्टि होने से विवाह बड़ी आयु में होता है।

विवाह योग-सप्तम स्थान में शुभ ग्रह के रहने से, सप्तम पर शुभ ग्रहो की दृष्टि के होने से तथा सप्तमेश के शुभ युत या दृष्ट होने से विवाह होता है।

विवाह समय-लग्नेश से शुक्र जितना नजदीक हो उतना ही जल्दी विवाह होता है, दूर होने से देरी से होता है। शुक्र की स्थिति जिस राशि में हो उस राशि के स्वामी की दशा[2] या अन्तर्दशा में विवाह होता है।

अष्टम भाव विचार—इस भाव से आयु का विचार किया जाता है। अरिष्टयोग-१-चन्द्रमा निर्बल होकर पापग्रह से युत या दृष्ट हो तथा अष्टम स्थान में गया हो तो बालक की मृत्यु होती है। २-यदि चारों केन्द्रस्थानों में (१।४।७।१०) चन्द्र, मङ्गल, शनि और सूर्य बैठे हों तो बालक की मृत्यु होती है। ३-लग्न में चन्द्रमा, बारहवें में शनि, नौवें में सूर्य और आठवें में भौम हो तो बालक को बालारिष्ट होता है। ४-चन्द्रमा पापग्रह से युत या दृष्ट होकर १।४।८।६।१२ भावो में से किसी में हो तो अरिष्ट होता है।

अरिष्टनिवारक-राहु, शनि और मङ्गल ३।६।११ वें भाव में हों तो अरिष्ट दूर हो जाता है। गुरु और शुक्र १।४।७।१० वें भाव में हो तो अरिष्ट भंग होता है

आयु साधन का सरल गणित—केन्द्राङ्क (१।४।७।१० वें भावों की राशिसंख्या) त्रिकोणाङ्क (५।९ वें भावो की राशिसंख्या) केन्द्रस्थ ग्रहाङ्क (चारों केन्द्रस्थानों में रहने वाले ग्रहों की संख्या अर्थात् सूर्य१, चन्द्र२, भौम३, बुध४, गुरु५, शुक्र६, शनि७, राहु८, केतु९,) और त्रिकोणस्थ ग्रहाङ्क (५।९ भावों में रहने वाले ग्रहों की अंक संख्या) इन चारों संख्याओं को जोड़कर योगफल को १२ से गुणाकर १० का भाग देने से जो वर्षादि लब्ध आवे उनमें से १२ घटा देने से पर आयुप्रमाण होता है।

---

१ सूर्य उच्चराशि का हो तो १०, चन्द्र हो तो ९, भौम हो तो ५, बुध हो तो ५, गुरु हो तो ७, शुक्र हो तो ८ और शनि हो तो पाँच किरणें होती है। उच्चबल का साधन कर किरणसंख्या निकालनी चाहिये।
२ विंशोत्तरी दशा के क्रम से समय का ज्ञान करना चाहिए।

लग्नायु साधन—जन्मकुण्डली में जिन जिन स्थानों में ग्रह स्थित हों, उन उन स्थानो में जो जो राशि हों उन सभी ग्रहस्थ राशियों के निम्न ध्रुवाङ्कों को जोड़ देने पर लग्नायु होती है। ध्रुवाङ्क–मेष १०, वृष६, मिथुन२०, कर्क५, सिंह८, कन्या२, तुला२०, वृश्चिक६, धनु१०, मकर१४, कुम्भ३ और मीन१० ध्रुवाङ्क संख्यावाली हैं।

केन्द्रायुसाधन–जन्मकुण्डली के चारों केन्द्र स्थानों (१।४।७।१०) की राशियों का योग कर भौम और राहु जिस जिस राशि में हों उनके अंकों की संख्या का योग केन्द्राङ्कसंख्या के योग में से घटा देने पर जो शेष बचे उसे तीन से गुणा करने पर केन्द्रायु होती है। इस प्रकार सभी गणितों का समन्वय कर आयु बतानी चाहिये।

नवम भावविचार—इस भाव से भाग्य और धर्म-कर्म के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। भाग्येश (नवम का स्वामी) ६।८।१२ में स्थित हो तो भाग्य उत्तम नहीं होता। भाग्य स्थान (नौवें भाव) में लाभेश–ग्यारहवें भाव का स्वामी बैठा हो तो नौकरी का योग होता है। धनेश लाभभाव में गया हो और दशमेश से युत या दृष्ट हो तो भाग्यवान होता है। नवमेश धनभाव में गया हो और दशमेश से युत या दृष्ट हो तो व्यक्ति भाग्यवान होता है। लाभेश नवम भाव में, धनेश लाभभाव में, नवमेश धनभाव में गया हो और दशमेश से युत या दृष्ट हो तो महा भाग्यवान् योग होता है। नवम भाव गुरु और शुक्र से युत या दृष्ट हो या भाग्येश गुरु, शुक्र से युत हो या लग्नेश और धनेश पञ्चम भाव में गये हो अथवा लग्नेश नवम भाव में और नवमेश लग्न में गया हो तो भाग्यवान् होता है।

भाग्योदय काल—सप्तमेश या शुक्र ३।६।१०।११ या ७ वें भाव में हो तो विवाह के बाद भाग्योदय होता है। भाग्येश रवि हो तो २२ वें वर्ष में, चन्द्र हो तो २४ वें वर्ष में, मंगल हो तो २८ वें वर्ष मे, बुध हो तो ३२ वे वर्ष में, गुरु हो तो १६ वें वर्ष में, शुक्र हो तो २५ वें वर्ष में, शनि हो तो ३६ वें वर्ष में और राहु या केतु हो तो ४२ वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

दशम भाव विचार–दशम भाव पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो मनुष्य व्यापारी होता है। दशम में बुध हो, दशमेश और लग्नेश एक राशि में हो, लग्नेश दशम भाव में गया हो, दशमेश १।४।५।७।९।१० में तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो और दशमेश अपनी राशि में हो तो जातक व्यापारी होता है।

एकादशभावविचार–लाभ[1] स्थान में शुभ ग्रह हो तो न्यायमार्ग से धन और पाप ग्रह हो तो अन्याय मार्ग से धन आता है। लाभ भाव पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो लाभ और पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो हानि होता है। लाभेश १।४।५।७।९।१० भावों में हो तो बहुत लाभ होता है।

ससुराल से धनलाभ–सप्तम और चतुर्थ स्थान का स्वामी एक ही ग्रह हो, यह सप्तम या चतुर्थ में हो तो ससुराल से धन मिलता है।

अकस्मात् धनलाभ योग–द्वितीयेश और चतुर्थेश शुभ ग्रह के साथ नवम भाव में शुभ राशि गत हो कर स्थित हो तो भूमि से धन मिलता है। लग्नेश द्वितीय भाव मे हो और द्वितीयेश एकादशस्थ हो तो धन लाटरी या सट्टे से मिलता है।

द्वादश भाव विचार–बारहवें भाव में शुभ ग्रह हो तो सन्मार्ग मे धन व्यय होता है और पापग्रह हो तो कुमार्ग में धन खर्च होता है। बलवान् और शुभ ग्रह के द्वादश में रहने से अधिक व्यय होता है। क्रूर ग्रह द्वादश में रहने पर रोग उत्पन्न होते हैं।

विंशोत्तरी दशा का फल

व्यक्ति के शुभाशुभ समय का परिज्ञान दशा से ही किया जाता है। जिस समय जिस ग्रह की दशा रहती है उस समय उसी के शुभाशुभानुसार व्यक्ति को फल मिलता है।

१—ग्यारहवाँ भाव।

दशाफल के नियम

लग्नेश की दशा में शारीरिक सुख और धनागम, धनेश की दशा में धनलाभ पर शारीरिक कष्ट, यदि धनेश पाप ग्रह हो तो मृत्यु भी हो जाती है। तृतीयेश की दशा में रोग, चिन्ता और साधारण आमदनी, चतुर्थेश की दशा में मकाननिर्माण, सवारी सुख, शारीरिक सुख, लाभेश और चतुर्थेश दोनों दशम या चतुर्थ में हो तो चतुर्थेश की दशा में मिल या बड़ा कारोबार. विद्यालाभ; पंचमेश की दशा में विद्या, धन, सन्तान, सम्मान, यश का लाभ और माता को कष्ट, षष्ठेश की दशा में शत्रुभय, रोगवृद्धि, सन्तान को कष्ट, सप्तमेश की दशा में स्त्री को पीड़ा, अष्टमेश की दशा में रोग, पापग्रह होने पर मृत्यु, अष्टमेश पापग्रह होकर द्वितीय में बैठा हो तो निश्चय मृत्यु; नवमेश की दशा में सुख, भाग्योदय, तीर्थयात्रा, धर्मवृद्धि, दशमेश की दशा में राजाश्रय, सुखोदय, लाभ, सम्मानप्राप्ति; एकादशेश की दशा में धनागम, पिता की मृत्यु और द्वादशेश की दशा में धनहानि, शारीरिक कष्ट, मानसिक चिन्ताएँ होती हैं।

अन्तर्दशा फल—पापग्रह की महादशा में पापग्रह की अन्तर्दशा धनहानि, कष्ट और शत्रुपीड़ाकारक होती है। २-जिस ग्रह की महादशा हो उससे छठवें या आठवें स्थान में स्थित ग्रहो की अन्तर्दशा स्थान-च्युति, भयानक रोग, मृत्युतुल्य कष्टदायक होती है। ३-शुभग्रहों की महादशा में शुभ ग्रहों की अन्तर्दशा श्रेष्ठ, शुभ ग्रहों की महादशा मे पाप ग्रहो की अन्तर्दशा हानिकारक होती हैं। ४-शनि में चन्द्रमा और चन्द्रमा मे शनि की अन्तर्दशा आर्थिक कष्टदायक होती है। ५-मगल में शनि और शनि में मंगल की अन्तर्दशा रोगकारक होती है। ६-द्वितीयेश, तृतीयेश, षष्ठेश, अष्टमेश और द्वादशेश की अन्तर्दशा अशुभ होती हैं।

परिशिष्ट नं० ३

मेलापक विचार

वर-कन्या की कुण्डली का मिलान करने के लिये दोनों के ग्रहों का मिलान करना चाहिये। यदि जन्म-कुण्डली में १।४।७।८।१२ वें भाव में मंगल, शनि, राहु और केतु हों तो पति या पत्नीनाशक योग होता है। कन्या की जन्मपत्री में होने से पतिनाशक और वर की जन्मपत्री में होने ये पत्नीनाशक है। उक्त स्थानों में मंगल के होने से मंगला या मगली योग होता है। मंगल पुरुष का मंगली स्त्री से सम्बन्ध करना श्रेष्ठ माना जाता है।

वर की कुण्डली में लग्न और शुक्र से १।४।७।८।१२ वें भावो में तथा कन्या की कुण्डली में लग्न और चन्द्रमा से १।४।७।८।१२ वें भावों में पापग्रहों—म० श० रा० के० का रहना अनिष्टकारी माना जाता है। जिसकी कुण्डली में उक्त स्थानो मे पापग्रह अधिक हो उसी की कुण्डली तगड़ी मानी जाती है।

वर की कुण्डली मे लग्न से छठवें स्थान में मंगल, सातवें में राहु और आठवें में शनि हो तो स्त्रीहन्ता योग होता है। इसी प्रकार कन्या की कुण्डली में उपर्युक्त योग हो तो पतिहन्ता योग होता है। कन्या की कुण्डली में ७ वाँ और ८ वाँ स्थान विशेष रूप से तथा वर की कुण्डली में ७ वाँ स्थान देखना चाहिये। इन स्थानों में पापग्रहो के रहने से अथवा पापग्रहो की दृष्टि हाने से अशुभ माना जाता है। यदि दोनों की कुण्डली में उक्त स्थानो में अशुभ ग्रह हो तो सम्बन्ध किया जा सकता है।

वैधव्य योग—कन्या की कुण्डली में सप्तम स्थान में गया हुआ मगल पापग्रहों से दृष्ट हो तो बालविधवा योग होता है। राहु बारहवें स्थान में हो तो पतिसुख का अभाव होता है। अष्टमेश सातवें भाव में और सप्तमेश आठवें भाव में हो तो वैधव्य योग होता है। छठवें और आठवें भावों के स्वामी छठवें या बारहवें भाव में पापग्रहों से दृष्ट हो तो वैधव्य योग होता है।

सन्तान विचार—२।५।६।८ इन राशियों में चन्द्रमा हो तो अल्प सन्तान, शनि और रवि ये दोनों आठवें भाव में गये हो तो वन्ध्यायोग होता है। पंचम स्थान में धनु और मीन राशि का रहना सन्तान में बाधक है। सप्तम और पंचम स्थान में गुरु का रहना भी अच्छा नहीं होता है।

गुणमिलान

आगे दिये गये गुणैक्यबोधक चक्र में वर और कन्या के जन्मनक्षत्र के अनुसार गुणों का मिलान करना चाहिये। कुल गुण ३६ होते हैं, यदि १८ गुणों से अधिक गुण मिले तो सम्बन्ध किया जा सकता है। पर्याप्त गुण मिलने पर भी नाड़ी दोष और भकूट दोष का विचार करना चाहिये।

भकूटविचार

कन्या की राशि से वर की राशि तक तथा वर की राशि से कन्या की राशि तक गणना कर लेनी चाहिये। यदि गिनने से दोनों की राशियाँ परस्पर में ६ वीं और ८ वीं हों तो मृत्यु, ९ वीं और ५ वीं हो तो सन्तान-हानि तथा २ री और १२ वीं हों तो निर्धनता फल होता है।

उदाहरण—वर की राशि जन्मपत्री के हिसाब से मिथुन है और कन्या की तुला है। वर की राशि मिथुन से कन्या की राशि तुला तक गणना करे तो ५ वीं संख्या हुई और कन्या की तुला राशि से वर की मिथुन राशि तक गणना की तो ९ वीं संख्या आई, अतः परस्पर में राशि संख्या नवम पंचम होने से भकूट दोष माना जायगा।

नाड़ीविचार

आगे दिये गये शतपदचक्र में सभी नक्षत्रों के वश्य, वर्ण, योनि, गण, नाड़ी, राशि आदि अंकित हैं। अत: वर और कन्या के जन्मनक्षत्र के अनुसार नाड़ी देखकर विचार करना चाहिये। दोनों की भिन्न-भिन्न नाड़ी होना आवश्यक है। एक नाड़ी होने से दोष माना जाता है, अत: एक नाड़ी की शादी त्याज्य है। हाँ, वर कन्या के राशीशों में मित्रता हो तो नाड़ीदोष नहीं होता।

उदाहरण—वर का कृत्तिका नक्षत्र है और कन्या का आश्लेषा। शतपदचक्र के अनुसार दोनों की अन्त्य नाड़ी है, अत: सदोष है।

गुण मिलाने का उदाहरण—वर का आर्द्रा नक्षत्र के चतुर्थ चरण का जन्म है और कन्या का अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण का जन्म है। गुणैक्यबोधक चक्र में वर के नक्षत्र ऊपर और कन्या के नक्षत्र नीचे दिये हैं, अत: इस चक्र में १७ गुण मिले। यह संख्या १८ से कम है, अत सम्बन्ध ठीक नहीं माना जायगा। ग्रहों के ठीक मिलने पर तथा राशियों के स्वामियों मे मित्रता होने पर यह सम्बन्ध किया जा सकता है।

शतपद चक्र या होड़ा चक्र

नक्षत्राणि	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	आश्ले.	म.	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.
अक्षर	चू चे. चो.ला	ली.लू. ले लो.	अ.इ उ ए.	ओ वा. वी.वू,	वे.वो. का.की.	कु.घ. ङ.छ.	के.को. हा.ही.	हू.हे. हो.डा.	डी.डू. डे.डो.	मा.मी. मू मे.	मो.टा. टी.टू.	टे.टो. पा.पी.	पू.ष. ण.ठ.	पे.पो रा री.
राशि	मे.	मे.	मे.१ वृ.३	वृ.	वृ.२ मि.२	मि.	मि.३ क.१	क.	क.	सिं.	सि.	सिं.१ क.३	क.	क २ तु.२
वर्ण.	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै २ शू.२	शू.	शू.३ ब्रा १	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू २
वश्य.	च.	च	च.	च.	च.२ न.२	न.	न.३ ज.१	ज.	ज.	व.	व.	व.१ – ३	न.	न.
योनि.	अश्व	गज	छाग	सर्प.	सर्प	श्वान	मार्जार	छाग	मार्जार	मूषक	मूषक	गौ.	महिष	व्याघ्र.
राशीश.	म.	म	म१ शु.३	शु	शु २ बु.२	बु.	बु.३ च.१	चं.	च.	सू.	सू.	सू.१ बु.३	बु.	बु.३ शु २
गण.	दे.	म.	रा	म.	दे.	म.	दे.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.
नाडी	आ.	म.	अ.	अ.	म.	आ.	आ.	म.	अ.	अ.	म.	आ.	आ.	म.

नक्षत्राणि	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा	श्र.	ध.	श.	पू.भा.	उ.भा.	रे.
अक्षर	रु.रे. रो.ता.	ती.तू. ते.ता.	ना.नी. नू ने.	नो.या. यि.यू	ये.यो. भा.भ'.	भू ध. फ ढ	भे.भो. जा.जी	खी.खू खे.खो.	गा.गी. गू.गे.	गो.सा. सी.सू	से.सो. दा.दी.	दू.थ. झ.ञ.	दे.दो. च.ची
राशि	तु.	तु.३ वृ.१	वृ.	वृ.	ध.	ध.	ध.१ म.३	म.	म २ कु.२	कुं.	कुं.३ मी.१	मी.	मी.
वर्ण.	शू.	शू ३ वि.१	विप्र.	विप्र.	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू २	शू	शू ३ विप्र.१	विप्र.	विप्र.
वश्य.	न.	न ३ की.१	कीट.	की.	न.	॥न. ३॥च.	चतु.	१॥च. २॥ज	ज.२ न २	न.	नर.३ ज.१	जलचर	ज.
योनि.	महिष	व्याघ्र	हरिण	हरिण	श्वान	वानर	नकुल	वानर.	सिंह	अश्व	सिंह	गो.	गज
राशीश.	शु.	शु ३ म.१	म.	[illegible]	बृ	बृ.	बृ.१ श.३	श.	श	श.	श.३ गुरु१	गुरुः	गुरु
गण.	दे	रा.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.
नाडी	अ.	अ.	म.	आ.	आ.	म	अ.	अ.	म.	आ.	आ.	म.	अ.

चक्र के सांकेतिक अक्षरों के पूरे नाम

मे = मेष
वृ = वृष
मि = मिथुन
क = कर्क
सिं = सिह
क = कन्या

तु = तुला
वृ = वृश्चिक
ध = धनु
म = मकर
कुं = कुम्भ
मी = मीन

एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं, जहाँ मे० १, वृ० ३ लिखा है, उसका तात्पर्य है कि कृत्तिका के प्रथम चरण में मेष राशि और उसके शेष तीन चरण वृष राशि के हैं। इसी प्रकार आगे-आगे भी समझना।

शू = शूद्र
क्ष = क्षत्रिय
ब्रा = ब्राह्मण
वै = वैश्य
च = चतुष्पद

न = नर
ज = जलचर
व = वनचर
की = कीट

दे = देव
म = मनुष्य
रा = राक्षस
आ = आद्य
म = मध्य
अ = अन्त्य

सू = सूर्य
च = चन्द्र
म = मगल
बु = बुध

गु = गुरु
शु = शुक्र
श = शनि

गणनागुणैक्यबोधक चक्र

वर के नक्षत्र

कन्या के नक्षत्र

	अ.	भ.	कृ. १	कृ. ३	रो.	मृ. २	मृ. २	आ.	पु. ३	पु. १	पु.	श्ले.	म.	पू.फा.	उ.फा. १	उ.फा. ३	ह.	चि. २	चि. २	स्वा.	वि. ३	वि. १	अ.	ज्ये.	मू.	पू.षा. ॥	पू.षा. ३॥	उ.षा. १	उ.षा. ३	श्र. १॥	श्र. २॥	ध. २	ध. २	श.	पू.भा. ३	पू.भा. १	उ.भा.	रे.
अ.	२८	३३	२८॥	१८॥	२१॥	२२॥	२६	१७	१८	२२॥	३१॥	२७	२०॥	२६	१७॥	११	९	१३	२२॥	२६॥	२२॥	१९॥	२६॥	१५	१३	२६	२७	२४॥	२६	२६	२४	२१	२१	१५	१६	१४॥	२४॥	२६
भ.	३४	२८	२९	१९	२२॥	१३॥	१७	२६	२६	३०॥	२३॥	२४॥	२१	१९	२८	२१॥	१९	६	१४॥	२९॥	२२॥	१९॥	१७॥	१९॥	२०	१९	२०	२७	२८॥	२८	२६	१०	१०	२०	२४	२२॥	१६॥	२८
कृ. १	२७॥	२७॥	२८	१६॥	९	१५॥	१९	२०	२१	२५॥	२६॥	२३॥	१७॥	२१	२२	१५॥	१५॥	१८॥	२७॥	१५॥	१९॥	१६॥	२०॥	२६॥	२४॥	१८	१९	१४	१५॥	११॥	१०॥	२५	२५	२७	१९॥	१७॥	१९॥	११॥
कृ. ३	१८॥	१८॥	१९	२८	१९	२५॥	१६॥	१७॥	१८॥	२२	२३	२०	१९॥	२३	२४	२१	२१	२३॥	२२॥	१०॥	१४॥	२१॥	२५॥	३१॥	२०	१२॥	१३॥	९॥	१४	११	१०	२३॥	२९॥	३१	२३॥	२०	२२	१४
रो.	२३॥	२३॥	१०	१९	२८	३६	२७	२३॥	२३॥	२७	२६	१३	१२॥	२६॥	२८	२५	२६	२०	१९	१५॥	९॥	१६॥	३०॥	२४॥	१४	१९	२०	११॥	१७	१९	१८	२०	२६	२४॥	३०॥	२७	२६	१९
मृ. २	२२॥	१३॥	१८॥	२७॥	३४	२८	२०	२५	२३॥	२६	१९	२२॥	२१॥	१७॥	२५॥	२३॥	२७	१३	१०	२५	१७॥	२३॥	२२॥	२५॥	१५	१२	११	१८	२१	२४॥	२४॥	१३	१९	२७	२९॥	२६॥	१७	२७
मृ. २	२७	१८	२१	१८॥	२५॥	२०	२८	३३	३१॥	१९॥	१०॥	१५॥	२४	२०॥	२८॥	३०॥	३४	२१	१४	२७	१९॥	१४	११	१३	२३	१९	१८	२४	२०॥	२५	२५	१२	१३	२१	२३॥	२७॥	१७	२७
आ.	१९	२७	२१	१८॥	२४॥	२६	३४	२८	२५	१३	२०॥	१३॥	२३॥	२९॥	२२॥	२४॥	२४॥	२७	२०	२७	२०	१३॥	१७	४	१६	२८	२७	२७	२२॥	२२॥	२२॥	१७	१८	११	१६	१९	२७	२७
पु. ३	१९	२६	२२	१९॥	२३॥	२४॥	३२॥	२४	२८	१६	२३	१६॥	२२॥	२७॥	२१॥	२३॥	२४॥	२५॥	१८॥	२७	२१	१३॥	२०॥	५	१३	२७	२६	२७	२७॥	२२॥	२३॥	१७॥	१८॥	११	१७	१९॥	२७॥	२८
पु. १	२१॥	२८	२३॥	२०	२४	२५	१९	१०॥	१४॥	२८	३५	१८॥	१५॥	२०	१४॥	१७	१८	२०॥	२०	२७	२०	१९	२६	१०॥	८	२१	२०॥	२१॥	२८॥	२५	२७	२१	१२॥	७	११	१७	२५	२५॥
पु.	३०॥	२१॥	२६॥	२३	२४	१७	१०	१८	२१॥	३५	२८	३०	१८॥	१४॥	२३॥	२६	२७	१२	११॥	२६	२१	२०	१९	२२	१७	११	११॥	२२॥	२६	२४	२५	१३	४॥	१४॥	१८	१४	१८	२७
आश्ले.	२५	२३॥	२२॥	१९	१२	२१	१३	१२	१५	२८॥	२८॥	२८	१५	१५॥	१७॥	२०॥	२०	२६	२५॥	११॥	१६॥	१५॥	२०	२६	२२॥	१६	१६॥	८॥	१२	१३	१३	२७	१८॥	१८॥	१२॥	१८॥	२०	१२
म.	२१	२१	१७॥	१८॥	११॥	१९॥	२२॥	२२॥	२१॥	१६॥	१८॥	१६	२८	३०	२६॥	१६॥	१६॥	२२॥	२५॥	११॥	१७॥	२४॥	२६॥	३४	२४	२०	२१	११॥	५॥	५॥	४॥	१८॥	२४॥	२५॥	१८॥	१७॥	१८॥	१२
पू. फा.	२७	१९	२१	२२	२५॥	१७॥	२०॥	२८॥	२७॥	२२॥	१६॥	१६॥	३०	२८	३४	२४॥	२२॥	८॥	११॥	२५॥	१९॥	२६॥	२४॥	२४॥	१९	१८	१९	२७	२१	१९॥	१८॥	४॥	११॥	१९॥	२४॥	२३॥	१६॥	२४॥
उ. फा. १	१६॥	२७	२२	२३	२७	२५॥	२८॥	२१॥	२१॥	१६॥	२५॥	१८॥	२६॥	३४	१८	१८	१६॥	१४॥	१७॥	२६॥	१७॥	२४॥	३०॥	१९॥	१०॥	२६	२७	२८	२२	२१	२०	११॥	१८॥	१२॥	१६॥	१५॥	२६॥	२४॥
उ. फा. ३	१३	२१॥	१६॥	२१	२५	२३॥	३०॥	२३॥	२३॥	१९॥	२८॥	२१॥	१७॥	२५	१९	२८	२५॥	२४॥	१६॥	२५॥	१६॥	१८	२७	१३	१५॥	२९॥	२८॥	२९॥	२६	२५	२५	११॥	१७॥	१०॥	१४॥	१८	२९	२७
ह.	११	२०	१६॥	२१	२६	२६	३३	२३॥	२३॥	१९	२८॥	२३॥	१७॥	२२॥	१७	२६	२८	२७	१९	२६॥	१७॥	१९॥	२६	१२	१४	२७	२६	२७॥	२३	२४	२४	१९	१९	८॥	१४॥	१९	२७	२७
चि. २	१३	६	१९	२५॥	२०	१२	१९	२६	२४॥	२०॥	१२॥	२६॥	२३॥	९॥	१५॥	२४॥	२७	२८	२०	१९	२६॥	२८	११	२५	२८	१४	१३	२१	१७॥	१९	१९	१८	१८	२४	१८॥	२२	११	२१
चि. २	२२॥	१५॥	२८॥	२३॥	२०	१२	१३	२०	१८॥	२०	१२	२६	२५॥	१०	१७॥	१७॥	२०	२१	२८	२७	३४	२४॥	७॥	२१॥	२८	१४	१३	२१	२५॥	२७	२७	२६	२०	२६	२०॥	१५	४	१३
स्वा.	२७॥	२९॥	१७॥	१२॥	१६॥	२७	२७	२६	२६॥	२८	२८	१५॥	१३॥	२५॥	२५॥	२५॥	२७॥	२१	२८	२८	२०	१०	२३॥	१८॥	२३	२७	२६	१८	२२॥	२३॥	२३॥	२७	२१	२०	२५	१९॥	२०	१३
वि. ३	२२॥	२२॥	२०॥	१५	१०॥	१८॥	१९॥	२१	२१	२२॥	२१॥	१९	१७॥	१९॥	१८॥	१७॥	१८॥	२७॥	३४॥	१८	२८	१८	१७	२१॥	२८	२२	२१	१३	१७॥	१७॥	१७॥	२२॥	२६॥	२६	२२	१६॥	१३॥	५
वि. १	१६॥	१६॥	१४॥	१९	१४॥	२२॥	१३	१४॥	१४॥	१९	१८	१५॥	२१॥	२३॥	२१॥	१८	१९	२८	२३॥	८	१७	२८	२७	३१॥	२३॥	१७॥	१६॥	९॥	१२	१२	१२	२७	२७	२६॥	२२॥	२१	१८	९॥
धनु.	२४॥	१४॥	१९॥	१४॥	२७॥	२०॥	११	१६	२१॥	२६॥	१८	२१	२४	२०॥	२९॥	२६	२७	१२	७॥	२२॥	१७	२८	२८	३१	१६॥	१४॥	१४॥	२२	२५	२६	२६	१२	१२	२२	२४॥	२४	१८	२७
ज्ये	१२	१८	२४	२९॥	२२॥	२२॥	१३	३	६	१०॥	२०	२६	३१	२३॥	१६॥	१३	१२	२५॥	२०॥	१५॥	२०॥	३१॥	३०	२८	१५	१७॥	१७॥	१७॥	२०	२०	२०	२१	२५	१८	११	९॥	२१	२१
मू	१२	२०	२४॥	१९	१३	१४	२१	१५	१२	८॥	१७॥	२४	२५	१९	९॥	१३	१३	२७	२७	२१	२७	२४॥	१६॥	१६	२८	२८	२७	२५॥	१५॥	१५॥	१५॥	२१॥	२५	२१॥	१६	१७॥	२५॥	२७
पू. षा.॥	२६	१९	१८	१२॥	१९	११	१९	२७	२७	२३॥	१३॥	१७॥	२१	१९	२७	२८॥	२७	१२	१२	२७	२०	१६॥	१८॥	१८॥	२८	२८	२७	३३	२३	२३॥	२३॥	८॥	१६॥	२३॥	३१॥	३२॥	२३॥	३२॥
पू. षा.३॥	२७	२०	१९	१३॥	२०	१२	१८	२६	२६	२३॥	१३॥	१७॥	२१	१९	२७	२७	२६	११	११	२६	१९	१८॥	१८॥	१९॥	२७	२७	२८	३४	२४	३४	२३॥	८॥	१५॥	२२॥	२९॥	३२॥	२३॥	३२॥
उ. षा.	२५॥	२७	१४	८॥	११॥	१८	२४	२६	२६	२३॥	२४॥	९॥	११	२७	२८	२८॥	२७॥	२०	२०	१९	१२	११॥	२५॥	१९॥	२५॥	३३	३४	२८	१८	१६	१५	१५॥	२२॥	२२॥	२८॥	३१॥	३२॥	२३॥
उ. षा. ३	२८	२९॥	१६॥	१४	१७	२२॥	२०॥	२२॥	२२॥	२७	२८॥	१३	६॥	२२	२३	२६	२५	१७॥	२४॥	२३॥	१६॥	१४	२८	२२	१६॥	२६	२५	१९	२८	२६	२५	२५॥	१७॥	१७॥	२३॥	३०॥	३२॥	२३॥
श्र. १॥	२८	२७	१४॥	१२	१८	३४॥	२४	२१॥	२१॥	२७	२५	१५	१७॥	१९॥	२०	२४	२५	१९	२६	२३॥	१६॥	१४	२८	२३	१७॥	२२॥	२४॥	१७	२५	२८	२७	३०	२२	२८॥	२३॥	३१॥	३०॥	२२॥
श्र. २॥	२७	२६	१३॥	१०	१७	२६	२३	२१	२३॥	२८	२६	१५	६॥	१८॥	२०॥	२३॥	२४॥	१८॥	२५॥	२३	१६	१४	२८	२३	१६	२५	२५॥	१५	२४	२७	२८	३०	२२॥	१८	२३	३२॥	३१॥	२४॥
ध. २	२०॥	१०॥	२६	२३॥	२०	१२	८॥	१७॥	१७॥	२२	१३	२८	१८॥	५॥	१२॥	१६	१७॥	१६॥	२४॥	२६	३०	२८	१४	२८	२१	९	९॥	१६॥	२५॥	२८	२१	२८	१८॥	२३॥	२१	२६॥	१५॥	२२॥
ध. २	२०	११	२६	३०॥	२७॥	१९	१०	१९	१९	१४	५	२०	२५॥	११॥	१९॥	१७॥	२१	१८	१९	२२	२५॥	२८	१२	२६	२९॥	१७॥	१६॥	१३॥	१८॥	२१	२१	२०	२८	३३	२८॥	१८॥	७॥	१४॥
श.	१५	२१	२८	३२॥	२५॥	२५	१८	१०	१०	७॥	१५	२०	२६॥	२०॥	१३॥	११॥	८॥	२६	२६	१९	२६	२६॥	२१	१९	२२॥	२४॥	२३॥	२३॥	१८॥	१८॥	१८॥	२५	३३	२८	१९	९	१७॥	१६॥
पू. भा. ३	१८	२५	२०	२४॥	३१॥	३१॥	२४॥	१७	१७	१३॥	२०॥	१४	१९॥	२५॥	१७॥	१५॥	१७॥	१८॥	१९॥	२८	२१	२१॥	७॥	१२	१५॥	३१॥	३०॥	२९॥	२४॥	२५॥	२५॥	२०॥	२७॥	१९	२८	१८	२३	२०॥
पू. भा. १	१४॥	२१॥	१६॥	१९	२६	२६	२५॥	१८	१८	१८	२५	१८॥	१६॥	२२॥	१४॥	१६॥	१८॥	१९॥	१२॥	१९	१४	२१	२७	११॥	१५	३१	३१॥	३०॥	२८॥	२९॥	३०॥	२५॥	१७	७॥	१६॥	२८	३३	३०॥
उ. भा.	२४॥	१५॥	१८॥	२१	२५	१७	१६॥	२५॥	२७	२६	१९	२०	१७॥	१५॥	२५॥	२७॥	२६	९॥	५	१९॥	१२	१९	२०	२२	२४	२२	२२॥	३१॥	२९॥	२८॥	२९॥	१४॥	६	१६	२१॥	३३	२८	३४
रे.	२५	२४॥	११	१४	१७	२६	२५॥	२४	२५॥	२४॥	२७	१३	१२	२२	२२	२४॥	२६॥	२०॥	१३॥	११॥	५॥	१२॥	२७	२२	२७	३०॥	३०॥	२१	१९	२०	२२॥	२२॥	१४	१६	१८	२९॥	३३	२८

संकेत विवरण

चं० प्र०	चन्द्रोन्मीलनप्रश्न
के० प्र० र०	केरलप्रश्नरत्न
प्र० कौ०	प्रश्नकौमुदी
प्र० कु०	प्रश्नकुतूहल
ध्व० प्र०	ध्वजप्रश्न
के० प्र० सं०	केरलप्रश्नसंग्रह
दै० व०	दैवज्ञवल्लभ
बृ० पा० हो०	बृहत्पाराशरीहोरा
प्र० भू०	प्रश्नभूषण
बृ० जा०	बृहज्जातक
भु० दी०	भुवनदीपक
प्र० ला० त्रि० प्र०	ग्रहलाघवत्रिप्रश्नाधिकार
स० सा०	समरसार
शि० स्व०	शिवस्वरोदय
नरपतिज०	नरपतिजयचर्या
ज्ञा० प्र०	ज्ञानप्रदीपिका
ता० नी०	ताजिकनीलकण्ठी
ज्योतिषसं०	ज्योतिषसंग्रह
प्र० वै०	प्रश्नवैष्णव
ग० म०	गर्गमनोरमा
ष० प० भा०	षट्पञ्चाशिका भाषाटीका
प्र० सि०..	प्रश्नसिद्धान्त
न० ज०	नरपतिजयचर्या
त० सू०	तत्त्वार्थसूत्र
स० सि०	सर्वार्थसिद्धि
के० हो० ह०	केवलज्ञानहोरा हस्तलिखित
आ० ति० ह०	आयज्ञानतिलक हस्तलिखित
दै० क०	दैवज्ञकल्पद्रुम
क० मू०	कन्नडलिपि की ताड़पत्रीय प्रति मूड़बिद्री
अ० चू० सा०	अर्हच्चूड़ामणिसार
श० म० नि०	शब्दमहार्णव निघण्टु
च० ज्यो०	चन्द्रार्कज्योतिषसंग्रह
वि० मा०	विद्यामाधवीय
आ० स० प्र०	आयसद्भावप्रकरण
प्र० र० सं०	प्रश्नरत्नसंग्रह
ज्यो० सं०	ज्योतिषसंग्रह हस्तलिखित
बृ० ज्यो० अ०	बृहद्ज्योतिषार्णव

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के प्रकाशन

[प्राकृत ग्रन्थ]

१. **महाबन्ध** [महाधवल सिद्धान्त]–प्रथम भाग, हिन्दी अनुवाद सहित । मूल्य १२)

२. **करलक्खण** [सामुद्रिक शास्त्र]—हिन्दी अनुवाद सहित । हस्तरेखा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ । सम्पादक—प्रो० प्रफुल्लचन्द्र मोदी एम० ए० । मूल्य १)

[संस्कृत ग्रन्थ]

३. **मदनपराजय**—मूल ग्रन्थकार कवि नागदेव । भाषानुवाद तथा विस्तृत प्रस्तावना । जिनदेव के द्वारा काम के पराजय का सरस सुन्दर रूपक । स० और अनु०–प्रो० राजकुमार साहित्याचार्य, मूल्य ८)

४. **कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची**—मडबिद्री के जैनमठ, जैन सिद्धान्त भवन, सिद्धान्तवसदि आदि, जैनमठ, कारकल, मूडबिद्री के अन्य ग्रन्थ भण्डार तथा अलियूर के ग्रन्थ भण्डारो के अमूल्य ताडपत्रीय ग्रन्थों का सविवरण परिचय । सम्पादक—पं० के० भुजबली शास्त्री । मूल्य १३)

५. **न्यायविनिश्चय विवरण** [प्रथम भाग]—अकलङ्कदेव कृत न्यायविनिश्चय की वादिराजसूरि रचित व्याख्या । विस्तत हिन्दी प्रस्तावना में इस भाग के ज्ञातव्य विषयों का हिन्दी में विषय परिचय है। सम्पादक—प्रो० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य । बड़ी साइज पृष्ठ स० ६०० । मूल्य १५)

६. **तत्त्वार्थवृत्ति**–श्रुतसागर सूरिरचित टीका । हिन्दी सार सहित । १०१ पृ० की विस्तृत प्रस्तावना में तत्त्व, तत्त्वाधिगम के उपाय, सम्यग्दर्शन, अध्यात्म, नियतिवाद, स्याद्वाद, सप्तभङ्गी आदि का नूतन दृष्टि से विवेचन । सम्पादक—प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य । पृष्ठ सं० ६४० । मूल्य १६)

[हिन्दी ग्रन्थ]

७. **मुक्तिदूत** [उपन्यास]—अञ्जना-पवनञ्जय की पुण्य गाथा । मूल्य ४।।।)

८. **पथचिह्न** [संस्मरण]—स्वर्गीया बहिन के पवित्र संस्मरण और युगविश्लेषण । संस्कृति और कला की स्वाभाविक झलक, मनोरम भाषा और मनोहर शैली । मर्मज्ञो द्वारा प्रशंसित । मूल्य २)

९. **दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ**—चौसठ लौकिक, धार्मिक और ऐतिहासिक कहानियो का संग्रह । भाषा सरल और रोचक है । व्याख्यान तथा प्रवचनों में उदाहरण देने योग्य । मूल्य ३)

१. **शेरो-शायरी** [उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज्म]—लेखक—अयोध्याप्रसाद गोयलीय । प्राचीन और वर्तमान कवियों में सर्वप्रधान लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का सङ्कलन और उर्दू कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय। पृष्ठ स० ६४०। मूल्य ८)

११. **आधुनिक जैन कवि**—सम्पादक—रमा जैन। मूल्य ३।।।)

१२. **जैनशासन**—जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन करानेवाली सुन्दर रचना। मूल्य ४।-)

१३. **कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न** - मूल ले० गोपालदास जीवाभाई पटेल। आ० कुन्दकुन्द के पञ्चास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन ग्रन्थो का संक्षिप्त और सरल भाषा में विषय परिचय। मूल्य २)

१४. **हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास**—कामताप्रसाद जैन मूल्य २।।।=)

१५. **पाश्चात्य तर्कशास्त्र** [प्रथम भाग]—भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए०। मूल्य ६)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस नं० ४

[प्रेस में]

१–न्यायविनिश्चय विवरण–(द्वितीय भाग) जैन न्याय का आधारभूत महान् ग्रन्थ।
स०–प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

इस भाग में अकलङ्क देवकृत न्यायविनिश्चय के अनुमान और प्रवचन प्रस्तावों की वादिराजसूरि कृत व्याख्या है। प्रस्तावना में ग्रन्थ का पूरा विषयपरिचय और जैनन्याय को अकलङ्क की देन आदि महत्त्वपूर्ण विषय होंगे।

२–समयसार–आचार्य कुन्दकुन्द के सुप्रसिद्ध अध्यात्म ग्रन्थ समयसार का अंग्रेजी भाषा में प्रामाणिक अनुवाद। स०–रायबहादुर ए० चक्रवर्ती, मद्रास।

३–कुरल–यह तामिल भाषा का पञ्चम वेद माना जाता है। प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद सहित। स०–तामिल और अंग्रेजी के ख्यातिप्राप्त विद्वान् प्रो० ए० चक्रवर्ती, मद्रास।

४–आदि पुराण–(दो भाग) भगवज्जिनसेनाचार्य कृत युगादि पुरुष भगवान् ऋषभदेवका पुण्य चरित्र।

इस पुराण में न केवल चरित्र ही है किन्तु जैनाचार, जैन संस्कार आदि का साङ्गोपाङ्ग विस्तृत विवेचन है। अनेक ताड़पत्रीय प्रतियों के आधार से इसका संशोधन और सम्पादन हुआ है। अर्थबोधक प्राचीन टिप्पण से अलङ्कृत। पं० पन्नालालजी 'वसन्त' साहित्याचार्यकृत भाषानुवादसहित। प्राचीन युग को प्रतिबिम्बित करनेवाले कई कलामय चित्रों से विभूषित।

५–सिद्धशिला [काव्य]–भगवान् महावीर की जीवन झांकी। ले०–श्री अनूप शर्मा।

६–बापू [खण्ड काव्य]–महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धाञ्जलि। ले०–हुकमचन्द्र बुखारिया 'तन्मय'।

७–मिलन यामिनी [गीत]
ले० कविवर 'बच्चन'।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का
अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक
सेठ शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन